साँची

74125

भास्करनाथ मिश्र

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल

साँची • भास्करनाथ मिश्र

SANCHI : Monograph by *Bhasker Nath Misra*

अवाप्ति संख्या ... दिनांक 21.8.87
निर्देश संख्या ... 913.05 San/Mis

प्रकाशक

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

भोपाल-11

★

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

★

प्रथम संस्करण

1982

★

मूल्य : 35.00 रु

★

मुद्रक

इण्डस्ट्रियल प्रिण्टिंग वर्क्स, लखनऊ

☐ प्रादेशिक भाषाओं में विश्व विद्यालय स्तरीय ग्रन्थों और साहित्य निर्माण के लिए भारत सरकार के शिक्षा और समाज कल्याण मन्त्रालय (संस्कृति विभाग) की केन्द्र प्रवर्तित योजनान्तर्गत मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल द्वारा प्रकाशित

☐ भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्य पर उपलब्ध कराये गये कागज पर मुद्रित

☐ आवरण आकल्पन : नवल जायसवाल

प्राक्कथन

विश्व भर में शिक्षा शास्त्री इस पर एकमत हैं कि शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही होनी चाहिये। विद्यार्थी के लिये मातृभाषा सहजसंग्रेहणीय एवं विषय को गहराई तक जानने में सहयोगी होती है। शिक्षा के माध्य के रूप में दूसरी भाषा, छात्र के मस्तिष्क पर अतिरिक्त दबाव का काम करती है, जिससे वह विषय-वस्तु पर पर्याप्त ध्यान दे पाने के बजाय अपनी सृजनात्मक ऊर्जा का क्षय भाषा ज्ञान बढ़ाने में करता हैं।

स्कूली स्तर पर शासन ने मध्यप्रदेश में मातृभाषा हिन्दी को माध्यम के रूप में स्थापित कर दिया है। किन्तु उच्चशिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होने से, मँहगी अंग्रेजी शिक्षा पाये छात्र तो लाभान्वित होते रहे, लेकिन मातृभाषा के माध्यम से उच्चतर माध्यमिक परीक्षा पास छात्र पिछड़ते रहे। स्वाभाविक रूप से विकास का मार्ग उनके लिए प्रशस्त होता गया, जो साधन सम्पन्न थे। इस प्रकार भाषायी विसंगति के कारण समाज में वर्गभेद की एक नयी श्रृखला ने जड़ें जमाना आरंभ कर दीं।

सुखद है कि समय रहते केन्द्र सरकार ने इस ओर ध्यान दिया और उच्च शिक्षा सर्व जन को सुलभ कराने के लिए मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया। माध्यम परिवर्तन में सबसे बड़ी बाधा थी तकनीकी शब्दावली और पाठ्य ग्रन्थों का अभाव। वैज्ञानिक तकनीकी शब्दावली आयोग ने शब्दावली की समस्या का निराकरण किया तथा मानक शब्दावली तैयार की जिससे पाठ्यक्रमों की भाषा में एकरूपता रह सके। बाद को केन्द्र सरकार ने प्रत्येक प्रान्त को एक-एक करोड़ रुपये की राशि देकर पाठ्य ग्रन्थों के आभाव को दूर करने के लिये राज्य शासन के सहयोग से इन अकादमियों की स्थापना की।

केन्द्र प्रवर्तित इस योजना को मूर्त रूप देने के लिये मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी ने विगत १० वर्षों में विज्ञान, इंजीनियरी, आयुर्विज्ञान, कृषि, विधि, कला और मानविकी संकायों के विविध २५ विषयों के लिये स्नातक और स्नातकोत्तर स्तरीय लगभग ३०० ग्रन्थों का निर्माण और प्रचलन कराया है। इस सार्थक पहल से उच्च शिक्षा में हिन्दीं ग्रन्थों का अभाव कुछ सीमा तक दूर हुआ है।

अकादमी के ग्रन्थों के लेखक वे स्थानीय महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित प्राध्यापक ही हैं जो विद्यार्थियों की आवश्यकता एवं विश्वविद्यालय पाठ्यक्रमों से भलीभाँति परिचित हैं। इस प्रक्रिया में अकादमी प्रदेश के साहित्येतर लेखन को वाजिब प्रोत्साहन एवं लेखकों को संरक्षण देने का महत्वपूर्ण कार्य भी कर रही है।

विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों और सार्वजनिक ग्रन्थालयों से यह अपेक्षा है कि वे अकादमी के प्रकाशनों को अपने ग्रन्थागारों में खरीदेंगे तथा अध्यापकों से आशा है कि वे इनके प्रचलन में, इन्हें लोक प्रिय बनाने में और नये ग्रन्थों के सृजन में अपना भरसक योगदान करेंगे।

शिक्षा मंत्री एवं अध्यक्ष
मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
भोपाल

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति के निर्माण और विकास में प्राचीन नगरों का अवदान विशेष महत्व-पूर्ण रहा। अपने भौगोलिक स्थिति तथा अन्य ऐतिहासिक कारणों से इन नगरों ने एक दीर्घ-काल तक भारतीय जीवन तथा चिन्तन की दिशा प्रदान की।

ऐसे नगरों में मध्यप्रदेश का विदिशा नगर उल्लेखनीय है।

ईसवी सन् से कई सौ वर्ष पहले से लेकर परमारों के शासनकाल तक इस नगर भारत के राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास को प्रभावित किया। शुंग शासक अग्निमित्र के समय से लेकर गुप्तकाल तक विदिशा नगर को मध्य भारत की राजधानी बनने का गौरव प्राप्त हुआ। वहाँ भागवत (वैष्णव) धर्म का एक महान केन्द्र शुंगकाल में बना, जो निरन्तर विकसित होता। भागवत धर्म के उत्थान में विदिशा का स्थान मथुरा की तरह अग्रगण्य था। विदिशा नगर और उसके आस-पास उदयगिरि के पर्वतीय क्षेत्र आदि में जो प्राचीन अवशेष प्राप्त हुए हैं उनसे उक्त कथन की पुष्टि होती है।

विदिशा नगर से लगभग 10 किलोमीटर दक्षिण स्थित साँची भारत के प्रसिद्ध सांस्कृतिक स्थानों में से एक है। उसका प्राचीन नाम 'काकनादबोट' था। ईसा पूर्व तीसरी शती से लेकर गुप्तकाल तक अवशेष बड़ी संख्या में वहाँ मिले हैं। उन्हें देखने से पता चलता है कि साँची में एक दीर्घकाल तक बौद्ध धर्म का महत्वपूर्ण केन्द्र रहा। मौर्य सम्राट अशोक के समय वहाँ एक विशाल स्तूप का निर्माण हुआ। उसके बाद 'चेतिय गिरि' (चैत्यगिरि) प्रसिद्ध हो गया। साँची के समीप ही भारत की अत्यन्त समृद्ध नगरी विदिशा थी। वहाँ के निवासियों ने साँची तथा उसके आस-पास अनेक कलापूर्ण स्मारकों का निर्माण करने में प्रमुख भाग लिया। साँची के मुख्य स्तूप के चारों ओर अत्यन्त भव्य चार तोरण द्वार सातवाहनों के समय में बनाए गए।

साँची के ये स्मारक भारतीय स्थापत्य और मूर्तिकला की अमर कृतियाँ हैं। इनमेंअब से लगभग दो हजार साल पहले के लोक-जीवन की कितनी ही मधुर गाथाएँ संजोयी हुई हैं। कला के महान आदर्शों ने प्रेरित होकर वहाँ के कलाकारों ने छोटे-बड़े अमीर-गरीब, साधु गृहस्थ-सभी के जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति की। प्रकृति का मानव-जीवन के साथ जो सामंजस्य भारतीय साहित्य में वर्णित है उसे हम साँची के कला में मूर्तिमान पाते हैं। अनेक कृतियों में विविध लता वृक्ष, सरोवर, पशु-पक्षी आदि का अंकन देखने को मिलता है।

धार्मिक एवं सामाजिक मान्यताओं, वेश-भूषा, आमोद-प्रमोद आदि की झाँकी हमें साँची के बहुसंख्यक अवशेषों में प्राप्त है। स्तूपों के चारों ओर लगी हुई वेदिकाओं तथा तोरणों पर विविध प्रकार के कितने ही दृश्य उकेरे हुए हैं। भगवान बुद्ध के प्रमुख चिन्हों-बोधिवृक्ष, धर्म चक्र, स्तूप तथा भिक्षापात्र के पूजन में तल्लीन स्त्री-पुरुष दिखाये गये हैं। कहीं बुद्ध के पूर्व की जातक कथाएँ चित्रित हैं। इनमें महाकवि जातक, छदन्त जातक, श्याम जातक आदि कक्षाओं का आलेखन अत्यन्त मनोहारी हुआ है। बुद्ध के जीवन की प्रमुख घटनाओं को भी अनेक स्थलों पर उत्कीर्ण किया गया है।

साँची की कला में सामाजिक उत्सवों का प्राचुर्य मिलता है। स्त्री पुरुषों के समूह आनन्दपूर्ण मुद्रा में बाजे-गाजे सहित इन उत्सवों में भाग लेते हुए दिखाए गये हैं। इस प्रकार की सामूहिक यात्राएँ समय-समय पर हुआ करती थीं। उसमें संगीत की प्रधानता रहती थी। वंशी, वीणा, ढोलक, मँजीरा आदि बजाने का प्रचलन था। साँची के तोरणों में वाद्ययन्त्र भी मिलते है। साथ ही स्त्री और पुरुष विभिन्न नृत्य मुद्राओं में चित्रित मिलते हैं।

मनोबिनोद के अन्य साधन उद्यान-यात्रा, पक्षी क्रीड़ा, हाथी-घोड़ों पर सवारी आखेट, अक्ष क्रीड़ा, मधुपान आदि थे। उद्यानों में पुष्पित वृक्षों के नीचे बैठकर आनन्द मनाने के कई दृश्य साँची में मिलते हैं। एक जगह पर कमल-वन में विहार करते हुए गजारूढ़ स्त्री-पुरुष दिखाये गये हैं। दूसरी जगह एक राजा अपने सेवकों सहित आखेट के लिए जाता हुआ प्रदर्शित है। बहेलियों द्वारा शिकार करने के दृश्य भी मिलते हैं। पक्षियों को पालन तथा उनके साथ अनेक तरह के खिलवाड़ करना प्राचीन भारतीयों के मनोरंजन का एक प्रमुख साधन था। साँची की कला में ऐसे कितने ही सुन्दर चित्रण मिलते हैं जिनमें हंस, मयूर, शुक आदि पक्षियों के साथ क्रीड़ा करते हुए नर-नारी प्रदर्शित हैं। कहीं-कहीं सरोवरों के समीप अनेक पक्षी उड़ते हुए दिखाए गये हैं। मधुपान के भी कुछ दृश्य साँची में मिलते हैं। कहीं शालमंजिकाओं को आकर्षक मुद्राओं में वृक्षों की डालियाँ पकड़े हुए दिखाया गया है।

प्राचीन भारतीय वेशभूषा की जानकारी के लिए साँची के कलाविशेष बड़े महत्व के हैं। विभिन्न वर्गों के स्त्री-पुरुषों का पहनावा हमें इन वृत्तियों में देखने को मिलता है। साधारण वर्ग के लोग धोती, दुपट्टा (उत्तरीय) तथा भारतीय पगड़ी पहनते थे। स्त्रियाँ प्रायः साड़ी तथा उत्तरीय पहने मिलती हैं। आभूषण के धारण करने का रिवाज बहुत था स्त्री-पुरुष अनेक प्रकार के गहने पहने हुए दिखाये गये हैं। स्त्रियाँ बालों को आकर्षक ढंगों से सजाती थीं। विविध प्रकार के वेशविन्यासों को देखने से ज्ञात होता है कि तत्कालीन लोगों की कलात्मक रुचि कितनी विकसित थी। दो चोटियों (द्विवेणी) का प्रदर्शन स्त्री मूर्तियों में मिला है। बालों में फूल गूँथने का भी बड़ा रिवाज था।

साँची में बौद्ध स्तूपों के अलावा मन्दिरों एवं विहारों के भग्नावशेष मिले हैं। इनमें से एक मन्दिर की गणना भारतीय मन्दिर वास्तुकला के प्राचीनतम उदाहरणों में से की जाती है। मूर्ति के ऊपर मंडपिका-निर्माण का उदाहरण भी साँची की एक बौद्ध मूर्ति में उपलब्ध है।

साँची से उत्कीर्ण शिलालेख बड़ी संख्या में मिले हैं। अशोक ने अपना एक स्तम्भ यहाँ लगवाया था, जिस पर उसका लेख खंडित अवस्था में मिला है। स्तूप के चारों ओर वेदिका के पत्थरों पर बड़ी सख्या में ब्राम्ही लेख मिले हैं। इन लेखों से ज्ञात हुआ है कि भारत के विभिन्न स्थानों के लोगों ने साँची स्तूपों के निर्माण में योगदान दिया था। इन दानदाताओं में राजा-रानी, भिक्षु-भिक्षुणी, साधारण जन सभी थे। महात्मा बुद्ध के दो प्रधान शिष्यों-सारीपुत्र तथा मौग्गलान और अन्य धर्म-प्रचारकों के नाम पाषाण मंजुषाओं आदि पर मिले हैं। साँची के इन बहुसंख्यक शिलालेखों तथा कलाकृतियों से भारतीय समाज और धर्म के सम्बन्ध में प्रमुख जानकारी प्राप्त हुई है।

कुछ वर्ष पूर्व सीहोर जिला के पानगुडारी नामक स्थान से सम्राट अशोक का एक महत्वपूर्ण शिलालेख मिला है। उस पर अशोक द्वारा एक राजकुमार को दिया गया आदेश उत्कीर्ण है कि दीन तथा धनी सभी व्यक्तियों को प्रेरित किया जाय कि वे धर्म के अनुसरण में सक्रिय हों।

साँची तथा पानगुडारी के लेखों से इस बात की पुष्टि होती है। कि मौर्य-सम्राट अशोक को भव्य भारत के इस क्षेत्र से विशेष लगाव था।

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी ने कुछ वष पूर्व मेरे सुझाव को मानकर प्रदेश के महत्वपूर्ण केन्द्रों पर उपयोगी ग्रन्थमाला का प्रकाशन आरम्भ किया। इस ग्रंथ माला में त्रिपुरी भरहुत, बाघ, राजिम आदि केन्द्रों पर सचित्र ग्रन्थ छप चुके हैं, जो बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुए हैं।

साँची पर प्रस्तुत पुस्तक के लेखक डॉ० भास्कर नाथ मिश्र उस स्थल पर कई वर्ष रहे। अपने ज्ञान और अनुभव को उन्होंने इस ग्रन्थ में उपवृहित किया है। साँची पर अब तक प्रकाशित हिन्दी पुस्तकों में प्रस्तुत ग्रन्थ निस्संदेह सर्वश्रेष्ठ है।

आशा है इस नये प्रकाशन से एक बड़ी कमी पूर्ति होगी।

कृष्णदत्त वाजपेयी
अध्यक्ष, भारतीय पुरालेख परिषद
सागर, (म० प्र०)

इन्दौर आयुक्त कार्यालय पुस्तकालय दिल्ली विश्वविद्यालय सेन्ट्रल इन्डस्ट्री क्रमांक 3310 दिनांक 20.1.87 पुस्तक 35.00

74125

साँची

स्थिति

मध्यप्रदेश में विदिशा से लगभग १० किलोमीटर दक्षिण और भोपाल से लगभग ४५ किलोमीटर उत्तर साँची की पहाड़ी दिल्ली-बम्बई रेलवे-लाइन पर स्थित है। साँची-स्टेशन पर कई रेलगाड़ियाँ रुकती हैं। विदिशा और भोपाल के बीच चलने वाली बसें साँची से गुजरती हैं। साँची की भौगोलिक स्थिति २३०, २८० उत्तर अक्षांश और ६६०, ४७० पूर्व अक्षांश पर है।[१] जिस पहाड़ी पर साँची स्थित है, उसका बलुवा पत्थर गहरे भूरे रंग का है। यह पहाड़ी ऊँचाई में लगभग ६० मीटर है।[२] प्राचीन स्मारकों की ईंटें और मध्ययुगीन मूर्तियाँ बहुधा इसी पत्थर की बनी हैं। साँची के दक्षिण में स्थित नागौरी पहाड़ी का हलका भूरा पत्थर भी स्मारकों में लगा है। यहाँ से ७ किलोमीटर उत्तर-पश्चिम में खड़ी उदयगिरि की पहाड़ी के बादामी पत्थर से तोरणद्वार एवं कतिपय मूर्तियाँ बनायी गयी हैं। पहाड़ी के उत्तर-पूर्वी भाग पर साँची, पूर्व में माँची, उत्तर में कानाखेड़ा तथा नोनाखेड़ के गांव बसे हैं।

स्मारकों की खोज[३]

१८१८ ई० में जनरल टायलर ने साँची के स्मारकों का पहली बार पता लगाया। तब तक स्तूप १ का दक्षिणी तोरण-द्वार गिर चुका था। हर्मिका का कुछ भाग मूल स्तूप पर टिका था। स्तूप २ और ३ भी सुरक्षित दशा में थे।

कैप्टेन ई० फ़ेल ने १८१६ ई० में इन स्मारकों को सुरक्षित पाया। तीन वर्ष बाद कुछ व्यक्तियों ने इनको क्षति पहुँचायी। कैप्टेन ई० फ़ेल ने बंगाल एशियाटिक सोसायटी की तीसरी जिल्द (जुलाई, १८१६) में साँची का विवरण प्रकाशित कराया। जनरल टायलर ने इस विवरण की पुष्टि की है।

१८२२ में भोपाल के असिस्टेंट पोलिटिकल एजेन्ट कैप्टेन जॉनसन ने स्तूप १ को पश्चिमी दिशा में नीचे से ऊपर तक खोलकर उसे क्षति पहुँचाई। फलस्वरूप पश्चिमी तोरण द्वार गिर गया और भूवेदिका को भी क्षति पहुँची। उन्होंने स्तूप २ और ३ को भी इसी प्रकार नुकसान पहुँचाया।

---

१. मार्शल-फूशे, दी मॉन्यूमेन्टस् ऑफ साँची, भाग १, पृ० ११.

२. वही

३. वही, पृ० ७-६; फर्गुसन, ट्री ऐण्ड सर्पेन्ट वर्शिप, पृ० ८७; मैसी, **साँची ऐण्ड इट्स रिमेन्स**।

१८३७ में जेम्स प्रिंसेप ने एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, जिल्द ६, पृ० ४५१-६३ तथा जिल्द ७, पृ० ५६२-६५ में साँची के स्मारकों की चर्चा की।

१८४६ में भोपाल के पोलिटिकल एजेन्ट कैप्टेन जे० डी० कनिंघम ने उक्त जर्नल (भाग १६, पृ० ७४५) में स्मारकों का विस्तृत विवरण प्रकाशित कराया।

१८५१ में जनरल कनिंघम और बंगाल-सेना के जनरल एफ० सी० मैसी ने साँची के कई स्मारकों को अस्त-व्यस्त कर डाला। उन्होंने स्तूप २ और ३ से अस्थि-मंजूषायें भी खोज निकालीं। कनिंघम ने साँची की कुछ कला-कृतियाँ लंदन में केंसिंग्टन के अपने वास-स्थान में रखीं। जनरल मैसी की साँची-सामग्री साउथ केंसिंग्टन सग्रहालय में प्रदर्शित है। कनिंघम का ग्रन्थ 'भिलसा टोप्स' १८५४ में प्रकाशित हुआ। १८५४ में जनरल मैसी ने स्मारकों के कई रेखा-चित्र बनाये। १८९२ में उन्होंने अपने ग्रन्थ "साँची ऐण्ड इट्स रिमेन्स" में तथा जे० फर्गुसन ने १८६८ में अपने ग्रन्थ "ट्री ऐण्ड सर्पेण्ट वर्शिप" में उन चित्रों का उपयोग किया। लंदन की इण्डिया आफ़िस लाइब्रेरी में ये चित्र १८६६ तक उपलब्ध थे।

१८६२ में कर्नल जे० जे० वाटर हाउस ने स्मारकों के प्रथम फोटो चित्र लिये। उस समय तक किसी को इन स्मारकों के पुनर्निर्माण की बात न सूझी थी।

१८६९ में मेजर कोल ने पूर्वी तोरण-द्वार की प्रतिकृतियाँ नेपोलियन तृतीय के लिए बनायीं। उन्हें लदन, बर्लिन, पेरिस, एडिनबर्ग, डब्लिन एवं साउथ केंसिंग्टन (भारतीय संग्रहालय) आदि स्थानों को भेजा गया। १८८१ में कुछ ग्रामीणों ने स्मारकों को पुनः क्षति पहुँचाई। सरकार की ओर से उसी वर्ष भारतीय प्राचीन स्मारकों के अध्यक्ष मेजर कोल साँची पहुँचे। उन्होंने पहाड़ी के ऊपर का जंगल साफ कराया। फिर स्तूप १ को भरवा दिया। उसके दक्षिणी और पश्चिमी तोरण-द्वारों एवं स्तूप ३ के तोरण-द्वारों को १८८१-८३ में फिर से खड़ा करवाया।

उस समय विलियम किनकेड भोपाल में पोलिटिकल एजेन्ट थे। १८८६ में भोपाल की नवाब-बेगम ने साँची की एक दुर्लभ अवलोकितेश्वर-मूर्ति विलियम किनकेड को भेंट में दे दी। उन्होंने उसे लंदन के विक्टोरिया ऐलबर्ट सग्रहालय को बेच दिया। यह मूर्ति आज भी वहीं सुरक्षित है। इस मूर्ति की पलस्तर से बनी एक प्रतिकृति कुछ वर्ष पहले साँची संग्रहालय को प्राप्त हुई है।

भारतीय पुरातत्त्व अधिकारी मेजर कीथ ने भी स्मारकों के आस-पास जंगल साफ कराया। मूर्तियों पर लगी काई तथा पलस्तर भी धुलवाए। इनमें अधिकांश सख्या स्तूप २ की वेदिका के दृश्यों की थी। उन्होंने स्तूप १ की वेदिका और तोरण द्वारों को भी सुव्यवस्थित किया।

१८९२ में जॉर्ज बूलर ने अशोक स्तम्भ का अभिलेख तथा अन्य ४५६ अभिलेखों को सम्पादित कर अनुवाद सहित उन्हें प्रकाशित किया। १९१२ में प्रो० ल्यूडर्स ने अपने ग्रन्थ "लिस्ट ऑफ ब्राह्मी इंस्क्रिप्शंस" में अशोक-स्तम्भ के अभिलेख को छोड़कर साँची-स्मारकों के अन्य सभी ब्राह्मी अभिलेखों को सूचीबद्ध किया। १९१९ में रामप्रसाद चंदा ने अपने लेख "डेट्स ऑफ दि वोटिड इंस्क्रिप्शंस ऑन दि स्तूप्ज़ ऐट साँची" पुरातत्त्व विभाग के विशेष मेम्वायर के रूप में प्रकाशित कराया। कुल मिलाकर ९०० अभिलेख साँची में उपलब्ध हुए। इनमें से ८४२ अभिलेख एन० जी० मजूमदार ने संपादित कर **"दि मॉन्यूमेंट्स ऑफ साँची में** प्रकाशित कराया।

जे० आर० ए० एस० (जनवरी, १९०२, पृ० २९—४५) में प्रकाशित अपने लेख में साँची के स्मारकों का महत्व बताकर "दि ग्रेट स्तूप ऐट साँची-कानाखेड़ा) में जेम्स बर्जेस ने स्मारकों का सांगोपांग इतिहास १८१८ में लिखा।

तत्पश्चात् सर जॉन मार्शल साँची आए। उन्होंने वहाँ केवल महास्तूप, मन्दिर ३१, भवन ४३, ४५, ४६ के अवशेष देखे। अन्य सभी स्मारक टीलों में दबे पड़े थे। उन्होंने १९१२ से १९१९ तक पहाड़ी पर उत्खनन कराया, जिससे निम्नांकित स्मारक उद्घाटित हुए:—

स्तूप १ का दक्षिण-पश्चिमी भाग, दक्षिण-पश्चिमी तोरण द्वार तथा उनके बीच की भूवेदिका, मंदिर १८ के स्तम्भ और मन्दिर ४५ के विभिन्न भाग, स्मारकों की चारदीवारी स्तूप ३ के अण्ड, वेदिकाएँतथा छत्रावली। मन्दिर १९, ३१ और ३२ की छतों को सुधारा गया। स्तूप १ के क्षेत्र का बरसाती पानी निकालने के लिए नालियाँ बनायी गयीं। पहाड़ी पर पेड़-पौधों तथा हरी-भरी घास का प्रबन्ध किया गया। बिखरी हुई प्राचीन सामग्री को एकत्र करके संग्रहालय खोला गया और उसका सूची-पत्र तैयार किया गया।

१९३६ में श्री मुहम्मद हामिद ने स्तूप १ और २ के बीच विहार ५१ की सफाई करायी।

इतिहास

साँची का इतिहास भी पाषाणयुग से आरम्भ होता है। कानाखेड़ा और साँची गाँवों की पहाड़ी की बनावट कुछ ऐसी है कि उसके उत्तरी माथे पर कई छतदार गुफाएँ बन गयी हैं। इनमें हजारों वर्ष पहले आदि मानव रहते थे। इनमें गेरू के रंग से मनुष्याकृतियां भरे हुए त्रिकोण, ताड़वृक्ष, घोड़े, सींगों वाले मृग, बलीवर्द, तेंदुये आदि बनाये गये हैं। गुफाओं के मस्तक पर, उनकी छतों में तथा अन्य समतल स्थानों पर ये दृश्य अंकित हैं। आदि मानव ने धनुष-बाण तथा भाले का उपयोग प्रचुरता से किया। आखेट उसके भोजन-यापन का प्रमुख व्यवसाय था। बहुधा इस प्रकार की गुफायें किसी जलाशय या नदी के पास ही होती हैं। सांची की गुफाओं के नीचे विशाल पुरैनिया पोखर विद्यमान है। सम्भवतः यह पोखर अशोक के समय से हजारों वर्ष पहले से आदिमानव एवं पशु-पक्षियों को उपलब्ध था। गुफाओं के दृश्यों से ऐसा प्रगट होता है कि उनका उपयोग सत्रहवीं-अठारहवीं शती ई० तक होता था। आदिमानव के पाषाण-आयुध साँची के आसपास बिखरे पड़े हैं।

किन्तु साँची का क्रमबद्ध इतिहास अशोक के समय से ही प्राप्त होता है। प्राचीन विदिशा नगरी के सम्पर्क में आने पर अशोक ने उसके पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण की पहाड़ियों पर अत्यंत रमणीक स्थान चुने और बौद्ध त्रिपिटाकाचार्यों के लिए विहारों और अस्थि-पूजा के लिए स्तूप-समूहों का निर्माण कराया (चित्र ७२)।

साँची को तीसरी शती ई० पू० में वेदिसगिरि या चेतिय+गिरि[१] तथा दूसरी-पहली शती ई० पू० में काकणाव[२] या काकणाय[३] कहते थे। गुप्तकाल में इसका नाम काकना दबोट

१. पाटिल, दि मान्यूमेण्टस् ऑफ दि उदयगिरि हिल, पृ० ६ में वेदिसगिरि को साँची के अतिरिक्त विदिशा के पश्चिम में उदयगिरि से मिलाया गया है।

२. मार्शल-फूशे वही, भाग एक, पृ० २९५—"काकनव-प्रभास-दानं" (अभिलेख ७)

३. वही पृ० ३०१— "काकणाये-भगवतो-पमाणलद्धि" (अभिलेख १७ अ)

श्री महाविहार[१] और नवीं शती ई० में बोटश्रीपर्वत[२] पड़ा जो भवभूति के ग्रंथ **मालतीमाधव** में उल्लिखित श्रीपर्वत[३] हो सकता है।

प्राचीनकाल में विदिशा और सांची के बीच का पहला मार्ग पुरैनिया पोखर तथा चिकनी घाटी होकर स्तूपों और विहारों तक पहुंचता था। इस मार्ग के अवशेष अभी तक सांची गांव के आसपास विद्यमान हैं। दूसरा मार्ग वर्तमान सर्किट हाउस के क्षेत्र से होता हुआ स्तूप-२ तक जाता था; फिर दक्षिण-पूर्वी दिशा में मुड़कर पहाड़ी तक पहुँचता था। यह मार्ग अभी तक सुरक्षित है (चित्र ७३)।

सांची और नागौरी के बीच खेती करने के लिए एक शुंगकालीन[४] बाँध था जो अभी तक विद्यमान है।

महावंश[५] के अनुसार तीसरी शती ई० पू० में महाकुमार अशोक (प्रियवर्द्धन) उज्जयिनी का शासक नियुक्त हुआ था। एक बार वह पाटलिपुत्र से विदिशा आया और वहाँ के एक प्रतिष्ठित सेठ की कन्या शाक्य+कुमारी देवी[६] का पाणिग्रहण किया। उससे दो पुत्रों, उज्जेनिय और महेन्द्र तथा पुत्री संघमित्रा का जन्म हुआ।

लंका जाने के पहले महेन्द्र अपनी माता से मिलने विदिशा आया। देवी उसे वेदिसगिरि के विहार में ले गयी। उसने अपने हाथ का बनाया भोजन पुत्र को खिलाया। वहाँ वह एक मास ठहरा[७] और वेदिसगिरि से ही वह लंका (तंबपण्णि) गया।[८]

देवी धार्मिक प्रवृति की। सम्भवतः इलाहाबाद के अशोक शिला लेख के "क्षुद्र स्तम्भ-अभिलेख" की दान देने वाली 'देवी' यही है। सम्भवतः उसके आग्रह पर अशोक ने विदिशा के आसपास बौद्ध स्मारकों के निर्माण का निश्चय किया। साँची की पहाड़ी के शांत वातावरण और आसपास बिखरे प्राकृतिक सौंदर्य से प्रेरित होकर उसने यहाँ स्मारकों का निर्माण

---

१. वही, पृ० ३८—"सिद्धं काकनादवोट श्री महाविहारे" (अभिलेख ८२३)
२. वही, पृ० ३६६—"यावद् बोट श्रीपर्वतेयं" (अभिलेख ८४२)
३. वही, पृ० ३०० फुटनोट ८.
४. वही, पृ० १३.
५. भागवत, **महावँश**, पृ० ८५, १३/६—११:—
कमेन वेदिसगिरिं नगरं मातु देविया। संपत्तो मातर पस्सि, देवी दिस्वा पियं सुतं। ६।
भोजयित्वा सपरिसं अत्तना येव कारितं। विहारं वेदिसगिरिं थेरमा'रोपयी सुभं। ७।
अवन्तिरठ्ठं भुञ्जतो पितरादिन्नम'त्तनो। सो असोककुमारो हि उज्जेनीगमना पुरा।८।
वेदिसे नगरे वासं उपगन्त्वा तहिं सुभं। देविं नाम लभित्वान कुमारिं सेट्ठिधीतरं। ९।
संवासं ताय कप्पेसि, गब्भं गण्हिय तेन सा। उज्जेनियं कुमारं तं महिंदं जनयी सुभं।१०।
वस्सद्वयमतिकम्म सङ्घमित्तञ्च धीतरं। तस्मिं काले वसति सा वेदिसे नगरे तहिं। ११
६. लॉ, **हिस्टारिकल्स ज्याग्रफी**, फुटनोट ४, **महाबोधिवंश**, पृ० ९८ में लिखा है कि विरुद्धक से डरकर शाक्य जनता ने विदिसा में शरण ली। इसी ग्रन्थ के पृ०९८—११० से ज्ञात होता है कि विदिशा के श्रेठी देव की कन्या को शाक्यकुमारी विदिशा-सहादेवी कहकर सम्मानित किया जाता था।
७. वही, पृ० ३३८, फुटनोट ६, (दीपवंश, ६।१५; १२।१४; ३५; समन्त+पासादिका, १।७०—७१; महावंश-टीका, पृ० ३२१)
८. वही, पृ० ३३८, फुटनोट ११ (महाबोधिवंश ४११६; थूपवंश, पृ० ४३),

उपयुक्त समझा होगा। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि विदिशा के आसपास के क्षेत्र में स्थविरवादियों की स्थिति कमजोर हो गयी हो और महा+सांघिकों का जोर बढ़ गया हो; क्योंकि साँची के अपने स्तम्भ-लेख में अशोक ने संघभेद करने वाले भिक्षु-भिक्षुणियों को कड़ी चेतावनी दी थी। अस्तु, बुद्ध के स्थविरवाद की सुरक्षा के लिए उसने सभी सम्भव उपाय किये होंगे, जैसे बुद्ध के अस्थि-अवशेषों को लाकर विशाल स्तूप एवं विहारों की प्रतिष्ठा पाँच सुनिश्चित स्थानों साँची, सोनारी, सतधारा, आंधरे तथा भोजपुर-पिपरिया में करना और संघभेद की चेतावनी देने वाले शिला स्तम्भ की प्रतिष्ठा इन स्तूप समूहों के केन्द्र स्थल साँची में करना क्योंकि साँची विदिशा-वासियों के अतिनिकट थी।

वैशाली से कौशाम्बी और विदिशा होकर उज्जयिनी जाने वाले महामार्ग (**प्रतोलिका**) पर साँची की पहाड़ी स्थित थी (चित्र ७५)। उन दिनों अश्मक देश की नदी गोदावरी से लेकर मगध की वैशाली नगरी तक यह महामार्ग जाता था। प्रतिष्ठान, माहिष्मती, उज्जयिनी, गोनर्द, विदिशा, तुम्बवन आदि नगर इसी मार्ग पर स्थित थे। साँची के अभिलेखों में इन सभी नगरों का उल्लेख है। प्रतिष्ठान=पैठान औरंगाबाद जिले में है। माहिष्मती नर्मदा पर बसी हुई महेश्वर या मांधाता नगरी है।[१] गोनद या गोनर्द उज्जयिनी और विदिशा के बीच स्थित था। बौद्धग्रन्थ महामायूरी में गोनार्द-विदिशा का उल्लेख है?[२] सारंगपुर (जिला राजगढ़) से प्राप्त तेरहवीं चौदहवीं शती के शिलापट्ट-अभिलेख में गोनर्द के ब्रह्मदेव, सहदेव, गोविन्द आदि के दान का उल्लेख है।[३] विदिशा नगरी कम से कम चौथी शती ई० पू० की अवश्य रही होगी। अशोक के समय में यह एक समृद्ध नगरी थी। यहाँ से प्राप्त तांबें के एक सिक्के पर तीसरी शती ई० पू० की लिपि में वेदिस या वेद्स लिखा है।[४] तुम्बवन गुना जिले में अशोक नगर के पास बीना-कोटा रेल मार्ग पर तुकनेरी स्टेशन से दक्षिण स्थित तुमैन है।[५]

मौर्यों के बाद पुष्यमित्र शुंग ने मालव पर आधिपत्य जमाया। उसने और उसके लड़के अग्निमित्र ने अपने साम्राज्य की पश्चिमी राजधानी विदिशा में स्थापित की। मालविकाग्निमित्र में सेनापति पुष्यमित्र, विदिशा के राजा अग्निमित्र और उसके पुत्र वसुमित्र का वर्णन है।[६] अग्निमित्र के बाद वसुज्येष्ठ, वसुमित्र (सुमित्र), काशीपुत्र भागभद्र (भद्रक), देवभूति या देवभूमि विदिशा के राजा हुए। भागभद्र के समय में तक्षशिला के राजा अंतलिकित ने अपने राजदूत हेलियोदोर को विदिशा भेजा था। विदिशा के शुंगराजा रेवतीमित्र की पत्नी चापादेवी ने भरहुत स्तूप के लिए प्रथम स्तम्भ का दान किया था।[७] विदिशा का एक स्तम्भ-लेख महाराज

---

१. पाण्डेय, **हिस्टारिकल ऐण्ड लिटरेरी इन्स्क्रिप्शन्स**, पृ० ४०—४१.

२. मार्शल-फूशे, वही, भाग १, पृ० ३००.

३. **इण्डियन एपिग्राफी** (१९६६-६७) पृ० ३५, क्रमसंख्या १८४.

४. दि जर्नल आफ दी न्यूमिस्मैटिक सोसायटी, खण्ड २३, पृ० ३०७.

५. त्रिवेदी, **दि बिब्लियोग्राफी आफ मध्यभारत आर्कोओलॉजी**, जिल्द १, पृ० ४०.

६. टाने, **मालविकाग्निमित्रम्**, पृ० १५१, अंक ५—"स्वरित्त यज्ञशरणात् सेनापतिः पुष्पमित्रो वैदिशस्थं पुत्रमायुष्मन्तमग्निमित्रं स्नेहात्परिष्वज्ये+दमनुदर्शयति। विदितमस्तु-योऽसौ राजयज्ञदीक्षितेन मया राजपुत्रशतपरिवृत्तं वसुमित्र गोप्तारमादिश्य..........यवनानां प्रार्थितः।"

७. लॉ, **हिस्टारिकल ज्याग्रफी**, पृ० ३३, फुटनोट २—"वेदिसा चापादेवाय रेवतीन मितभारियाय पठमोथभो दानम्।" कनिंघम, **भिल्सा टोप्स**, पृ० ७।

भागवत के १२वें राज्य + वर्ष का है। पुराणों के अनुसार इस राजा की तिथि १०४ ई० पू० है।[१] सम्भव है इसने भी विदिशा को अपनी राजधानी बनाया हो।

स्तूप-१ के दक्षिणी तोरणद्वार के ऊपरी सिरदल के एक अभिलेख[२] में सातवाहन राजा सातर्काण (द्वितीय) के समय में शिल्पियों के अग्रणी आनन्द के दान का उल्लेख है।

विदिशा से प्राप्त ताँबे के एक चौकोर सिक्के पर दूसरी या पहली शती ई० पू० का अभिलेख "राजो सिरि सातकनिस" लिखा है। सम्भव है यह सिक्का सतकर्णि प्रथम का हो। उसका आधिपत्य मध्यप्रदेश के कुछ भागों पर था। उस समय पूर्वी मालव की राजधानी विदिशा थी। महाराज खाखेल (पहली शती ई० पू०) के समय में विदर्भ पर सातवाहनों का आधिपत्य था।[३] गौतमी पुत्र प्रथम सातर्काण (दूसरी शती ई०) ने महाक्षत्रप नहपान से आकरावंति (पूर्वी पशिचमी मालवा) तथा अनूपदेश (नीमार) जीतकर अपना राज्य बढ़ाया था। उसका एक पोटीन (ताँबा + जस्ता + सीसा + टीन का समिश्रण) का सिक्का उज्जैन से प्राप्त हुआ।[४] गौतमी बलश्री के नासिक गुफा वाले अभिलेख में भी "अनूप-विदर्भ आकरावंति-राजस" (पंक्ति) का उल्लेख है।[५] तत्पश्चात् वासिष्ठीपुत्र पुलुमावी (दूसरी शती ई०) ने मालव प्रदेश हस्तगत किया। विदिशा से उसको एक चाँदी का सिक्का मिला है।[६] इसपर "रान्नों वासिठिपुतस् पुलुमाविस" लिखा है।[७] पुलुमावी के एक राँगे के सिक्के पर बौद्धधर्मचक्रम अंकित है। इससें उसकी बौद्धधर्म में निष्ठा प्रगट होती है।[८] इसी राजा के नासिक गुफा वाले अभिलेख में "जिनवरस बुधस" भी इस बात की पुष्टि करता है।[९] त्रिपुरी से भी सातवाहनकालीन मृण्पात्र, ईटें तथा भेड़ाघाट से सातर्काण प्रथम का एक सिक्का भी उपलब्ध हुए हैं।[१०] त्रिपुरी से गौतमीपुत्र श्री यज्ञ सातर्काण का

---

१. मार्शल-फूशे, वही, भाग एक, पृ० २७०.

२. मार्शल-फूशे, वही, भाग, १ पृ० २७७ तथा ३४२ अभिलेख ३६८—राजो सिरि सातकणिस आवेसनिस वासिठी। पुत्रस आनंदस दान" (चित्र ८) कुछ विद्वान् इस अभिलेख को इस बात का पर्यप्त प्रमाण नही मानते हैं कि सातवाहन राजाओं का आधिपत्य मालवा पर था (देखिये—मजूमदार, "दि एज आफ इम्पीरियल युनिटी, पृ० १६८,

३. इण्डियन आर्केओलॉजी ए रिव्यू, १६६७-६८, पृ० ६३; दि जर्नल आफ दि न्यूमिस्मैटिक सोसायटी, खण्ड २ (१६४०), पृ० ६३.

४. कनिघम, क्वायन्स आफ ऐश्यण्ट इण्डिया, पृ० १०६.

५. दि जर्नल आफ दि न्यूमिस्मैटिक सोसायटी, खण्ड १४, भाग १, पृ० ३-४

६. पाण्डेय, वही, पृ० ५२–५३.

७. दि जर्नल आफ दि न्यूमिस्मैटिक सोसायटी, खण्ड १४, भाग १, पृ० २.

८. वही, खण्ड २४, भाग २, पृ० १७८—७६.

९. पाण्डेय, वही, पृ० ५५, फ़ुटनोट १६.

१०. दि जर्नल आफ दि न्यूमिस्मैटिक सोसायटी, खण्ड १६, भाग १, पृ० ६६ तथा भाग २, पृ० २८०; वही खण्ड १३; भाग १, पृ० ३६ और ५१.

चाँदी का सिक्का प्राप्त हुआ है ।[१] स्पष्ट है कि पहली शती ई० पू० से दूसरी शती ई० तक मालव अधिकांशतः सातवाहन साम्राज्य का अंग बना रहा । पुलुमावी के समय में इस साम्राज्य की राजधानी पैठान थी ।[२]

सांची से प्राप्त लाल बलुए पत्थर की बनी अनेक मूर्तियाँ मथुरा में गढ़ी गयी थीं । वहीं उनपर अभिलेख उत्कीर्ण किये गये थे । मूर्ति सं० २७८५ के अभिलेख में राजा वस्कुषाण के २२वें राज्यवर्ष का तथा मूर्ति सं० २७१५ के अभिलेख में महाराज राजाधिराज देवपुत्र षाही वासष्क के २८वें राज्यवर्ष का उल्लेख है । ये अभिलिखित मूर्तियाँ मथुरा की हैं । अस्तु इनसे यह पता लगाना कठिन है कि साँची कुषाण राजाओं के अधीन थी । उनके समय में साँची शक-क्षत्रप राजाओं के राज्य में थी । लेकिन मथुरा की मूर्तियों का साँची में पाया जाना कम से कम इस बात का द्योतक है कि कुषाणों का प्रभाव साँची तक पहुँच गया होगा ।

ज़िला शहडोल से ७५७ कुषाणकालीन तांबे के सिक्कों की राशि मिली है । इनमें वेमा कडफिसेज़, कनिष्क और हुविष्क आदि के सिक्के भी हैं ।[३] विदिशा से वेमा कडफिसेज़ का चाँदी का "बीगा" श्रेणी वाला दुर्लभ सिक्का प्राप्त हुआ है ।[४]

साँची के अभिलेख सं० ८३० में कुषाणकालीन ब्राह्मीलिपि में विषकुल की पुत्री तथा गृहस्थ की पत्नी वषी या वर्षा ने बोधिसत्त्व मैत्रेय की प्रतिमा स्थापित की थी ।—बोधिसत्त्वस्य मैत्रेयस्य प्रतिमा प्रतिष्टापिता...स्य कुटुबिनिये विषकुलस्य धितु वषि......सतान हितसुखार्थं भवतु ।"[५] कहा जाता है कि 'विषकुल' से नागवंश का बोध होता है । पद्मावती (वर्तमान पदम पवाया, जिला ग्वालियर) के नागराजाओं के बहुत-से सिक्के विदिशा-क्षेत्र से प्राप्त हुए हैं ।[६] स्वयं पवाया से भवनाग, वसुनाग, रविनाग, प्रभाकरनाग, स्कन्दनाग, वृहस्पतिनाग तीसरी-चौथी शती ई०) के सिक्के मिले हैं ।[७] इनमें देवनाग, गणनाग विभुनाग के सिक्के भी शामिल हैं ।[८] अकोदा (जिला भिण्ड) से नागों के २७० सिक्के मिले हैं ।[९] पुराणों में विदिशा के नाग+वंशीय राजा सदाचन्द्र, चन्द्रांश तथा नखवान का उल्लेख है ।[१०] पद्मावती के नौ नागों और मगध के गुप्तराजाओं को पुराणों में समकालीन बताया गया है ।

---

१. वही, खण्ड १२, भाग २, पृ० १२६.
२. वही, भाग २, १९४०, पृ० ६४.
३. इण्डियन आर्केओलाजी, १९६४—६५, पृ० ७०.
४. वही, १९६७—६८, पृ० ६३.
५. मार्शल-फूशे, वही, भाग १, पृ० ३८७.
६. दि जर्नल आफ दि न्यूमिस्मैटिक सोसायटी, खण्ड १६, भाग २, पृ० २७६, फुटनोट २; वही, खण्ड १३, भाग १, पृ० ३०, फलक १, सं० १४-१८)
७. वही, खण्ड १४, भाग १, पृ० ७३—७९; वही, खण्ड १८, भाग १, पृ० ६७—७०, वही, खण्ड १८, भाग २ पृ० १६३—६८.
८. वही, खण्ड २३, पृ० ४४१.
९. इण्डियन आर्केओलाजी, १९६१—६२, पृ० ९४.
१०. दि जर्नल आफ दि न्यूमिस्मैटिक सोसायटी, खण्ड २४, भाग २, पृ० १७३.

समुद्रगुप्त की इलाहाबाद-स्तम्भ-प्रशस्ति में गणपतिनाग की चर्चा है।[१] समुद्रगुप्त के समय में नागसेन और गणपतिनाग ने अपने तीन राज्य स्थापित किये थे—पद्मावती (जिला ग्वालियर में नरवर से २५ मील उत्तर-पूर्व), विदिशा और मथुरा।[२] चन्द्रगुप्त द्वितीय ने नागकन्या कुबेर नागा का पाणिग्रहण राजनैतिक कारणों से किया था।[३]

सम्भवतः महाक्षत्रप चष्टन के वंशज पूर्वी मालव के शासक कुषाणकाल में रहे। महाक्षत्रप रुद्रसेन प्रथम एवं द्वितीय, विश्वसेन, भर्तृदामन एवं रुद्रसेन तृतीय के सिक्के साँची में प्राप्त हुए हैं।[४] इनमें से कुछ सिक्को को ढालने वाले पकी मिट्टी के चार साँचे भी साँची में उपलब्ध हुए हैं।[५] यह बड़े महत्व का विषय है कि साँची में शक-क्षत्रपों के सिक्के ढाले जाते थे। इसी प्रकार एरण, जिला सागर, से चार क्षत्रप राजाओं (विजयसेन, रुद्रसेन द्वितीय, विश्वसिंह और रुद्रसिंह—के सिक्कों के १५ साँचे प्राप्त हुए हैं। विजयसेन के दो साँचों के ठप्पों पर २४८ ई० तिथि तथा रुद्रसेन द्वितीय के साँचों के ठप्पों पर २५८, २६३ तथा २६७ ई० की तिथियाँ दी हुई हैं।[६] सम्भवतः एरण क्षत्रप-सिक्कों को ढालने की दूसरी टकसाल थी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि एरण पहले से ही टकसाल का कार्य कर रही थी। कनिंघम ने यहीं पर पंचमार्क्ड सिक्के ढालने का अष्टधातु-साँचा प्राप्त किया था।[७]

साँची कानखेड़ा से प्राप्त किसी दूसरी शक-शाखा के महाक्षत्रप राजन् श्रीधरवर्मन के शिलापट्ट अभिलेख[८] से यह प्रगट होता है कि वह भी इस प्रदेश का अधिपति रहा होगा।

शकराज हमुगम का, जो उज्जैन-शाखा के शक-क्षत्रप भूमक का उत्तराधिकारी रहा होगा, विदिशा से तांबे का एक सिक्का मिला है।[९]

स्तूप-१ के पूर्वी प्रवेशद्वार की भूवेदिका पर उत्कीर्ण चन्द्रगुप्त द्वितीय के अभिलेख[10] (राज्यवर्ष ९३, चित्र-२) के अनुसार ईश्वर+वासक गांव के आम्रकार्द्धव ने काकनादबोट श्री महाबिहार में बौद्धसंघ को धन देकर दीपक जलवाए और भिक्षुओं को भोजन कराया। सम्भवतः एरण, जिला सागर, मध्यप्रदेश के पास बसा हुआ आज का ईसावाड़ा ही प्राचीन ईश्वरवासक

---

१. रैप्सन, इण्डियन क्वायंस, पृ० २८.

२. मजूमदार, दि क्लौसिकल एज् पृ० ८.

३. वही पृ० २१.

४. दि जर्नल आफ दि न्यूमिस्मैटिक सोसायटी, खण्ड १८, भाग २, पृ० २२०.

५. साहनी, दि टेक्नीक आफ कास्टिंग क्वायंस, पृ० ४८.

६. इण्डियन आर्कैओलाजी, १९६४–६५, पृ० ७०.

७. साहनी, १ दि टेक्नीक आफ कास्टिंग क्वायंस, पृ० ५०.

८. दि जर्नल आफ दि न्यूमिस्मैटिक सोसायटी खण्ड २४, भाग १, पृ० १८-२९.

९. इंडियन आर्कैओलाजी, १९६२–६३, पृ० ६३.

१०. मार्शल-फूशे, वही, भाग १, पृ० ३८८–८९ अभिलेख ८३३)

है।[१] चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय के अभिलेख उदयगिरि (विदिशा) की गुफाओं में भी मिले हैं।[२] साँची और विदिशा का क्षेत्र पूर्वी मालवा में होने के कारण गुप्त राजाओं का प्रमुख कार्यक्षेत्र रहा। गुप्तकाल में विदिशा का उल्लेख अभिलेखों में "वैदिशपुर" नाम से हुआ है।[३] बड़ौदा से लगभग २६ किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम स्थित करवन नामक स्थान से प्राप्त रांगे के गुप्तकालीन सिक्कों में से एक पर चन्द्रगुप्त द्वितीय के लिए "विक्रम" लिखा है। कहा जाता है कि ४०९ ई० में सौराष्ठ और मालव जीत लेने के पश्चात् उसने उन प्रदेशों के प्रचलन के अनुसार प्रथम बार ये सिक्के चलाए।[४] यह भी कहा जाता है कि इस महाविजय के पश्चात् चन्द्रगुप्त ने "चक्र-विक्रम" श्रेणी वाला स्वर्ण-सिक्का भी प्रचलित किया था।[५] साँची से प्राप्त एक सिक्के पर "जित भगवता पद्मनाभेन" लिखा है। इसे भी चन्द्रगुप्त द्वितीय का सिक्का माना गया है।

चन्द्रगुप्त का बड़ा भाई रामगुप्त भी बहुत समय तक मालव का प्रशासक था। उसके सिक्के विदिशा[६], सागर[७], एरण,[८] तालबेहट[९] आदि अनेक स्थानों से उपलब्ध हुए हैं। विदिशा से प्राप्त दो गुप्तकालीन जैन-मूर्तियों के पादपीठ पर चौथी शती ई० की ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण अभिलेखों से ज्ञात होता है कि चन्द्रप्रभ और पुष्पदन्त की ये मूर्तियां समुद्रगुप्त के पुत्र महाराजा-धिराज श्री रामगुप्त ने प्रतिष्ठापित की थीं।[१०] इस समय ये मूर्तियां विदिशा के राज्यसंग्रहालय में सुरक्षित हैं।

लगभग पांचवी शती ई० गुप्तकालीन ब्राह्मीलिपि और संस्कृत भाषा में 'शूरकुल" का एक अभिलेख (सं० ८३२) भी सांची में मिला है।[११]

कुछ समय के लिए मालव हूणराज तोरमाण के अधिकार में चला गया। उसके पुत्र मिहिरकुल को राजा बालादित्य और यशोधर्म ने हराया।[१२]

पुष्पभूति राजवंश एवं थानेश्वर के महाराजाधिराज प्रभाकरवर्द्धन ने मालव को अपने राज्य में मिला लिया था। अस्तु, मालवराज के दो पुत्र कुमारगुप्त और माधवगुप्त उसके दरबार में आ गये थे। हर्षवर्द्धन ने इसी कुमारगुप्त का अभिषेक किया था। एक बार हर्ष के बड़े भाई राज्यवर्द्धन ने भी मालव पर चढ़ाई करके उसे जीत लिया था; किन्तु युद्ध में वे वीरगति को

---

१. यह सूचना मुझे अपने मित्र एवं भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के अधीक्षक श्री चन्द्रभूषण त्रिवेदी से मिली है
२. मार्शल-फूशे, वही, भाग १, पृ० ३८९।
३. **दि जर्नल आफ़ दि न्यूमिस्मैस्टिक सोसायटी**, खण्ड १३, भाग १, पृ० २७—२८।
४. वही, खण्ड १६, भाग १, पृ० १०१।
५. वही, खण्ड १२, पृ० १०३; वही खण्ड १८, भाग १, पृ० १०८; **इण्डियन आर्कओलाजी** १९६४—६५; पृ० ७०; वही, १९६३—६४, पृ० ८४, वही १९६०—६१; पृ० ५५; वही।
६. १९६७—६८, पृ० ६३।
७. **इंडियन आर्कओलाजी**, १९६०—६१, पृ; १८; वही, १९६१—६२, पृ० ९४।
८. **दि जर्नल आफ़ दि न्यूमिस्मैटिक सोसायटी**, खण्ड २३, पृ० ३४०—४४।
९. वही, खण्ड १८, भाग १, पृ० १०८—१०९।
१०. **इण्डियन आर्कओलाजी**, १९६८—६९, पृ० ४६—४७ तथा ७७।
११. मार्शल-फूशे, वही, भाग १, पृ० ३८७।
१२. वही, पृ० ६।

प्राप्त हुए थे।[१]

हर्ष के पश्चात् गुर्जर-प्रतीहारों[२] ने दीर्घकाल तक मालव पर राज्य किया। इस वंश के चौथे राजा वत्सराज ने लगभग ७८३ ई० में अवंति पर अधिकार करके उज्जयिनी को अपनी राजधानी बनाया। उसके राज्य में मालव और राजपूताना प्रमुख थे। वत्सराज के पुत्र नागभट्ट द्वितीय ने कन्नौज के राजा चक्रायुद्ध को हटाकर मालव पर फिर से अधिकार कर लिया। नागभट्ट द्वितीय के पुत्र रामभद्र के पश्चात् भोज ने लगभग ८३६ ई० में मालव की बागडोर थामी। उसने ४६ वर्ष तक राज्य किया (८३६—८२ ई०)। उसे आदिवराह और मिहिरभोज भी कहा जाता है। उसके पुत्र महेन्द्रपाल प्रथम ने ८८५ ई० में राज्यकार्य सम्भालते ही मगध तथा उत्तरी बंगाल का प्रदेश हस्तगत कर लिया। उसके राजगुरु कवि राजशेखर ने समकालीन कन्नौज का यश-वैभव गाया है। महेन्द्रपाल के पुत्र महीपाल के दरबार में भी राजशेखर प्रमुख कवि थे। राजशेखर के ही शब्दों में महीपाल ने साम्राज्य को बड़े यत्न से प्रगतिशील बनाए रखा। राजशेखर का सबंध त्रिपुरी के कलचुरि-दरबार से भी था। ९४५-४६ में महेन्द्रपाल के समय में उसके कर्मचारी उज्जयिनी और मण्डपिका (माण्डू) में शासक थे। ९६३ ई० में राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीय तथा चंदेलराज धंग (९५०-१००० ई०) ने प्रतीहार-राज्य को ध्वस्त कर दिया और चाहमान, गुहिल, कलचुरि, परमार (पवांर) आदि राजाओं ने भी अपनी स्वतंत्र सत्ता घोषित कर दी।

कलचुरि-नरेश बुधराज का ताम्रपत्रलेख वैदिशनगर से प्रकाशित हुआ था।[३]

साँची के अभिलेख ८४२ से ज्ञात होता है कि नवीं शती ई० में वप्पकदेव, महाराज सठर्व, उसका पुत्र तथा अशेष-महाशब्द श्री रुद्र महामालव के अधिपति थे और उनके राज्यकाल में तुंग ने बोटश्रीपर्वत (साँची) पर कमरों (**लयनों**) से युक्त विहार निर्मित कराया था। इस विहार में पद्मपाणि और वज्रपाणि की प्रतिमाएँ स्थापित थीं।[४] किन्तु इन शासकों का समुचित अभिज्ञान अभी तक नहीं हो सका है।

दसवीं शती के अंत में धारा नगरी का परमार राजा मुंज मालव का अधिपति बना। उसने कलचुरि-नरेश युवराज द्वितीय के समय में चेदि-राज्य पर आक्रमण करके त्रिपुरी ले लिया। उसे श्रीवल्लभ, पृथिवी वल्लभ तथा अमोघवर्ष भी कहते हैं। उसका राज्य पूर्व में भिलसा तक फैला हुआ था। उसके दरबार में धनंजय, भट्ट हलायुध, धनिक, पद्मगुप्त, अमितगति आदि प्रतिष्ठित कवि रहते थे। मुंज स्वयं वीर सेनानी, महाकवि तथा कला और संस्कृति का पोषक था।[५]

मुंज के पश्चात् उसके छोटे भाई सिंधुराज ने तथा सिंधुराज के पुत्र भोज[६] ने १००० ई०

---

१. अग्रवाल, **हर्षचरित**, पृ० ६३, १७७—७८।
२. मजूमदार, **दि एज आफ़ इम्पीरियल कन्नौज**, पृ० १९—३९।
३. मिराशी, **कार्पस इंस्क्रिप्शनम् इण्डिकेरम्**, खण्ड ४, भाग १, पृ० ४७।
४. मार्शल-फूशे, वही, भाग १, पृ० ३९४—९५।
५. मजूमदार, **दि एज आफ़ इम्पीरियल कन्नौज**, पृ० १९—३९।
६. मजूमदार, **दि स्ट्रगल फ़ार एम्पायर**, पृ० ६६—७२।

में मालव का शासन सम्भाला। भिल्सा-प्रदेश तक उसका राज्य पूर्व में था। उत्तरी भारत पर आक्रमण करने वाले मुसलमानों को उसने युक्तिपूर्वक रोका और थानेश्वर तक का क्षेत्र हस्तगत कर लिया। कहा जाता है कि उसने २३ से अधिक ग्रंथ लिखे और भोजपुर नामक भव्य नगर बसाया। भोज का पुत्र जयसिंह था। उसके पुत्र उदयादित्य ने लगभग १०७० से १०८६ ई० तक मालव पर राज्य किया।[१] भिल्सा जिले के अंतर्गत उदयपुर में उसने प्रसिद्ध नीलकण्ठेश्वर महादेव का मंदिर बनवाया।

भैल्लस्वामिपुर (भिल्सा) पर म्लेच्छों (सुलतान इल्तुतमिश, १२३३-३४ ई०) ने आक्रमण करके वहा का किला ले लिया और भगवान् भैल्लस्वामिन् (सूर्य) का मंदिर नष्ट कर दिया। म्लेच्छ उज्जयिनी तक गये और वहां महाकाल के मंदिर को भी ध्वस्त कर दिया। जब म्लेच्छ-सेनायें लौट गयीं तब परमार राजा देवपाल ने भिल्सा के म्लेच्छाधिप (शासक) को मार कर भिल्सा पर फिर अधिकार कर लिया।[२]

लगभग १३०५ ई० में मालव सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के अधिकार में चला गया।[३]

आर्थिक पृष्ठ-भूमि

सांची, सोनारी, सतधारा, भोजपुर तथा आंधेर के स्तूप-समूहों के निर्माण में जनता का विशेष हाथ था। अकेले साँची के स्तूपों के अभिलेखों से पता चलता है कि लगभग ३८० उपासक-उपासिकाओं, २०० भिक्षु-भिक्षुणियों, २७ श्रेष्ठी एवं वाणिक् परिवारों, ५ गाँवों के नागरिकों, ३ गोष्ठियों के सदस्यों, ५ परिवारों तथा ४ समितियों के सदस्यों ने साँची के निर्माण-कार्यों में सक्रिय भाग लिया था। सहकारिता का इतना बड़ा उदाहरण देखने-सुनने में बहुधा नहीं आता।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र इस बात का साक्षी है कि व्यापार-व्यवसाय मौर्यकाल में बड़ी उन्नति पर था। यह उन्नति शुंगकाल में भी सुव्यवस्थित रूप से चलती रही।[४] भरहुत, साँची, बेसनगर के अन्यतम निर्माणकार्य इसी काल में सम्पन्न हुए। सातवाहन काल में सामुद्रिक व्यापार ने बड़ी उन्नति की। उस युग में कालीमिर्च का निर्यात खूब हुआ। कुषाण काल में भारत ने रोम के साथ खूब व्यापार बढ़ाया। आंध्र प्रदेश तथा मध्य भारत के बौद्ध व्यवसायियों ने इस व्यापार में यथोचित भाग लिया और बहुत से स्मारकों का निर्माण किया।[५]

उन दिनों उज्जयिनी मालव में व्यापार केन्द्र थी। कई महामार्ग यहां आकर मिलते थे। गोनर्द-विदिशा की ओर से, प्रतिष्ठान-मासिक-माहिष्मती की ओर से तथा शूर्पारक, मरुकच्छ, सौराष्ट्र की ओर से।[६] मथुरा-मालव-पथ माहिष्मती होकर पोतनपुर-पैठन जाता था।[७]

---

१. प्रतिपाल भाटिया, दि परमाराज, पृ० १०५।
२. एपि० इण्डि०, खण्ड ३२, भाग ३ पृ० १४५।
३. मजूमदार, दि देल्ही सुल्तानेत, पृ० २६।
४. मजूमदार, दि एज आफ इम्पीरियल युनिटी, पृ० ५९५—६०५।
५. मोतीचन्द्र, सार्थवाह, पृ० ७—६।
६. लॉ, उज्जयिनी इन ऐश्यन्ट इण्डिया, पृ० २।
७. मोतीचन्द्र, सार्थवाह, पृ० १३१।

उज्जयिनी से मरुकच्छ को गुजरात में खपने वाले तथा यूनानी व्यापारियों के काम का सामान तथा उत्तर भारत के पुष्करावती, कश्मीर, काबुल, मध्येशिया का सामान आता-जाता था।[१] मरुकच्छ नर्मदा के मुहाने पर बेरीगाजा (भड़ौच) नामक बन्दरगाह था। यहीं से प्रतिष्ठान, शूर्पारक और कल्याण आदि को भी माल जाता था।[२]

गुप्तकाल में जबसे चन्द्रगुप्त द्वितीय ने मालव, गुजरात तथा काठियावाड़ को एक सम्मिलित-क्षेत्र बनाया, तबसे वह क्षेत्र अत्यन्त समृद्धिशाली बन गया।[३] दशपुर उस समय रेशम का बड़ा केन्द्र बन गया था। वहां की रेशम का व्यवसाय करने वाली संस्था ने मदसौर में ४३७—३८ ई० में सूर्य-मन्दिर का निर्माण कराया था। ४७३—७४ ई० में इसी संस्था ने मन्दिर का जीर्णोद्धार भी कराया।[४] यही युग था जब देवगढ़, उदयगिरि, भूभरा, एरण, नचना-कुठारा आदि स्थानों के प्रसिद्ध मंदिर बने और वास्तु एवं शिल्पकला की अन्यतम कृतियाँ प्रस्तुत हुईं। हिन्दू, बौद्ध, जैन, सभी धर्मों का समुचित विकास हुआ और जनता तथा राजा, दोनों ने सबको यथासंभव प्रश्रय और सहायता दी।

गुर्जर-प्रतीहारों, परमारों, चंदेलों, कलचुरियों ने पूर्व एवं उत्तर मध्ययुग में अपनी सुव्यवस्थित आर्थिक परिस्थितियों का लाभ उठाते हुए बहुत से मन्दिर निर्मित करवाए।[५]

परमारों की राजधानी धार का लौह-स्तम्भ प्रसिद्ध है। ५० फुट ऊँचा यह स्तम्भ संसार का सबसे ऊँचा स्तम्भ माना जाता था।[६] १०१९ ई० राजा भोज ने कोंकण-विजय के अवसर पर जलयुद्ध भी किया था। उस युद्ध का चित्रण बम्बई के पास एक सरगांव से मिले वीरों के धुह कीर्ति+पाषाणों (वीरगल) पर अंकित मिला है।[७] इससे यह स्पष्ट होता है कि जल-पोतों का निर्माण भी प्रचुरता से होता था जो व्यापार तथा युद्ध के लिए नितांत आवश्यक था।

स्मारक (चित्र १ और ७३)

साँची की पहाड़ी के मध्य भाग पर स्तम्भ १०, २५, २६, ३४, ३५ स्तूप १, ३, ४, ५, ६, ७, १२, १३, १४, १५, १६, २८, २९ मंदिर ११, १८, ९, ३१ तथा भवन १९, २०, २१, २३ आदि के अवशेष हैं। इसके दक्षिण भाग पर मण्डप ४०, ८, विहार ३६, ३७ ३८ तथा भवन ४२ विद्यमान हैं। पूर्वी भाग में विहार ४५, ४६, ४७, भवन ३२, ४३, ४४, ४९ तथा ५० मिले हैं। पहाड़ी के पश्चिमी भाग पर विहार ५१, स्तूप २ तथा इसके उत्तर-पश्चिम में एक भग्न स्तम्भ तथा अधिष्ठान एवं अर्द्धवृत्ताकार मंदिर आदि निकले हैं।

[अ] स्तम्भ

स्तम्भ १०—(चित्र ३, अथवा मार्शल-फूशे, वहीं, भाग ३ फलक १०७ बी)। यह अशोक-स्तम्भ है। इसके नीचे का भाग अपने मूलस्थान पर अभी तक लगा है। इसके दो बड़े टुकड़े

---

१. वही, पृ० ११७।

२. मजूमदार, **दि एज आफ् इम्पीरियल युनिटी**, पृ० ६०३।

३. मजूमदार, **दि क्लैसिकल एज**, पृ० ५८५।

४ वही, पृ० ५९३।

५. मजूमदार, **दि स्ट्रगल फ़ार एम्पायर**, पृ० ५५७—७६।

६. वही, पृ० ५१९।

७. मोतीचन्द्र, **सार्थवाह**, पृ० १३।

पास ही रखे हैं। कुछ अन्य टुकड़े तथा सिंह-शीर्षक (चित्र ३) संग्रहालय में सुरक्षित हैं। स्तंभ की चोटी पर तथा सिंह-शीर्ष के पेंदे पर गोलाकार गहरा छेद है। तांबे की गोल छड़ को इस छेद में डालकर सिंह-शीर्ष स्तंभ पर टिकाया गया था। ऐसी छड़ राम पुरवा (बिहार) के अशोक-स्तम्भ से प्राप्त हुई है। इससे स्पष्ट है कि लोहे की छड़ का प्रयोग जग लगने के डर से नहीं किया गया था।[१] शीर्ष समेत स्तम्भ की ऊंचाई लगभग ४२ फुट थी,[२] ३५ फुट की लाट और ७ फुट का शीर्ष। लाट और सिंह-शीर्ष दोनों अलग-अलग एक पत्थर से निर्मित (एकाश्म) हैं। दोनों चुनार के कड़े पत्थर के बने हैं। लाट गोल और शुंडाकार है। यह चट्टान पर सीधी बैठी है। इसका पेंदा गोल है। नीचे से ८ फुट तक यह खुरदरी है। खुरदरा भाग भारी पत्थरों के बीच फंसाया गया था। इन पत्थरों को रोकने के लिए मोटी दीवारें बनायी गयी थीं। इन दीवारों और पत्थरों के बीच मिट्टी-कंकड़ भरे गये थे। इन पर ९ इंच मोटी ईंट की बजरी बिछायी गयी थी। बजरी की फर्श से ऊपर लाट का ओपदार भाग आरम्भ हुआ यह फर्श स्तूप के चारों ओर मिली थी। इसके ऊपर और फर्शें थीं। स्पष्ट है कि मौर्यकाल के बाद भी पहाड़ी पर जीवन-क्रम चलता रहा। लाट पर अशोक का अभिलेख[३] संभवतः लाट को भूमि पर खड़ा करने के बाद उत्कीर्ण कराया गया। इसीलिए इसकी रेखाएं अक्रम हैं। यह स्तभ सभवतः ई० पू० २५५ में स्थापित किया गया होगा और लगभग १० वर्ष बाद इस पर अभिलेख खोदा गया होगा।[४] अशोक के अन्य स्तंभों की लाटें भी लगभग ऐसी ही हैं। परन्तु उनके शीर्ष भिन्न हैं।

स्तंभ २५—(मार्शल-फूशे, वही, भाग ३, फलक १०६वीं) ई० पू० दूसरी शती के मध्य में विदिशा में हेलियोदोर के गरुड़ध्वज[५] (चित्र ५) की स्थापना हुई। साँची में स्तम्भ २५ संभवतः उसी समय खड़ा किया गया। यह लगभग १५ फुट १ इन्च ऊंचा है। इसके नीचे का व्यास १ फुट ८½ इंच है। नीचे से यह ४ फुट ६ इंच तक अठपहलू है। ऊपर १६ पहलोंवाला है। इसके ऊपरी सिरे पर शीर्ष के बैठने के लिए खांचा बना है। इसी शीर्ष पर संभवतः सिंह बैठाया गया था। स्तम्भ पर पांचवीं शती ई० का अभिलेख है, जिसमें किसी मण्डप और प्रतोली (द्वार) का उल्लेख है।[६]

---

१. ब्राउन, **इण्डियन आर्किटेक्चर** (बुद्धिस्ट ऐण्ड हिन्दू), चतुर्थ संस्करण, बम्बई, १९५९, पृ० ९।

२. मार्शल-फूशे, वही, भाग १, पृ० २५।

३. वही, पृ० २८७, "(१)·········(२) या भेद·········घे मगे कटे (३) भिखुनं च भिखुतीनं चाति पुत्रप (४) पोतिके चंदम-सुरियिके ये संघं (५) भाखति भिखु वा भिखुनि व ओदाता—(६) नि दुसानि सनं धाययितु अनावा—(७) ससि वासापेतवियेे इचाहि में कि—(८) ति संघे समगे चिल-थितीके सियाति"

४. मार्शल-फूशे, वही, भाग १, पृ० २९।

५. मार्शल-फूशे, वही, पृ० ४९, पाण्डेय, **हिस्टॉरिकल ऐण्ड लिटरेरी इंस्क्रिप्पशंस** पृ० ४४ : "(१) देव देवस वासुदेवस गरुड़ध्वजे अयं (२) कारिते इअ हेलि औदोरिण भाग—(३) वतेन दियस पुत्रेण तख्खसिलाकेन (४) योन-दूतेन आगतेन महाराजस (५) अंतलिकितस उपंता सकास रजो (३) कासीपुत्रस भागभद्रस त्रातारस (७) वसेन चतुदसेन राजेन वधमानस ॥"

६. मार्शल-फूशे, वही, पृ० ३९१ (अभिलेख ८३६)

स्तम्भ २६—(मार्शल-फूशे, वही, भाग ३, फलक १०६ डी) २२ फुट ऊंचा यह स्तम्भ भी गुप्त युगीन है। अब यह तीन टुकड़ों में उपलब्ध है। इसकी लाट नीचे चौकोर और ऊपर गोल है। इसका धर्मचक्र युक्त सिंह-शीर्ष अलग से बना है और अब संग्रहालय में सुरक्षित है। इसके अभिलेख[१] में विहार-स्वामी गोशूर सिंह बल के पुत्र रुद्रसिंह द्वारा बनवाए वज्रपाणि-स्तम्भ, द्वार के दो स्तम्भ, विहार के मण्डप और प्रतोली (द्वार) के दान का उल्लेख है।

स्तम्भ ३५–(मार्शल-फूशे, वही, भाग ३, फलक १०६ सी)। यह भी गुप्तकालीन है। इसका खड़ा हुआ भाग ९ फुट ऊंचा है और निचला भाग पत्थर की चौकी में फंसा है। चौकी से लोहे की छेनियां मिली थीं। इसका शीर्ष बोधिसत्व वज्रपाणि की खड़ी मूर्ति (चित्र ६) है, जिसका वर्णन आगे किया जाएगा। जनरल मैसी ने अपने ग्रंथ में चित्र ३३ के पहले रेखा-चित्र में वज्र-पाणि शीर्ष समेत स्तंभ प्रदर्शित किया है।

[ब] स्तूप

स्तूप १ (चित्र ७) : अशोक के समय में स्तूप १ की जमीन की सतह शुंगकालीन सतह से ४ फुट नीची थी। उसका बनवाया हुआ ईंटों का स्तूप वर्त्तमान स्तूप के अन्दर है। अशोक के समय में निर्मित स्तूप का व्यास ६० फुट था। उसके आस-पास चुनार पत्थर से बने हुए छत्र के ओपदार टुकड़े (सं० २७४६-४९) मिले थे। अशोककालीन शिल्प इसी पत्थर का है। यह स्तूप अशोक-स्तंभ वाली फर्श पर निर्मित किया गया। अस्तु ईंटों का स्तूप अशोक ने ही बनवाया था। ईंटें पकाई हुई और गारे से जुड़ी हुई हैं। उनका आकार १६×१०×३ इन्च हैं ?[२] प्रारम्भिक स्तूप क्षतिग्रस्त अवस्था में मिला था। (चित्र ७४)। उसके आकार का समुचित अनुमान लगाना अब संभव नहीं है। वह अर्द्धगोलाकार रहा होगा। निचले भाग से लगी मेधी रही होगी। एक या अधिक छत्रोंवाली छत्रयष्टि एकाश्म चौकोर हर्मिका के बीच रही होगी। ऐसी हर्मिका सारनाथ के स्तूप से मिली है। छत्र के कुछ टुकड़े संग्रहालय में प्रदर्शित हैं। इस स्तूप की भूवेदिका भी रही होगी। मौर्यकालीन वेदिकाएं अधिकांशत: लकड़ी की बनी होंगी। साँची में उनका अब कोई चिन्ह नहीं मिलता।

संभवत: अग्निमित्र या उसके परिवर्ती शासक के समय में निम्नांकित अंग प्रारम्भिक स्तूप में जोड़े गये। (१) पत्थर की पटियों वाला नीचे का प्रदक्षिणा-पथ (२) दोनों सोपान (३) भूवेदिका (४) मेधी और सोपानों की वेदिकाएं (५) हर्मिका, अस्थि-मंजूषा का ढक्कन और छिछत्रावली। फलस्वरूप स्तूप का व्यास १२० फुट और ऊँचाई ५४ फुट के लगभग हो गई। इस ऊँचाई में हर्मिका और छत्रावली सम्मिलित नहीं है। मेधी का प्रदक्षिणा पथ जमीन से १५ फुट ६ इन्च की ऊंचाई पर है। अण्ड के निचले भाग से मेधी लगभग ५ फुट ९ इन्च बाहर निकली है।

पहले अण्ड अपनी नींव से चोटी तक बनाया गया है। तब मेधी की दीवार उससे सटा-कर लगायी गयी। इस दीवार की नींव पहाड़ी की चट्टान से कुछ फुट ऊपर ही रुक जाती है।

---

१. वही, पृ० ३९१ (अभिलेख ८३५) "अरक ? विहार स्वामी-गोशूर सिंहबल-पुत्र-रुद्र सिंहस्य वज्रपाणि स्तंभ: तोरण स्तम्भ-द्वयं-विहारं-मण्डप : प्रतोलीचेति।"

२. मार्शल-फूशे, वही, भाग १, पृ० १९; कनिंघम, भिल्सा टोप्स, पृ० १७३।

२ से ५ इन्च तक मोटे चूने का पलस्तर अण्ड पर लगाया हुआ है । मेधी के प्रदक्षिणा-पथ की फ़र्श पर भी यही पलस्तर है। परन्तु अण्ड के निचले भाग तक यह पलस्तर नहीं पहुचा। अस्तु मेधी की दीवार और अण्ड साथ ही बनाये गये होंगे। स्तूप के पलस्तर पर झालर और मालाओं का अलंकरण था।[१] अण्ड के अधिकांश भाग पर अभी तक पलस्तर लगा हुआ है। दक्षिण-पश्चिम की ओर स्तूप को १८२२ में कैप्टेन जॉनसन ने खोला था।[२] तभी उधर का पलस्तर निकल गया। पलस्तर में पत्थर और ईंटों की बजरी मिली हुई है।

हर्मिका के ७० से अधिक प्राप्त टुकड़े बड़ी सफाई से जुड़े हैं। वेदिका की भांति इसके भी प्रमुख अंग उष्णीष, सूची और स्तम्भ हैं। स्तम्भ ९ फुट ११ इन्च ऊंचे हैं। इनके नीचे का २ फुट ६ इन्च ऊँचा खुरदरा भाग अण्ड में गड़ा है। उष्णीष का ऊपरी भाग गोलाकार है। इसके जोड़ सीधे न होकर टेढ़े बने हैं। लगता है वे लकड़ी की वेदिका के आधार पर बने हैं। हर्मिका चौकोर है। इसकी प्रत्येक भुजा २१ फुट ६ इन्च लम्बी है। प्रत्येक भुजा में ८ स्तम्भ और ६ मध्यवर्ती स्तम्भ हैं। अण्ड का ऊपरी सिरा चपटा है। इसका व्यास ३८ फुट है। नितांत सादी हर्मिका इसी सिरे पर खड़ी है। सारनाथ की अशोककालीन हर्मिका सादगी का ज्वलन्त उदाहरण है।[३] हर्मिका पर चार श्रद्धाभिव्यजक अभिलेख[४] (सं० ६०७—१०) खुदे हैं।

यहीं पर पाषाण की बड़ी अस्थि-मजूषा के ढक्कन के दो टुकड़े मिले हैं। मंजूषा का व्यास ५ फुट ७ इन्च है और ऊँचाई १ फुट ८ इन्च है। ढक्कन पर चौकोर छेद हैं जिसमें छत्रयष्टि लगायी गयी है। निस्संदेह यह मंजूषा शुंगकालीन है। इसमें संभवत: बुद्ध की अस्थियां रही होंगी।[५] सर जॉन मार्शल का कहना है कि अशोक का स्तूप सम्भवतः बुद्ध की अस्थियों की प्रतिष्ठा के लिए ही निर्मित हुआ था। उस समय स्मारक रूप में स्तूप नहीं बनते थे और अशोक के बनवाए हुए अन्य स्तूपों से बुद्ध के अस्थि-अवशेष ही प्राप्त हुए हैं।[६]

भूवेदिका की पूरी ऊँचाई लगभग १० फुट ७ इन्च, स्तम्भों की ऊंचाई ८ फुट ४ इन्च और उष्णीष की ऊंचाई २ फुट ३ इन्च है। इसकी नींव पत्थरों की दो या तीन तहों से बनी है।

भूवेदिका में शुंगकालीन नगरों जैसे चार प्रवेश-द्वार हैं। प्रत्येक द्वार में ३० स्तम्भ हैं। चारों द्वारों में कुल १२० स्तम्भ हुए। इनमें से १०६ स्तम्भ प्राचीन और १४ नये हैं। उत्तर में भूवेदिका स्तूप से ९ फुट ६ इन्च दूर है। दक्षिण में दोहरे सोपान के कारण स्तूप से वेदिका की दूरी ७ फुट है। वेदिका के अभिलेखों में दाताओं के नाम और उनके वास-स्थान का उल्लेख है। अधिकांश दाता भिक्षु, भिक्षुणी या उपासक-उपासिकाएं हैं। वेदिका के बनने में ५ या ६ वर्ष लगे होंगे।

तत्पश्चात् प्रदक्षिणापथ तैयार किया गया। इसकी चौड़ाई सोपानों के आस-पास १२ फुट ९ इन्च तथा अन्यत्र ९ फुट ६ इन्च है। इस पर पत्थर के पटिए बिछे हैं। उनमें से कुछ अभिलिखित हैं।

मेधी तथा सोपानों की वेदिकाएं छोटी हैं। किन्तु उनमें सफ़ाई अधिक है और कमल के

---

१. मार्शल-फूशे, वही, भाग १ पृ० ३०, मार्शल—ए **गाइड टू साँची**, पृ० ३५।
२. मार्शल फूशे, वही भाग १, पृ० ८।
३. साहनी, **कैटेलाग ऑफ दि म्यूजियम ऑफ आर्कओलॉजी**, सारनाथ १९१४, पृ० ३।
४. मार्शल-फूशे, वही, भाग १, पृ० ३६०।
५. वही, पृ० ३२।
६. वही, पृ० २५।

ये खण्ड ५ फुट ३ इन्च से ९ फुट ७ इन्च तक लम्बे, ६ से १० इन्च तक मोटे, ८ इन्च चौड़े और ९$\frac{१}{८}$ इन्च मोटे हैं। दूसरे सभी स्तम्भ एक से होते हुए भी २ फुट ५ इन्च ऊंचे हैं। इनका उष्णीष २०$\frac{१}{२}$ इन्च ऊंचा और ७$\frac{३}{८}$ इन्च मोटा है। नीचे वाले स्तम्भ जमीन में गड़े हैं और नींव के सबसे निचले पाषाण खण्ड से जुड़े हैं। इन स्तम्भों के तीन ओर अलंकरण हैं। अन्य स्तम्भों पर केवल सम्मुख भाग में एक पूरा तथा दो आधे फुल्ले हैं। इनमें कमल, लता अथवा पशुओं की आकृतियां उकेरी गयी हैं। इनके ऊपरी भाग पर कहीं-कहीं अभिलेख भी हैं।

स्तूप के दक्षिण भाग में दो सोपान हैं। दक्षिण-पूर्व से और दक्षिण-पश्चिम से आकर दोनों ऊपर मिलते हैं। प्रत्येक सोपान में २५ सीढ़ियां हैं। प्रत्येक सीढ़ी ७ इन्च ऊची और १७ इन्च चौड़ी है। सोपानों की वेदिका के प्रत्येक दो स्तम्मों के बीच दो सूची-स्तम्भ हैं। परन्तु सोपानों की चोटी पर दो के बजाय तीन सूची-स्तम्भ हैं। सोपानों की चोटी के दो स्तम्भ उनके नीचे वाले स्तम्भों की भांति हैं। किन्तु चोटी के स्तम्भ केवल दो ओर से अलंकृत हैं।

मेधी की वेदिका के नींव के पाषाण-खण्ड प्रदक्षिणा-पथ की फर्श पर ही खड़े हैं। अपनी वृत्ताकार स्थिति और भार के बल पर यह वेदिका खड़ी है। इसके सभी स्तम्भ समान आकार के हैं।

शुंगकाल में सम्भवतः सम्पूर्ण स्तूप चमकीले सफ़ेद रंग का था। उस पर झूलती हुई रंगदार पुष्प-मालाएं थीं। वेदिकाएं लाल थीं, छत्रावली भी लाल या सुनहरे रंग की रही होगी।[१]

मेधी और सोपानों की वेदिकाओं के स्तम्भों के बाहरी भाग पर पूर्ण या अर्द्धफुल्ले बने हैं। इनमें कमल की सादी बेल, महिष, हिरण शार्दूल मुँह से मुँह लगाये हिरण-युग्म, हाथी, बलीवर्द मकर, घोड़े आदि प्रदर्शित हैं।

तोरण-द्वार : साँची से पहले का तोरण-द्वार भरहुत में मिला है। सातवाहन राजाओं के समय लगभग १०० ई० पूर्व, में या इससे कुछ पहले चार-तोरण-द्वार साँची के स्तूप १ की भूवेदिका के चारों प्रवेश-द्वारों के सामने लगाये गये और प्रवेश-द्वारों को अभिनव रूप प्रदान किया गया।

प्रत्येक तोरण-द्वार में दो स्तम्भों पर तीन सिरदल टिके हुए हैं। सिरदलों के दोनों सिरे कुण्डलित हैं। इससे यह अर्थ लगाया जाता है कि बुद्ध के जीवन-वृत्तों का पूर्ण लेखा-जोखा सम्भव नहीं हैं। मनुष्य की कुण्डली की भांति ये वृत्त खुलते-चले जाते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि बांस की दो लकड़ियों पर तीन कुण्डलियाँ टिका दी गई हैं जो अनवरत खुलती चली जा रही हैं और शोध की नूतन दिशाओं का संकेत करती हैं।

सबसे प्राचीन दक्षिणी तोरण-द्वार है। इसके बाद क्रमशः उत्तरी, पूर्वी और पश्चिमी तोरण-द्वार आते हैं।[२] तोरण द्वारों का निर्माणकाल दो या तीन शताब्दियों में पूरा हुआ होगा। इनको सही ढ़ंग से खड़ा करने के लिये भूवेदिका के प्रवेश-द्वारों में तीन-तीन स्तम्भ और जोड़े फुल्ले बने हैं। इन वेदिकाओं के स्तम्भ नींव के भारी पाषाण खण्डों के छेदों में फंसे हैं। नींव के

---

१. मार्शल-फूशे, वही, भाग १, पृ० ३६।

२. वही

गये थे।[1] दक्षिण और उत्तर के प्रवेश-द्वार एक से हैं। किन्तु पूर्व और पश्चिम के प्रवेश-द्वारों के स्तभ छोटे हैं।

पश्चिमी तोरण द्वार के दक्षिणी स्तम्भ के एक अभिलेख[2] में अयचूड़ के शिष्य बलमित्र का उल्लेख है। यह नाम दक्षिणी तोरण-द्वार के बिचले सिरदल के स्तूप पर भी अंकित है।[3] पूर्वी तोरण-द्वार के दक्षिणी स्तम्भ और पश्चिमी तोरण-द्वार के उत्तरी स्तम्भ पर भी एक ऐसा अभिलेख है, जिसमें कुरार-वासी एवं अचावड़ के श्रेष्ठी नागपिय का उल्लेख है।[4]

चारों तोरण-द्वार अलंकरण में लगभग एक से हैं। लगता है कि इनका निर्माण काष्ठकारों ने किया था। इनके बीच में चौकोर शीर्षक तथा तीन छोटे स्तम्भ हैं। स्तम्भों के बीच मूर्तियां रखी हैं। शीर्षकों के ऊपर पीठ-से-पीठ सटाये सिंहों का अग्रभाग एवं खड़े हुए हाथी या बौने बैठे दिखाये गये हैं। नीचे के सिरदल के सिरों को संभालती हुई वृक्षिकाए, वृक्षदेवता, शाल भंजिकाएं या पक्षियां खड़ी हैं। ऊपर की वृक्षिकाएं आकार में छोटी हैं। ऊपर के सिरदलों के सिरों पर सिह या हाथी बैठे हैं। अन्य खाली स्थानों में अश्वारोही या गजारोही विद्यमान हैं। तोरणों को प्राचीन साहित्य में धनुषाकार और विचित्र लता-पत्रों से अलंकृत बताया गया है।[5]

दक्षिणी तोरण-द्वार

इसके ऊपरी और निचले सिरदल उलटे लगे हैं।

ऊपरी सिरदल के पृष्ठभाग पर सात मानुषी बुद्ध तीन स्तूपों और चार वृक्षों द्वारा प्रदर्शित हैं। बीच वाले स्तूप पर तीन पंक्तियों का अभिलेख (सं३९८) उत्कीर्ण है, जिससे स्पष्ट है कि शिल्पियों के अग्रणी आनन्द ने सातवाहन शासनकाल में इस सिरदल का दान किया। बीच के सिरदल पर षड्दन्त जातक है। निचले सिरदल पर बुद्ध की अस्थियों के लिए कुशीनारा में युद्ध का प्रदर्शन है।

सम्मुख भाग में ऊपरी सिरदल पर कमलों के बीच बुद्ध-जन्म का दृश्य है। बीच के सिरदल पर रामग्राम के स्तूप की यात्रा पर जाते हुए अशोक और उनके राजकर्मचारी हैं। इस स्तूप पर दो पंक्तियों वाला अभिलेख है—"अयचुड़स धमकथिकस अतेवासिनो बलमित्रस दानं" (मार्शल-फूशे, वही, भाग 1, पृ० ३४२, सं० ३९९)। निचले सिरदल पर कुम्भाण्डों या क़ीचकों के मुखों से बेलें निकल रहीं हैं।

निचले सिरदल के नीचे पश्चिमी स्तम्भ पर धर्मचक्र-प्रवर्तन, तथा अशोक और इन्द्र की यात्रा का अंकन है। स्तम्भ के भीतरी भाग पर सम्बोधि, अशोक की वज्रासन-यात्रा एवं मुकुट-पूजा के दृश्य हैं। पूर्वी-स्तम्भ अब संग्रहालय में सुरक्षित है। इसके सम्मुख भाग पर बुद्ध और

---

1. मार्शल-फूशे, वही, भाग 1, पृ० ३६।
2. वही, पृ० ३४२, अभिलेख ४०२—"अयचुड्स अतेवासिनों वलिमित्रस दानथभो।"
3. वही—"(i) अयचुड्स धमकथिकस (ii) अतेवासिनों बलमित्रस दानं(अभिलेख ३९९)।
4. वही, पृ० ३४१ (अभिलेख ३९७) तथा पृ० ३४२ (अभिलेख ४०३)।
5. शिवराममूर्ति, एम० ए० एस० आई०, (७३), पृ० १० "दूराल्लक्ष्यं सुरपति धनुष्चारुणा तोरणेन" (मेघदूत २.१५), "तोरणै : काञ्चनैर्दीप्तां लतापंक्ति विचित्रतै :" (रामायण, ५/२/१८)।

मुचलिंद, बुद्ध का भिक्षापात्र तथा त्रपुस्स और भल्लिक के दृश्य हैं। इसके भीतरी भाग पर सम्बोधि, मन्दिर, स्वस्तिक का तृण-दान तथा बुद्ध का चंक्रम प्रदर्शित हैं। इसके स्थान पर अब नया स्तम्भ लगा दिया गया है।

इस द्वार के दो सिंह-शीर्ष पास ही खड़े हैं। मौर्यकालीन सिंह-शीर्ष को देखकर इनका निर्माण किया गया होगा। तोरण-द्वार पहले प्रायः लकड़ी के बनते थे। इसीलिए ये दोनों शीर्ष सूखी लकड़ी जैसे अकड़े हुए और कमजोर लगते हैं। सुडौलमौर्यकालीन शीर्षों से इनकी तुलना नहीं की जा सकती।

पश्चिमी स्तम्भ के भीतरी भाग पर "वेदिसकेहि दंतकारेहिरूपकंम्मकतं"[१] (अभिलेख ४००, चित्र ८) उत्कीर्ण है। स्पष्ट है कि यह स्तम्भ विदिशा के हांथीदांत के शिल्पियों ने तैयार किया था। उन दिनों दशार्ण का क्षेत्र हांथी दांत की कला और व्यापार के लिए प्रसिद्ध था।[२]

उत्तरी तोरण-द्वार

इसका अधिकांश मूल भाग सुरक्षित है। (चित्र ९)। इसकी चोटी पर पहले सात मूर्तियां थीं। इनमें से एक चामरधारी की आकृति कम हो गयी है। बाकी दो शार्दूल, दो त्रिरल, एक चामरधारी और हाथियों की पीठ पर टिका हुआ ३२ अरोंवाला धर्मचक्र अभी तक विद्यमान हैं।

सम्मुख भाग में ऊपरी सिरदल पर सात मानुषी बुद्धों का प्रदर्शन है। इस सिरदल के नीचे, दो शार्दूल, दो शालभंजिकाएं तथा चार अश्वारोही हैं। बीच के सिरदल पर मानुषी बुद्धों के दृश्य हैं। बिचले सिरदल के नीचे दो शालभंजिकाएं तथा बीच में तीन गजारोही हैं। चौथा गजारोही अब सग्रहालय में है। नीचे सिरदल पर विश्वंतर और ऋष्यशृंग (एक शृंग) या

---

१. मार्शल-फूशे, वही, भाग १, पृ० ३४२।

२. लॉ—**हिस्टॉरिकल ज्याग्रफी**, पृ० ३३७, फुटनोट १३ (शाफ, **दि पेरिप्लस आफ दि इरीथ्रियन सी**, पृ० ४७, व २५३); स्तूप १ की विभिन्न वेदिकाओं और तोरण-द्वारों पर विदिशा-निवासियों के अन्य अनेक अभिलेख हैं। (मार्शल-फूशे, वही भाग १) :—

—वेदिसा आहत-रखितसदानम् (अभिलेख १५)
—यखीय भिचूनिये वेदिसा दानम् (अभिलेख १३७)
—नंदुतरायदानं वेदिसिकाय भिचुनिय (अभिलेख १७४)
—वरुलाभिसान गोठियादान वेदिसातो (अभिलेख १७८)
—गड़या भिचुनिया वेदिसिकाय दानम् (अभिलेख २४४)
—वेदिसा मोहिकाये भिचुनिये दानम् (अभिलेख ३१८)
(१) वेदिसिकीय पुसरखितस असवारिकस
(२) पाजावतिय नागदताय दानम् (अभिलेख ३२१)
—वेदस दतस कलवाड़स दानम् (अभिलेख ३५३)
—सिरिया वेदिसिकाय भिचुनिया दानम् (अभिलेख ३८८)
—वेदिसिकायं भिखुनिय ग··· ·········(अभिलेख ७३९)
—वेदिसा रे··· ··· ······नंदुतराया (अभिलेख ८२६)
—वेदिस दतस कलवीड़स दानम् (अभिलेख ३५४)
—वेदस दतस कलवड़स दानम् (अभिलेख ३५५)

अलम्बुसाजातक अंकित है। निचले सिरदल के नीचे कोष्ठकों में झूलती हुई वृक्षिकाएं एवं शालभंजिकाएं प्रस्तुत हैं।

पूर्वी स्तम्भ पर ऊपर से अजारोही, बुद्ध-जन्म, सिंहारोही, बुद्ध-जन्म, वृषारोही, गज-शीर्ष, श्रावस्ती-चमत्कार, जेतवनाराम, राजा-प्रसेनजित की यात्रा तथा आमोद-प्रमोद के दृश्य हैं।

पश्चिमी स्तम्भ पर अजारोही, धर्मचक्र प्रवर्तन, सिंहारोही, धर्मचक्र प्रवर्तन, वृषारोही, सांकाश्य-चमत्कार, महाभिनिष्क्रमण तथा कपिलवस्तु में शाक्यों को उपदेश देने के दृश्य हैं।

पूर्वी स्तम्भ के भीतरी भाग पर इन्द्रशैलगुहा, बिम्बिसार अजातशत्रु की यात्रा तथा यष्टि-वन में बुद्ध के दृश्य हैं। इसी स्तम्भ के पूर्वी भाग पर त्रिरत्न, बुद्धपाद तथा मधुमालती लता से बनी प्रमाणयष्टि के सुन्दर दृश्य उत्कीर्ण हैं।

पश्चिमी स्तम्भ से लगी हुई एक सूची पर उत्कीर्ण अभिलेख "काकणाए भगवतो प्रमाण-लठि" से इस दृश्य का स्पष्टीकरण होता है। इन्हें देखकर ऐसा लगता है कि बुद्ध के सतत प्रयास से जो बुद्ध-धर्म-संघ का त्रिरत्न बना, उसकी सेवा और समृद्धि के लिए राष्ट्र ने अपनी निधि न्यौछावर कर दी। हाथियों की सूड़ों पर झूलते हुए विभिन्न हीरक-हार इसी तथ्य के प्रमाण हैं। इनमें से एक हार में अष्टमांगलिक माला है जिसमें चक्र, अंकुश, पुष्पदाम, दर्पण, कटार, परशु, श्रीवत्स, मत्स्यद्वय, वैजयंती, कल्प-वृक्ष, कमल आदि पिरोये गये हैं।

पश्चिमी स्तम्भ के भीतरी भाग वाले दृश्यों में कुशीनारा के मल्लों की चैत्य-वन्दना, वैशाली-चमत्कार और कपिलवस्तु में बुद्ध के आगमन वाले दृश्य हैं।

तोरण-द्वार के पृष्ठभाग के ऊपरी सिरदल पर षड्दन्त जातक, बिचले सिरदल पर कोनों में मोर, बीच में मार-विजय तथा निचले सिरदल पर विश्वन्तर जातक अंकित हैं। सिरदलों के बीचवाले छह छोटे स्तम्भ भी दोनों ओर से अलंकृत हैं। पूर्वी स्तम्भ पर ऊपर से अजारोही, कमल या बुद्ध-जन्म, अजारोही, बुद्ध-जन्म, अश्वारोही, गज-शीर्ष, महापरिनिर्वाण तथा पश्चिमी स्तम्भ पर अजारोही, कमल या बुद्ध-जन्म, अजारोही, महापरिनिर्वाण अश्वारोही, गज-शीर्ष एवं सम्बोधि का प्रदर्शन है।

पूर्वी तोरण-द्वार

यह भी अपने मूलरूप में सुरक्षित है। अब इसके सिरे पर एक त्रिरत्न और हाथी शेष हैं।

इसके सिरदलों के सिरों पर पहले सभी हाथी थे। किंतु निचले सिरदल के उत्तरी सिरे पर छोटा सा सिंह बैठा है।

सम्मुख भाग में ऊपरी सिरदल पर सात मानुषी बुद्ध, बिचले सिरदल पर महाभिनिष्क्रमण और निचले सिरदल पर अशोक की वज्रासन-यात्रा का दृश्य है।

दक्षिणी स्तम्भ पर ऊपर से वृषारोही, बुद्ध-जन्म, शार्दूल, धर्मचक्र प्रवर्तन, शार्दूल, गज-शीर्ष, नीरांजना नदी पर बुद्ध का चंक्रम, संबोधि, जटिल या काश्यप भिक्षुओं का धर्म-परिवर्तन और बुद्ध के पास सम्राट बिम्बिसार या अजातशत्रु के आने के दृश्य हैं।

उत्तरी स्तम्भ के सम्मुख भाग पर ऊपर से वृषारोही, बोधिसत्व मैत्रेय, शार्दूल, बुद्ध-जन्म, शार्दूल, गज-शीर्ष और स्वर्ग के ६ लोक प्रदर्शित हैं।

दक्षिणी स्तम्भ के भीतरी भाग पर जटिलों की धर्म-दीक्षा के तीन दृश्य तथा उत्तरी स्तम्भ के भीतरी भाग पर बुद्ध से धर्मोपदेश करने के लिए देवताओं की अभ्येषणा, मायादेवी

का स्वप्न और कपिलवस्तु में बोधिसत्व के आगमन के दृश्य हैं।

तोरण-द्वार के पृष्ठभाग में ऊपरी सिरदल पर सात मानुषी बुद्ध, बिचले सिरदल पर पालतू तथा जगली पशुओं एवं पक्षियों की बुद्ध-बंदना और निचले सिरदल पर रामग्राम-स्तूप की हाथियों द्वारा पूजा-अर्चना के दृश्य हैं। दक्षिणी और उत्तरी स्तम्भों पर ऊपर से सिंहारोही, महापरिनिर्वाण, कमल या बुद्ध-जन्म, अजारोही, गज-शीर्ष हैं। सिरदलों के बीच के स्तम्भ भी अलंकृत हैं।

पश्चिमी तोरण-द्वार

इस पर भी पहले कई मूर्तियां थीं। परन्तु अब केवल बीच में पीठ-से-पीठ सटाये सिंहों की पीठ पर रखे हुए चक्र के अवशेष हैं।

इसके सम्मुख भाग में ऊपर के सिरदल पर सात मानुषी बुद्ध, बीच के सिरदल पर संबोधि, धर्मचक्र प्रवर्तन, और नीचे वाले सिरदल पर षड्दन्त जातक और महापरिनिर्वाण के दृश्य हैं।

उत्तरी स्तम्भ पर ऊपर से शार्दूल, सम्बोधि, अश्वारोही, विपश्यी की सम्बोधि, अश्वारोही, शाक्यमुनि की सम्बोधि, गजारोही, यक्ष-शीर्ष, महाकपि-जातक, धर्मोपदेश के लिए देवताओं की अध्येषणा तथा इन्द्र का आगमन प्रदर्शित हैं।

इसके पृष्ठभाग में ऊपर के सिरदल पर अस्थियों का प्रस्थान, बीच के सिरदल पर अस्थियों के लिए युद्ध तथा नीचे के सिरदल पर संबोधि एवं मार-विजय के दृश्य हैं।

ऊपरी स्तम्भ के भीतरी भाग पर श्याम जातक, मुचलिन्द तथा गंगा पार करते हुए बुद्ध के अवशेषों के दृश्य अंकित हैं। दक्षिणी स्तम्भ के भीतरी भाग पर सबोधि तथा कपिलवस्तु में शाक्यों की दीक्षा के दृश्य हैं। निचले सिरदल के नीचे दोनों स्तम्भों पर पीठ-से-पीठ सटाए चार-चार यक्षों वाले शीर्ष हैं।

स्तूप २ (चित्र १०) : यह स्तूप ३ के आकार-प्रकार पर आधारित है। इसकी मेधी की वेदिका का कुछ भाग, जिसमें उष्णीष, स्तम्भ और सूची है, संग्रहालय में प्रदर्शित हैं (सं २७५५ अ-२८४५)। दोहरा सोपान पूर्व की ओर है। अव्यवस्थित उत्खनन-कार्य के कारण इस स्तूप का अण्ड अपने मूल रूप में सुरक्षित नहीं है।[१] इसमें भी चार प्रवेश-द्वार हैं। प्रवेश-द्वारों को मिलाती हुई भूवेदिका भी विद्यमान है। तोरण-द्वार यहाँ नहीं हैं। लगभग अपने सभी अंगों समेत यह स्तूप शुंगों के समय निर्मित हुआ। इसके स्तम्भ २२ (मार्शल फूशे, वही, भाग ३, फलक ७८ और २७ तथा फलक ७९) के अलंकरण को सातवाहन काल का माना जाता है।

स्तूप ३ (चित्र ११) : स्तूप १ से उत्तर पूर्व ५० गज पर यह स्तूप स्थित है। इसके दक्षिण में १७ फुट ऊंचा एक तोरण द्वार है। स्तूप का व्यास मेधी समेत ४९ फुट ६ इन्च और ऊंचाई २० फुट है। हर्मिका और छत्र समेत इसकी ऊँचाई ३५ फुट ४ इन्च है। इसमें मेधी और सोपान बाद में लगाये गये। इसकी भूवेदिका के चार स्तम्भों की चौकियां दक्षिण-पश्चिम अपने मूल-स्थान में और एक चौकी दक्षिण-पूर्व की ओर मिली थी। इसके कुछ टूटे हुए स्तम्भ प्रदक्षिणा-पथ में तथा कुछ विहार-मन्दिर ४५ के सामने ऊचे अधिष्ठान पर बिखरे मिले थे। सोपान की वेदिका के नीचे वाले दो स्तम्भ अपनी मूल स्थिति में पाये गये थे। दूसरे स्तम्भ वेदिका की

१. मार्शल-फूशे, वही; भाग १ पृ० ७९।

नींव, सूची व उष्णीष आदि खोदकर निकाले गये थे। इसकी वेदिका स्तूप १ की सोपान वेदिका के समान है। सोपान के ऊपर का एक स्तम्भ अलग-सा जान पड़ता है। इस स्तम्भ के दक्षिण-पूर्वी भाग अलंकृत हैं। लगता है कि यह स्तम्भ बाद में बनाया गया। मेधी और हर्मिका की वेदिकाएं भी सोपान वाली वेदिका के समकालीन हैं। संभवतः स्तूप १ के पुनर्निर्माण के कुछ समय बाद ही यह स्तूप बनवाया गया था। कुछ समय बाद सोपान का स्तम्भ, भूवेदिका और तोरण-द्वार इसमें जोड़े गये। स्तूप के हर्मिका-छत्र का व्यास ४ फुट ४ इन्च है। इस स्तूप का निर्माण-काल दूसरी शती ई० पू० है। इसकी पुष्टि स्तूप १ के तीन अभिलेखों (सं०६१८-२०, ७२२) से होती है।[१] इनसे यह भी ज्ञात होता है कि स्तूप ३ की भूवेदिका लगभग १ शताब्दी बाद खड़ी की गयी थी। यह भूवेदिका ८ फुट ऊंची है। वेदिका का उष्णीष १ फुट ८ इन्च ऊंचा है। अन्य स्तम्भ अपने खुरदरे भाग से ऊपर ३ फुट ६ इन्च ऊंचे हैं। तोरण-द्वार के पास तथा शेष तीन दिशाओं में भी स्तूप १ जैसे प्रवेश-द्वार रहे होंगे। सब मिलाकर स्तम्भों की संख्या ८८ होनी चाहिए। स्तूप ३ का तोरण-द्वार स्तूप १ के तोरण-द्वारों से बाद का और संभवतः पहली शती ई० के आरम्भ का है। इसके बनते-बनते स्तूप के प्रदक्षिणापथ के चारों ओर मलवा इकट्ठा हो गया था। भूमि की सामान्य सतह १ से २ फुट ऊपर उठ गई थी। परिणामस्वरूप सोपान का निचला भाग मिट्टी से ढक गया था। १६ फुट ऊंचे इस तोरण-द्वार का अलंकरण लगभग स्तूप १ के तोरणों जैसा है। यक्ष-यक्षी, अश्वारोही, त्रिरत्न, धर्मचक्र, वृक्ष आदि सभी अभिप्राय इसमें विद्यमान हैं। यहाँ भी ऊपरले सिरदल का सम्मुख भाग पृष्ठ भाग बन गया है। वर्तमान अवस्था में इसके ऊपरी सिरदल पर कुम्भाण्ड और कमलबेल, बीच के सिरदल पर मानुषी बुद्ध और निचले सिरदल पर इन्द्र का नंदन-वन तथा नागराज प्रदर्शित हैं। इसके पश्चिमी स्तम्भ पर सामने वृषारोही, अश्वारोही, मकर से लड़ता हुआ योद्धा, कुम्भाण्ड, महापरिनिर्वाण, एवं स्वर्गों के दृश्य प्रदर्शित हैं। इसके भीतरी भाग पर सम्बोधि, स्वर्ग का दृश्य तथा द्वारपाल और उत्तरी अर्थात् पृष्ठभाग पर धर्मचक्र प्रवर्तन, सम्बोधि, हारीती और पांचिक दृष्टगत हैं। पृष्ठभाग में ऊपरी सिरदल पर मानुषी बुद्ध, बीच के सिरदल पर योद्धा और कमल-बेल, शार्दूल और निचले सिरदल पर कुम्भाण्ड और कमलबेल हैं। पूर्वी स्तम्भ पर वृषारोही, धर्मचक्र प्रवर्तन, गजारोही, महापरिनिर्वाण, मकर से लड़ता हुआ योद्धा, यक्ष-शीर्ष, धर्मचक्र प्रवर्तन तथा स्वर्गों के दृश्य और भीतरी भाग पर सम्बोधि, स्वर्ग का दृश्य, द्वारपाल और पूर्वी भाग पर सात पूरे और एकाध कमल के फुल्ले हैं।

स्तूप ४ : सातवाहन काल का यह स्तूप उत्तर-पूर्वी कोने में स्तूप ३ के पीछे स्थित है। आकार में यह छोटा है। इसकी हर्मिका का ५ फुट ९ इन्च लम्बा उष्णीष, जो दक्षिण दिशा में पास ही पड़ा मिला था, अब संग्रहालय में पर्दर्शित है।

स्तूप ५ : छठी शती में निर्मित यह स्तूप मन्दिर ३१ के पश्चिम में स्थित है। इसके गोल अधिष्ठान का व्यास २९ फुट है। इसके दक्षिणी भाग में छठी शती की बुद्ध-मूर्ति की चौकी मिली है। यह मूर्ति अब संग्रहालय में प्रदर्शित है।

स्तूप ६ : यह भी सातवाहन काल का है जो मन्दिर १८ के पूर्व आंगन के बीच में स्थित है। यह सातवीं-आठवीं शती में परिष्कृत किया गया था। इसका ऊपरी भाग उसके बाद

---

१. वही, पृ० ३६१, और ३७४।

जोड़ा गया। इसकी सीढ़ीनुमा बनावट बाद की है। यह ३९ फुट ६ इन्च लम्बा, इतना ही चौड़ा और ५ फुट ४ इन्च ऊंचा है। आंगन का प्राकार और स्तूप का निचला भाग समान पाषाण-खण्डों से बने थे। पुराने आंगन का तल बाद के आंगन के तल से कई फुट नीचे पाया गया था। आंगन के प्राकार के ऊपरी भाग की मरम्मत स्तूप की ही तरह हुई थी।

स्तूप ७ : यह भी स्तूप ५ के काल का है और दक्षिण-पश्चिमी किनारे पर बना है। इसकी ऊँचाई लगभग ६ फुट है। पहले इसका आकार २८ फुट ६ इन्च था। बाद में दीवार जुड़ जाने से ३८ वर्ग फुट हो गया। इस दीवार से लगा हुआ चंक्रम है, जिसके पश्चिमी छोर पर दो छोटे गोल स्तूप बने हैं।

स्तूप १२, १३, १४, १५ और १६, मन्दिर १८ के उत्तर-पूर्व दो श्रेणियों में स्थित हैं। ये गुप्तकाल अथवा पूर्वमध्यकाल में निर्मित हुए।

स्तूप १२ : इस स्तूप से मथुरा के लाल चित्तीदार पाषाण वाली कुषाणकालीन मूर्ति की चौकी मिली है। इसके अभिलेख[१] में विषकुल की पुत्री द्वारा बोधिसत्व मैत्रेय की मूर्ति के दान का उल्लेख है। सम्भवत: चौकी पर खड़ी हुई मूर्ति बोधिसत्व मैत्रेय की है। यह ८¾ इन्च चौड़ी है।

स्तूप २४ : इसके भीतर ध्यानमुद्रा में बैठी मथुरा पाषाण की बुद्ध-मूर्ति मिली थी। यह पूर्व गुप्तकाल की है और किसी गुप्तकालीन मंदिर से लायी गयी प्रतीत होती है। यह उल्लेखनीय है कि बौद्ध स्तूपों के भीतर मूर्तियां रखने की प्रथा न केवल सांची में थी, वल्कि इसके उदाहरण सारनाथ, सहेत-महेत आदि अन्य प्राचीन स्थलों में भी मिले हैं।

स्तूप २८ : पाषाण-निर्मित यह स्तूप मंदिर ३१ के पश्चिम में स्थित है और गुप्तकालीन है।

स्तूप २९ : यह स्तूप मन्दिर ३१ के पूर्व में है। यह भी गुप्तकालीन है और आकार में स्तूप २८ जैसा है। दोनों के ऊँचे, चौकोर, कटावदार, सीढीनुमा अधिष्ठान पूर्वगुप्तकालीन हैं। स्तूप २९ का अधिष्ठान ८ वर्ग-फुट है। इसके भीतर बड़े आकार वाली ईंटें भरी हैं जो किसी दूसरे स्मारक से लायी गयी होंगी। ईंटों के बीच भूमि से ३ फुट ऊपर स्थित अस्थि-स्थान में मिट्टी की अस्थि-मंजषा मिली थी। इसमें अस्थि-खण्ड और मिट्टी के कलश का मौर्य अथवा शुंगकालीन एक चमकदार टुकड़ा मिला था। लगता है कि ये अस्थियां किसी दूसरे स्थान से लाकर पूर्वगुप्तकाल में इस स्तूप में रखी गयीं थीं। इस स्तूप में मथुरा पाषाण की एक मूर्ति कुषाण राजा वस्कुषाण के रखे राज्यवर्ष में विद्यामति द्वारा भगवत् शाक्यमुनि की प्रतिष्ठा में

---

१. मार्शल-फूशे, वही, भाग १, पृ० ३८७, अभिलेख ८३० :—
"(१) बोधिसत्वस्य मैत्रेयस्य प्रतिमा प्रतिष्ठापिता..........
(२) स्य कुटुबिनिये विषकुलस्य धितु वषि..........
(३) सतान हित-सुखार्थभवतु।"

२. मार्शल-फूशे, भाग १, पृ० ३८६, (१) "राज्ञो वस्कुषाणस्य २०२ व २ दि १० भगवतो शक्यमुनेः प्रतिमा प्रष्ठिापिता विद्यमतिये पु..........।" (२) माता-पितृणांम् सर्व-सत्वनां च हित-सु",

स्थापित की गई थी[२] (सं० २७८५)।

(स) मन्दिर

मंदिर १८ के उत्तर-पूर्वी कोने में **मंदिर** १७ (चित्र १२) स्थित है। भारत के गुप्त कालीन मन्दिरों में इसकी गणना है। इसमें गर्भगृह के अतिरिक्त चार स्तम्भों और दो अर्द्ध स्तम्भों पर टिका अर्धमण्डप है। नागौरी-पाषाण के बने इस मन्दिर की माप बाहर से १२ फुट ५ इन्च × १२ फुट ९ इन्च है। यह १३ फुट ऊँचा है। इसका अधिष्ठान बिना नींव का है। मन्दिर की छत १० इन्च मोटे पत्थर के पटियों से बनी है। गर्भ गृह के ऊपर तीन और अर्द्ध-मण्डप के ऊपर दो अर्ध्याकार पटिये हैं, जिनकी नाली से बरसाती पानी बाहर निकलता है। स्तम्भ नीचे से क्रमशः चार, आठ और सोलह पहल वाले हैं। उन पर कमल-शीर्ष हैं और युग्म-सिंह ऊपर के शीर्ष के चारों कोनों पर बैठे हैं। ये सिंह पूर्ववर्ती तोरण-द्वारों के शीर्षों की शैली पर बनाये गये लगते हैं। युग्म सिंहों के बीच खजूर का पेड़ हैं। इस प्रकार के अभिप्राय एरण, तिगवा आदि से प्राप्त गुप्तकालीन मदिरों में भी दृष्टव्य हैं।

मन्दिर ९ : मन्दिर १८ के प्रवेश-द्वार के उत्तर-पश्चिम में यह गुप्तकालीन मंदिर है। अब इसका अधिष्ठान मात्र रह गया है इसके बड़े अर्द्ध स्तम्भ ६ फुट १० इन्च और छोटे अर्द्ध स्तम्भ ४ फुट ७ इंच ऊँचे हैं। इन स्तम्भों पर कलश-शीर्ष हैं।

मंदिर १८ (चित्र १३) : स्तूप १ के दक्षिण में स्थित यह मंदिर कार्ले, भाजा आदि के पर्वतीय-मन्दिरों से मिलता-जुलता है। इसका पिछला भाग अर्द्धवृत्ताकार है। बाहरी भाग में तीन ओर लगभग दो फुट उँची दीवार है। इसके स्तम्भ और अर्द्धस्तम्भ नागौरी पाषाण के बने हैं। प्रत्येक स्तम्भ १७ फुट ऊँचा और एकाश्म (एक पाषाण-खण्ड का) है। ऊपर की ओर ये स्तम्भ क्रमशः संकरे होते गए हैं। इनके नीचे पाषाण के पीठ हैं। इनकी नक्काशी लगभग ई० सातवीं शती की जान पड़ती है तथा एलौरा बाघ, और ऐहोल के स्तम्भों से मिलती है। मदिर की द्वार शाखा भी नागौरी पाषाण की है और १० फुट ८ इन्च लम्बी, २ फुट चौड़ी और १ फुट ४ इन्च मोटी है। दसवीं-ग्यारहवीं शती की यह शाखा सग्रहालय में सुरक्षित है। मदिर के अन्दर पहले स्तूप बना था जिसमें चिकने पाषाण का एक खण्डित अस्थि-पात्र मिला था। मदिर में रखे पाषाण के बड़े चौखटे में संम्भवतः स्तम्भ बैठाया गया था। मंदिर से सातवीं-आठवीं शती की मृणमुद्राएँ मिली हैं। इन पर भूस्पर्शमुद्रा में बैठी हुई बुद्ध-मूर्ति, छोटे-छोटे स्तूप और बौद्ध मत्र दृष्टिगत हैं। मन्दिर के नीचे पहले के मन्दिरों की फर्शें हैं। इनमें सबसे ऊपर चूना-कंकरीट की छठी शती वाली फ़र्श दोहरी है। बीच की फ़र्श ई० पू० पहली शती और सबसे नीचे की फ़र्श ई० पू० दूसरी तीसरी शती की लगती है। पूर्व, दक्षिण और पश्चिम की बाहरी दीवारें भी नीचे के फ़र्श के समय की होंगी। खपरैलें और लाल पाषाण का मौर्यकालीन पात्र (मार्शल-कैटेलाग, फलक १४, ए १०) इसी फ़र्श पर मिले थे। यह पात्र (बड़ा कटोरा) व्यास में १'—८'' है। इस पर प्राकृत भाषा में "भागायपसादो" उत्कीर्ण है, जिसका अर्थ है प्रसाद या भोजन रखने का पात्र। प्रत्येक खपरैल की माप ९ × ६ इन्च है। एक सिरा १ इंच तथा दूसरा ½ इन्च मोटा है। खपरैलें नीचे वाले स्मारक की छत की लगती हैं। दक्षिणी दीवार के नीचे मौर्यकालीन पाषाण की फ़र्श है। लगता है कि नीचे का स्मारक भी मन्दिर ही था और शुंगकाल में बना था।

मंदिर ३१ (मार्शल-फूशे, वही, भाग ३, फलक ए ११५) : स्तूप ५ के पीछे उत्तर-पूर्वी कोने में यह मन्दिर खड़ा है। इसकी चपटी छत स्तम्भों पर टिकी है। बुद्ध-मूर्ति के कमल-पीठ के नीचे की फ़र्श, पीठ, दो स्तम्भ तथा बाहर अधिष्ठान से लगी नागी मूर्ति गुप्तकालीन हैं। यह नागी-मूर्ति (चित्र १४) ७ फुट ६ इन्च ऊँची है। बुद्ध-मूर्ति, कमल-पीठ तथा मन्दिर १८ के दो स्तम्भ उत्तर गुप्तकाल के हैं। पुनर्निर्मित दीवारें, अन्य स्तम्भ तथा छत आदि मध्यकालीन हैं। अधिष्ठान के दूसरी ओर भी नाग या नागी-मूर्ति रही होगी। एक स्तम्भ पर परमोपासक दण्डनायक नागवुद्धि का चौदहवीं-पन्द्रहवीं शती का एक अभिलेख है। लगता है कि उसने इन सब सामग्रियों को एकत्र कर मन्दिर खड़ा किया था।

मंडप मन्दिर ४० (मार्शल-फूशे, वही, भाग ३, फलक ११०) : इसका अधिष्ठान ८६ फुट लम्बा और ४६ फुट चौड़ा है। इस तक पहुँचने के लिए पूर्व और पश्चिम की आर सोपान हैं। मण्डप का ऊपरी भाग लकड़ी का था जो बाद में जल गया। जली हुई लकड़ी मण्डप की फ़र्श पर मिली है। इसी फ़र्श पर ५ श्रेणियों में ५० या अधिक स्तम्भों वाला मण्डप बना था। इन स्तम्भों पर ई० पू० दूसरी शती के ब्राह्मी अक्षर उत्कीर्ण हैं। इससे ज्ञात होता है कि मण्डप के नीचे का अर्द्धवृत्ताकार अधिष्ठान मौर्यकाल में बना होगा। नीचे वाले स्मारक के मलवे को मोटी दीवार से घेर लिया गया था। खाली जगहों में पुराने स्मारक के बड़े-बड़े पत्थर भर दिये गये थे। इससे अधिष्ठान १३७ फुट लम्बा तथा ९१ फुट चौड़ा हो गया और नीचे वाली फ़र्श १ फुट ४ इन्च ऊँची हो गई। इस पर पाषाण के पटिये बिछा दिये गये। इन परिवर्तनों के कारण पुराने दोनों सोपान ढक गये और उनकी जगह उत्तरी चारदीवारी से लगकर दो नये सोपान बन गये। मलवे से अन्य कई स्तम्भों के निचले भाग मिले हैं। इनमें कुछ बड़े और कुछ छोटे हैं। छोटे स्तम्भों में से कई पर अभिलेख हैं। इनका प्रयोग मण्डप के बरामदे या पास में स्थित एक छोटे स्मारक के निर्माण के लिये हुआ होगा। सातवीं या आठवीं शती में मण्डप के अधिष्ठान के पूर्वी ओर अर्द्धमण्डप समेत एक मन्दिर बना। सम्भवतः छोटे स्तम्भ इसी मंदिर में काम आये। अर्द्धमण्डप भीतर से २४ फुट (उत्तर-दक्षिण) और ९ फुट (पूर्व-पश्चिम) है। नीचे के स्मारक और स्तम्भ-मण्डप के बीच पाषाण का एक शुंगकालीन हाथी मिला था।[१] अस्तु इन अवशेषों में तीन युगों के स्मारक हैं। (१) समचतुरस्र अधिष्ठान पर मौर्यकालीन अर्द्धवृत्त मन्दिर खड़ा था, जिसमें प्रदक्षिणा पथ था और पूर्व तथा पश्चिम में सोपान थे। इस अधिष्ठान के अवशेष पश्चिम में रह गये हैं। (२) शुंगकाल में यह अधिष्ठान बहुत बढ़ गया, मंदिर मण्डप में बदल गया और उत्तर में सोपान निर्मित हो गया। (३) सातवीं-आठवीं शती में मण्डप के पूर्वी भाग में मंदिर बना और ग्यारहवीं-बारहवीं शती तक परिवर्द्धित होता रहा।

मन्दिर ३२ : विहार ५० के आंगन के बीच यह उत्तर मध्यकालीन ८ फुट ऊँचा मंदिर स्थित है। इसमें तीन कक्ष हैं। सामने अर्द्धमण्डप है। बीच वाले कक्ष के नीचे एक कोठरी है। उसमें जाने के लिए अर्द्धमण्डप के पूर्वी भाग में प्रवेश-द्वार है। अगल-बगल के कक्षों में केवल

---

१. मार्शल-फूशे, वही, भाग १, पृ० ६८; वही, भाग ३, चित्र १०४ आई, जहाँ यह हाथी मौर्य कालीन बताया गया है।

खिड़कियां हैं। इसका आकार उत्तर-दक्षिण ३८ फुट ६ इन्च पूर्व-पश्चिम १८ फुट १० इन्च है। इसकी छत के पाषाण के पटिये सिरदलों पर टिके हैं। ये सिरदल दीवारों पर बैठे टोड़ा के अलंकरण वाले शीर्षों पर टिके हैं। बीच के कक्ष में इसी प्रकार के छह शीर्ष हैं। कोनों में चार और दो तथा अगल-बगल की दीवारों पर आस-पास के कक्षों के कोनों के चार शीर्ष अर्द्धस्तम्भों पर हैं। इन पर चौकोर शीर्ष चढ़े हैं।

(क) भवन

भवन ८ : इसका अधिष्ठान १२ फुट ऊंचा है। भवन के पूर्वी भाग में सम्भवत: पहले सोपान था। इसके निर्माण में भी लकड़ी का प्रयोग हुआ होगा। सम्भवत: यह शुंगकालीन है। मध्ययुग में दीवारों द्वारा इसे पूर्व की ओर से घेर दिया गया था।

भवन ४२ : यह मण्डप ४० के उत्तर में है। इसकी दीवारों की ऊँचाई ६ फुट है। यह भी मध्यकालीन मंदिर रहा होगा।

भवन ४४ : विहार-मन्दिर ४५ के दक्षिण में ४ फुट ऊँचे पाषाण के अधिष्ठान पर यह भवन स्थित है। इसकी शैली भी मध्यकालीन है। इसमें अर्द्धमण्डप तथा इसके पीछे फर्श वाला बड़ा कक्ष है, जिसके बीच में पहले स्तूप रहा होगा। कक्ष के दोनों ओर कोठरियों की श्रेणियाँ थीं। इन कोठरियों में मूर्तियाँ रही होंगी। भवन के पश्चिमी भाग में सोपान हैं। बड़े कक्ष में ध्यानमुद्रा वाली बुद्ध की दो मूर्तियाँ और प्रलम्बासन में बैठी मैत्रेय की मूर्ति है। स्मारक का समय ई० ग्यारहवीं-बारहवीं शती का है।

भवन ४९: इस उत्तर मध्यकालीन भवन का अब अधिष्ठान ही शेष रह गया है।

भवन या विहार ४३ : इस उत्तर मध्यकालीन भवन का आकार पेशावर में बने हुए कनिष्क के स्तूप जैसा है। चारों कोनों पर गोल बुर्जियाँ हैं। आंगन प्राकार से घिरा हुआ है। सम्भवत: इसके भीतर बाद की बनी हुई कुछ दीवारे हैं। आंगन के प्राकार तथा बुर्जियों की दीवारें ४ फुट ६ इन्च से कुछ कम मोटी होंगी। दक्षिण की ओर बाहर से दीवार ८ से १० फुट ऊँची रही होगी। इस दीवार के नीचे ४-५ फुट तक नींव जाती है। उत्तर में जमीन ऊंची होने के कारण दीवारों की ऊंचाई ३ फुट से अधिक नहीं है। स्मारक के बीच में कुछ कोठरियाँ शेष हैं। इनके उत्तरी भाग में आंगन है। ये कोठरियाँ और आंगन सातवीं-आठवीं शती के लगते हैं, जैसा की यहां से प्राप्त अभिलेख ८४२[1] से ज्ञात होता है। विहार की फ़र्श वर्तमान आंगन से १२ फुट नीचे है। विहार की दीवारें ६-७ फुट ऊंची हैं। दक्षिण-पश्चिमी और उत्तर-पश्चिमी बुर्जियाँ खोली गयी थीं। पहली बुर्ज़ी के नीचे स्तूप १ के चारों ओर फैली पाषाण की शुंगकालीन फ़र्श मिली थी। दूसरी बुर्ज़ी के नीचे लगभग १४ फुट की गहराई पर पाषाण के पटिये पर औंधा मिट्टी का बड़ा घड़ा मिला था।

(ख) विहार

विहार ३६ (मार्शल-फूशे, वही, भाग ३, फलक १२२ बी) : इसके आँगन में चौकोर अधिष्ठान है। इस पर तीन इन्च मोटी ईंट और चूने की फ़र्श है। अधिष्ठान की दीवारों पर

---

१. मार्शल-फूशे, वही, भाग १, पृ० ३९४।

पहले बरामदे के स्तम्भ खड़े थे। उत्तर-पश्चिमी कोने पर ऊपर जाने के लिये सोपान था, जिसकी अब एक सीढ़ी शेष है। आंगन के दक्षिण-पश्चिमी कोने में बरसाती पानी के लिए पाषाणों से ढ़की नाली थी। विहार का प्रवेश-द्वार पूर्व में था। इसके सामने एक आंगन था, जिसकी दीवारें अभी तक विद्यमान है। यह विहार लगभग ई० छठीं-सातवीं का है।

विहार ३७ : यह भी लगभग सातवीं शती ई० का है। किंतु विहार ३६ से बाद का है। इसकी दीवारों की नींव बाहर निकली है। प्रवेश-द्वार पर चौकोर पाषाण की पटिया है। आंगन के अधिष्ठान के कोनों पर पाषाण की चार चौकोर चौकियाँ हैं, जिन पर बरामदे के स्तम्भ टिके हैं। दक्षिण और पश्चिम के कक्षों के पीछे वाले कक्ष किस काम के लिये बने थे, कहा नहीं जा सकता।

विहार ३८ इसके स्थान पर पहले एक और स्मारक स्थित था। बड़े आंगन में चौकोर छोटा आंगन है। चारों ओर उठा हुआ बरामदा है। दक्षिण-पश्चिम कोने में सोपान है। विहार लगभग सातवीं शती ई० का है।

विहार मन्दिर ४५ : (चित्र १५ तथा मैसी-साँची, चित्र ३८ का रेखाचित्र ३) : कई शती पहले यहाँ प्राचीन मन्दिर था। इसमें खुला आंगन, तीन छोटे मन्दिर और भिक्षुओं के कक्ष थे। बाद में आँगन के पूर्व में नया मन्दिर, सामने अधिष्ठान और दक्षिण में उससे लगे हुए भिक्षुओं के कक्ष और बरामदे बने। उत्तर-दक्षिण और पश्चिम के कक्ष, आंगन में बने स्तूपों के अधिष्ठान तथा पाषाण के पटियों की नीची प्राकार पहले मंदिर की है। प्राचीन विहार के कक्षों की नींव ६ फुट गहरी और कक्षों के सामने का बरामदा ८ फुट चौड़ा है। पटियों की दीवार आंगन से बरामदे को अलग करती है। इसी दीवार पर बरामदे के स्तम्भों की चौकियाँ हैं। ये स्तम्भ लगभग ६ फुट ६ इन्च ऊंचे थे। नीचे का आंगन ऊपर के आंगन से २ फुट ६ इन्च नीचे है। लगता है कि पहले मन्दिर के जल जाने के बाद स्मारक बहुत दिन तक उपेक्षित पड़ा रहा। इसके आंगन की फ़र्श पर जली हुई लकड़ी मिली थी। ऊपर वाले मन्दिर में चौकोर गर्भगृह, अर्द्धमण्डप और खोखला शिखर है। इसकी ऊपरी भाग गिर गया है। ऊँचे अधिष्ठान के पहले भाग में मंदिर खड़ा है। अधिष्ठान के पश्चिम में सीढ़ी है। मंदिर के तीन ओर प्रदक्षिणापथ और ऊँची दीवार है। इसका निर्माण दूसरे स्मारकों की सामग्री से हुआ है। गर्भगृह में लगे कोने के चार अर्द्धस्तम्भ प्राचीन हैं। गर्भगृह पूर्व-पश्चिम ११ फुट ८ इन्च चौड़ा है। मंदिर के अन्दर रखी भूस्पर्श मुद्रा में बैठी बुद्ध-मूर्ति स्यात् यहां के लिए नहीं बनायी गयी थी। इसका सिंहासन किसी प्राचीन मूर्ति का लगता है। कमल के निचले भाग में नवीं-दसवीं शती का बौद्ध मंत्र[१] खुदा है। नागोरी पाषाण की बुद्ध-मूर्ति चौकी समेत १० फुट १/२ इन्च ऊँची है। इस पर लाल ओप है। १८४९-५० में जनरल मैसी ने इस विशाल मूर्ति को सिंहों वाले आसन पर, जो इससे बहुत प्राचीन है, रखा पाया था। दक्षिणी द्वार शाखा पर कमल, पक्षी, कीर्तिमुख, कलश लिये हुये मूर्तियाँ, शार्दूल, पांचिक, मणिभद्र आदि बने हैं। साथ ही एक

१. बौद्ध-मंत्र इस प्रकार है :—

ये धर्मा हेतुप्रभवा हेतुस्तेषां तथागतो ह्यवदत् ।
तेषांच यो निरोधो एवं वादी महाश्रमणः ।।

वृक्षिका और कूर्मवाहिनी यमुना भी प्रदर्शित हैं। परचारिका छत्र लिए उसके पीछे खड़ी है। कुछ ऊपर भूस्पर्शमुद्रा में बुद्ध-मूर्ति है। व्यालक, हाथी, आकाशचारी विद्याधर, यक्ष तथा मिथुन अभिप्राय अंकित हैं। उत्तरी द्वारशाखा पर मकरवाहिनी गंगा है।[१] मन्दिर की दीवार के बाहर दक्षिणी आले में मंजुश्री हैं।[२] पूर्वी आले में ध्यान-मुद्रा में बैठी बुद्ध-मूर्ति है। उत्तर वाला आला खाली है। दीवारों पर शिल्पियों के नाम लगभग दसवीं शती की लिपि में लिखे हैं। मंदिर के शिखर पर कमल और आमलक थे, जो उत्तर की ओर कुछ दूरी पर पड़े मिले। इसका बाहरी भाग भी आमलकों से सुशोभित था। गर्भगृह की छत के ऊपर का भाग खोखला है, अस्तु शिखर हल्का हो गया है। निकले हुए पटियों के कारण इसकी शोभा बढ़ गई है। प्रदक्षिणापथ की ३ फुट मोटी पूर्वी दीवार में दो जालीदार अलंकृत झरोखे हैं। मन्दिर के सामने अधिष्ठान पर स्तूप ३ के बहुत से टुकड़े लोहे की पत्तियों से जुड़ें हैं। अधिष्ठान की दीवारों पर आले हैं। इनमें कहीं-कहीं मिथुन हैं। उत्तर-दक्षिण में तीन-तीन कक्ष और बरामदा है। इनकी द्वार-शाखाएँ मंदिर की द्वारशाखा से कुछ मिलती और कुछ भिन्न हैं। ये शायद पूरी नहीं की जा सकीं। दक्षिणी बरामदे में भूस्पर्शमुद्रा में बैठी बुद्ध-मूर्ति है। यह कहीं बाहर से यहाँ लायी गयी। यह मूर्ति मन्दिर में प्रतिष्ठापित बुद्ध-मूर्ति से बाद की जान पड़ती है। स्पष्ट है कि नीचे के अवशेष (मन्दिर का अधिष्ठान, आंगन के उत्तर-दक्षिण एवं पश्चिम के कक्ष, आंगन के तीन स्तूपों के अधिष्ठान, तथा पाषाण की नींव, बाद के गर्भगृह में लगे अर्द्धस्तम्भ, और अर्द्ध मण्डप में लगे दो और अर्द्धस्तम्भ) सातवीं तथा ऊपर के अवशेष (वर्तमान गर्भगृह तथा बुद्ध-मूर्ति, सामने का ऊपरी अधिष्ठान, उत्तर-दक्षिण के बरामदे तथा कक्ष) नवीं और ग्यारहवीं शती के बीच निर्मित हुए।

विहार ४६ : इसका छोटा आंगन कुछ ऊँचाई पर है। इसके तीन ओर कक्ष हैं। कई स्तम्भ और छत अभी तक सुरक्षित हैं। लगता है कि दक्षिणी भाग के कक्ष और बरामदा तथा आंगन की भीतरी दीवारों में से कुछ दीवारें बाद में जोड़ी गयीं। बरामदा और कमरों के स्तम्भ तथा अर्द्धस्तम्भ पाषाण की चौकोर चौकियों पर खड़े हैं। उन पर हिन्दू शैली वाले शीर्षक हैं। चपटी छत में ४ से ८ इन्च तक मोटे पाषाण के पटिये लगे हैं। पटियों पर पहले मिट्टी या चूने की मोटी तह रही होगी। स्तम्भों के शीर्ष अलंकृत हैं। उत्तरी दालान की द्वार-शाखाओं पर कमलों का अलंकरण है। इसके आंगन में भी ४ से ८ इन्च मोटे पटियों की फ़र्श है। विहार का निर्माण उत्तर-गुप्तकाल से लेकर कई शताब्दियों तक जारी रहा।

विहार ४७ (मार्शल-फूशे, वही, भाग ३, फलक ११७ बी) : यह, विहार-मंदिर ४५ के उत्तर-पश्चिम में स्थित है। इसके आंगन के तीन ओर बरामदा और कमरे हैं। आंगन उत्तर-दक्षिण १०३ फुट तथा पश्चिम-पूर्व ७८ फुट है। इसके उत्तरी भाग में स्तम्भों वाला बरामदा है। बरामदे के पीछे छोटी कोठरी और लंबा-सँकरा कक्ष है। पश्चिम में एक बंद कक्ष है।

---

१. शिवराममूर्ति, एम० ए० एस० आई० (७३) पृ० ५—"मूर्ते च गङ्गायमुने तदानीं सचामरे देवमसेविषाताम्।" (कुमारसम्भव, ७.४२)।

२. मार्शल-फूशे, वही, भाग १ पृ० ७४ और मार्शल, साँची पृ० ३१८ के अनुसार यह मूर्ति संभवतः "मयूर विद्याराज" की है।

उत्तर में स्तम्भों वाला बरामदा है, जहाँ एक मंदिर में अर्द्धमण्डप और गर्भगृह हैं। इसके पीछे एक दालान और ५ कोठरियाँ हैं। मंदिर के गर्भगृह में किसी मूर्ति की ४ फुट ९ इन्च लंबी, २ फुट २ इन्च चौड़ी और २ इन्च ऊँची चौकी है। आंगन का प्रमुख द्वार पश्चिमी बरामदे के उत्तरी सिरे पर है। इसका दूसरा द्वार उत्तरी बरामदे के पूर्वी सिरे पर है, जो विहार ४६ के आंगन में खुलता है। इसके आंगन में ४ से ८ इन्च मोटे पटियों की फ़र्श है। इसकी फ़र्श के नीचे गुप्तशैली का एक स्तम्भ मिला था। इस फ़र्श के ३ फुट नीचे पाषाण की एक और पुरानी फ़र्श मिली। ९ इन्च और नीचे जाने पर एक कच्ची फ़र्श मिली। इसके २ फुट ३ इन्च और नीचे जाने पर कंकरीट की फ़र्श मिली, जो गुप्तकाल की है। ऊपर का विहार ग्यारहवीं शती ई० का है। अस्तु आंगन की फ़र्श के नीचे पहले वाले अवशेष गुप्तकालीन हैं। आंगन की फ़र्श के नीचे वाले अवशेष मध्यकालीन हैं। ऊपर वाले सभी स्मारक उत्तर मध्यकालीन हैं।

विहार ५० : अब इसकी फ़र्श, दीवारें, और स्तम्भों की चौकियाँ शेष हैं। यह ग्यारहवीं शती में बना होगा।

विहार ५१ (चित्र १६) : स्तूप १ के पश्चिम नीचे जाकर पाषाण का बना यह विहार मिलता है, जो साँची के विहारों में सबसे बड़ा है। इसकी दीवारें क्रमशः १०९′—४½″ और १०७′—३″ हैं। (**ऐनुवल रिपोर्ट**, १९३६-३७, पृ० ८५)। इसके आंगन, बरामदों तथा दीवारों पर १६″×१०″×३″ की मौर्यकालीन ईंटें लगी हैं। यह विशेषता अन्य किसी विहार में नहीं मिलती। खुले हुए आंगन के दक्षिण-पश्चिमी कोने में बरसाती पानी निकलने के लिये नाली हैं। आंगन के चारों ओर बरामदे हैं। बरामदों की छत संभालने वाले स्तम्भ आंगन के प्राकार की पाषाण की चौकियों पर खड़े थे। बरामदों के पीछे कक्ष हैं। आंगन बरामदे के नीचे है। अतः इस तक पहुँचने के लिये कई जगहों पर सोपान हैं। प्रवेश-द्वार के उप कक्ष और उसके सामने वाले पश्चिमी कक्ष को छोड़कर कुल २२ कक्ष विहार में हैं। खोदाई में जला हुआ कोयला बहुत मिला था। सम्भवतः बरामदों और कक्षों की छतें और बरामदे के स्तम्भ लकड़ी के थे। प्रवेश द्वार के दोनों ओर के कक्षों में जाने-आने का कोई साधन नहीं है। जान पड़ता है कि विहार का पश्चिमी प्रवेश-द्वार बाद में जोड़ा गया। इस द्वार के पश्चिम में पाषाण का एक दीर्घकाय कटोरा (चित्र १७) रखा है। इसका बाहरी व्यास ८ फुट ८ इन्च और भीतरी व्यास ४½ फुट तथा गहराई २½ फुट है। इसकी दीवारों की मोटाई ६ इन्च तथा पेंदे की १८ इन्च हैं। भिक्षुओं के लिए भोजन या जल रखने के लिए इसका प्रयोग होता था। विहार का संबन्ध अशोक की विदिशा वाली रानी शाक्यकुमारी देवी से जोड़ा गया है। क्योंकि (१) यहाँ की ईंटों का आकार-प्रकार अशोक के स्तूप की ईटों से मिलता-जुलता है। (२) यहाँ पाषाण की मुद्रा मिली है जिस पर ई०पू० दूसरी शती की लिपि में "बैसाली" लिखा है। (**ऐनुवल रिपोर्ट**, १९३६-३७, पृ० ८६-८७)। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जिस नदी के किनारे सतधारा के स्तूप-समूह स्थित हैं, उसका नाम भी वैशाली है। विहार के विकसित रूप को देखकर यह कहना कठिन है कि यह विहार मौर्यकालीन हो सकता है। सम्भव है कि मौर्यकालीन विहार इसी स्थल पर रहा हो और बाद में उसमें परिवर्तन किये गये हों। आकार-प्रकार को देखकर कहा जा सकता है कि विहार का प्रयोग गुप्तकाल से उत्तर मध्यकाल तक होता रहा। फर्गुसन का कहना है कि रानी का विहार लकड़ी का बना रहा होगा, जो बाद में नष्ट हो

गया।[1] यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि कई बार स्मारकों की मरम्मत के लिए पुरानी ईंटों के आकार की नई ईंटें बनवा ली जाती हैं। ऐसी ही नई ईंटों का प्रयोग अनेक स्मारकों में हुआ है। इस विहार से पश्चिमी क्षत्रप राजाओं के चाँदी-ताँबे के सिक्के और एक स्वर्ण-पदक मिला है, जिस पर यूनानी नरेश एण्टीमेकस की आकृति से मिलता-जुलता चेहरा है। (**ऐनुवल-रिपोर्ट** १६३६-३७, पृ० ८५-८७)।

ऊपर के वर्णन में १६, २०, २१, २२, २३, २४, २७, ३०, ३४, ३९, ४१, ४२ और ४८ संख्याओं वाले साधारण स्मारकों का वर्णन नहीं किया गया है।

बुद्ध के जीवन-दृश्य

मायादेवी का स्वप्न[2] : पूर्वी तोरण-द्वार के उत्तरी स्तम्भ पर भीतर यह दृश्य (चित्र १८) अंकित है। कपिलवस्तु में मायादेवी दाईं करवट में निद्रामग्न हैं। पर्यंक के ऊपर आकाशचारी श्वेत हाथी के रूप में अपने पैर समेटे बोधिसत्व उनकी कोख में प्रवेश करते समय उन्हें स्वप्न देते हैं। बगल के कक्ष में तीन परिचारक बैठे परस्पर बातें कर रहे हैं।

जन्म[3] : दक्षिणी तोरण-द्वार के सम्मुख भाग की ऊपरी सिरदल (चित्र ६) के मध्य में अपना बायाँ हाथ कटि पर टिकाये और दाये हाथ में फूल लिये मायादेवी कमल पर खड़ी हैं। उनके दायें-बायें हाथी अपनी सूड़ों से उन्हें अभिषिक्त कर रहे हैं। सिरदल पर कमल की पत्तियों, नाभियों तथा नालों का पूरा विकास दृष्टिगत है। हंसों के जोड़े उन पर इधर-उधर बैठे हैं। द्वार के बिचले और निचले सिरदलों के बीच पूर्वी स्तम्भ पर माया विशाल कमल पर पालथी मारे बैठी हैं। यहाँ के हाथियों के स्थान पर बड़े-बड़े कमल सुशोभित हैं। उत्तरी तोरण-द्वार के सम्मुख भाग के ऊपरी और मध्यवर्ती सिरदलों के बीच में पूर्वी स्तम्भ पर खड़ी माया का बायाँ हाथ सीधा जंघा तक पहुंचता है। यहाँ उन्हें हाथी घड़ों से स्नान करा रहे हैं। बिचले और निचले सिरदलों के बीच पूर्वी स्तम्भ पर घड़ों से जल की मोटी धारा माया पर पड़ रही है। उनका बायाँ पैर ऊपर और दायाँ पैर नीचे कमल पर टिके हैं। पूर्वी तोरण-द्वार के उत्तरी स्तम्भ पर भी माया इसी ढंग से बैठी हैं। इसी द्वार के दक्षिणी स्तम्भ पर कलशों की मोटी जलधारा माया के सिर के पिछे से पीठ तक जा पहुंची है। पश्चिमी तोरण-द्वार के उत्तरी स्तम्भ पर यह दृश्य सुन्दर बन पड़ा है।

ऐसा प्रतीत होता है कि दूसरी शती ई०पू० से माया को देवीस्वरूपा माना जाने लगा था। माया को प्रदर्शित करने वाले दृश्यों में कभी-कभी माया के ऊपर छत्र अंकित किया गया

---

१. फर्गुसन, वही, पृ० ६।

२. वैद्य, **ललितविस्तर**, पृ० ५०—"स्वप्नान्तरगता च बोधिसत्व माता मायादेवी महानागकुञ्जरमवक्रान्तं संजानीते स्म।" वही, पृ० ४६—"अभ्यन्तरगतश्च बोधिसत्वो मायादेव्या कुक्षौ दक्षिणे पार्श्वे पर्यङ्कमाभुज्य निषण्णोऽभूत।"

३. सांस्कृत्यायन, **मज्झिमनिकाय**, (३) पृ० ४८८,२३/२/७०—"यदा, आनंद, बोधिसत्तो मातुकुच्छिम्हा निक्खमेति द्वे उदकस्सं धारा अन्तलिक्खा पातुभवन्ति—एकासीतस्स, एका उण्हस; येन बोधिसत्तस्स उदककिच्चं करोन्ति मातु चा' ति।" बोधिसत्व के स्नान का दृश्य फलक में नहीं है। संभवतः कमल उनकी उपस्थिति का परिचायक है। माता को स्नान कराने वाले हाथियों का उल्लेख इस उद्धरण में नहीं है।

है (देखिए मार्शल-फूशे, भाग ३, फलक ८७, ७१ अ, भाग २, फलक २५, २ डाई; भाग २, फलक ३०, ३ डाई; भाग २, फलक ५४, निचली डाई)। इनमें से अनेक दृश्यों में माया के हाथ में कमल भी है। अस्तु कमल और छत्र की उपस्थिति से दो बातें स्पष्ट होती हैं। एक तो यह कि छत्र बोधिसत्व की उपस्थिति का और माया के देवीत्व का प्रतीक है; दूसरे कमल पकड़े हुए माया के ठीक ऊपर जल छत्र रखा मिलता है तो उनका देवीरूप प्रगट होता है। अश्वघोष ने अपने बुद्धपति तथा सौंदरनन्द ग्रन्थों में माया को शची, पद्मा एवं पृथ्वी तथा स्वर्ग की देवी माया के समकक्ष माना है।

(**बुद्धचरित**, खण्ड १, पृ० १ नोट २ :
—"तस्येन्द्रकल्पस्य बभूव पत्नी·································।
पद्मेव लक्ष्मीः पृथिवीव धीरा मायेति नाम्नानुपमेव माया।"
सौन्दरनन्द काव्य, पृ० २५, २।४९ :
—"तस्य देवी नृदेवस्य माया नाम तदाभवत्।
वीतक्रोधतमोमाया मायेव दिवि देवता।")

महाभिनिष्क्रमण[१] : दक्षिणी तोरण-द्वार के पृष्ठभाग के ऊपरी सिरदल के पश्चिमी सिरे पर यह दृश्य आलेखित है। यहाँ कपिलवस्तु के प्रवेश-द्वार में दो सिरदलों वाला तोरण है। कण्ठक बिना सवारी का है। इसके आगे कमण्डलु लिए सारथी छंदक खड़ा है। ऊपर हाथ जोड़े देवतागण हैं। छत्र और चामर आकाश में विद्यमान हैं। उत्तरी तोरण द्वार के पश्चिमी स्तम्भ पर ऊपर से दूसरे फलक (चित्र २०) में कपिलवस्तु के द्वार से छत्र-वाहक खाली रथ लिए जा रहा है। इसी रथ पर बैठकर बोधिसत्व ने चार बार कपिलवस्तु के बाहर उद्यान देखने के लिए भ्रमण किया था। इन्हीं चार "निमित्तों" में उन्हें रोगी, वृद्ध, मृतक और परिव्राजक दिखायी दिये थे। तभी उन्हें जीवन, मोह, और राग से अनिच्छा हो गयी और उन्होंने राजपाट, पत्नी-पुत्र, माँ-बाप, बन्धु-बांधव सभी को त्याग दिया। रथ के आगे बिना सवारवाला कण्ठक जा रहा है। हमें यहाँ स्मरण रखना चाहिए कि बोधिसत्व या बुद्ध का मनुष्यरूप इन तोरण-द्वारों में कहीं नहीं मिलता। उनकी उपस्थिति प्रतीकों द्वारा बतायी गयी हैं। अस्तु खाली रथ और अकेले घोड़े कण्ठक से यही अर्थ लेना है कि बोधिसत्व उन पर सवार हैं। कण्ठक पीछे कमण्डलु लिये छन्दक अनुसरण कर रहा है। प्रासाद की परिचारिकायें एवं परिचारक भी उपस्थित हैं। एक परिचारक बोधिसत्व की पादुकायें लिए हुए है। पूर्वी तोरण-द्वार के सम्मुख भाग में बीच के सिरदल (चित्र २१) पर यह दृश्य विस्तार से अंकित है। यहां दाहिनी ओर से कपिलवस्तु के प्रमुख तोरण-द्वार से कण्ठक छन्दक के साथ बाहर निकलता है। छत्र और चामर लिये परिचारक साथ चल रहे हैं। कण्ठक के खुरों को देवगण हथेलियों पर साधे हुए

---

१. वैद्य, "ललितविस्तार, पृ० १३५, "बोधिसत्वः सारथिं प्राह"—"शीघ्रं सारथे रथं योजय। उद्यान भूमिं गमिष्यमीति।" वही, पृ० १३६—"मार्गे पुरुषो जीर्णो, वृद्धो, महल्लको·········मार्गस्योपदर्शितोऽभूत।" वही, पृ० १३७—"मार्गेपुरुषं व्याधिस्पृष्टं·········प्रश्वसन्तम्।" वही, पृ० १३७—"पुरुषं मृतं कालगतं·········पृष्ठतो अनुगच्छदभिः।" वही, पृ० १३८—"भिक्षुशांतं दांतं संयतं·········संघाटीपात्रचीवर धारणेन मार्गे स्थितं।" वही, पृ० १५६—"बोधिसत्व सर्वं नगरजनं प्रसुप्तं विदित्वा अर्द्धरात्रि समयं छन्दकमामन्त्रयते स्म, "छन्दक मां मेदानीं खेदय। प्रयच्छ में कण्ठकं समलंकृत्य, मा च बिलम्बिष्ठाः।"

हैं। यह शैली मध्यकालीन शिल्प में और विकसित देख पड़ती है। कुछ देवता पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं। कष्ठक, छत्र, और चामर बाईं ओर बढ़ते चले जा रहे हैं। अंत में जहाँ बुद्ध के पाद अंकित हैं वहाँ जाकर छत्र और चामर रुक जाते हैं। तब कष्ठक बिना छत्र और चामर के नीचे की पंक्ति में वापस कपिलवस्तु की ओर लौटता है। इसका अर्थ यह हुआ कि बोधिसत्व अनोमा नदी के किनारे घोड़े पर से उतर गये। ऊपर की पंक्ति में कष्टक चार बार सामने आता है, नीचे की पंक्ति में वह केवल एक ही बार आता है। दृश्य के बीच में बोधिवृक्ष खड़ा है।

स्वस्तिक द्वारा तृणदान : यह दृश्य दक्षिणी तोरण-द्वार के पूर्वी स्तम्भ पर प्रदर्शित है। यह स्तम्भ संग्रहालय में है। बोधगया पहुँचकर बोधिसत्व पीपल वृक्ष के नीचे आसन ग्रहण करने गये तो वहां उन्हें स्वस्तिक नाम का घसियारा (यावसिक) मिला। उसने बैठने योग्य कुंचित-नरम-सुगंधित हरी घास काटकर उन्हें दान किया।[१] दृश्य[२] में आसन के बाईं ओर स्वस्तिक झुककर हंसिये से घास काटता है, फिर आसन के दाईं ओर दोनों हाथों में घास का पूरा लेकर खड़ा हो जाता है। दोनों हाथों में पायस का पात्र लिये सुजाता स्वस्तिक के पीछे खड़ी है।

सम्बोधि[३] : दक्षिणी तोरण-द्वार के सम्मुख भाग में ऊपरी और बिचले सिरदल के बीच पूर्वी स्तम्भ पर यह दृश्य उत्कीर्ण है। सुजाता बांए हाथ में खीर तथा दांएं में जल भरा कमण्डलु लिए बोधिगृह के दाईं ओर खड़ी है। उसके पीछे हाथ जोड़े उपासक हैं। बाईं ओर परिचारिका दोनों हाथों से एक थाल बोधिवृक्ष की ओर बढ़ा रही है। इसके बगल में हाथ जोड़े एक पुरुष खड़ा है। ऊपर सपक्ष विद्याधर पुष्पमालाएँ लिए आकाश से वृक्ष की ओर बढ़ रहे हैं। वृक्ष के ऊपर छत्र है। सबोधित-वृक्ष दक्षिणी तोरण-द्वार के पूर्वी स्तम्भ के सिरे पर भी प्रदर्शित है। उत्तरी तोरण-द्वार के पृष्ठभाग में बिचले सिरदल के दृश्य में भी सजाता खीर और जल लिए हुए है (चित्र २४)। पूर्वी तोरण-द्वार के दक्षिणी स्तम्भ पर, ऊपर से दूसरे फलक में, संबोधि का विस्तृत दृश्य है। यहाँ बोधिवृक्ष की शाखाएँ बोधिमण्ड की खिड़कियों से निकलकर ऊपर छा रही हैं (चित्र २२)। दोनों ओर आम और पाटलि के वृक्ष खड़े हैं। वज्रासन पर रखा त्रिरत्न, बुद्ध, धर्म और संघ का द्योतक है। बोधिमण्ड अशोक ने सबसे पहले बनवाया था। आकाशचारी विद्याधर फूलमालाएँ और तश्तरियाँ लिए छत्र के आस-पास आ गये हैं। बोधिमण्ड के दोनों ओर हाथ जोड़े उपासक खड़े हैं। पश्चिमी तोरण-द्वार के पृष्ठभाग में नीचे की सिरदल पर भी

---

१. वैद्य, ललितविस्तर, पृ० २०७—"बोधिसत्वो मार्गस्य दक्षिणे पार्श्वे स्वस्तिकं यावसिकम् तृणानि लूनाति स्म नीलानि मृदुकानि सुकुमाराणि रमणीयानि कुण्डल जातानि प्रदक्षिणा वर्तानि।"

२. मार्शल-फूशे, वही, भाग २, फलक १९ डी—थ्री।

३. वैद्य, ललितविस्तर, पृ० २९४—"सुजाता ग्रामिक दुहिता बोधिसत्वस्य दुष्कस्चर्यां चातः..........। एवं च प्रणिदधाति ... मम भोजनं भुक्त्वा बोधिसत्त्वोऽनुत्तरां सम्यक्संबोधि मभिसंबुध्येतेति।" भगवत् निदानकथा, पृ० ९१, ९४ तथा ११८-२२—"बोधिसत्वो तिणं गहेत्वा बोधिमण्ड आरुय्ह दक्खिणदिसाभागे उत्तराभिमुखो अट्ठासि।..........मारथोसनं..........। अथ मारो देव पुत्तो गिरिमेकल नाम हत्थिं अभिरुहित्वा ....। सक्को देवराजा अट्ठासि। महाब्रह्मा सेतछत्तं..........अगमासि। महावस्सं ..... पाषाणवस्सं ...... पहरणवस्ल अङ्गारवस्सं। वेसन्तरभात्ते..........धनमहापठवी सक्खीति मारपरिसं दिसा विदिसा पलायि। वही पृ० ९१—११५—"पठमेयामे पुब्बेनिवासञाणं मज्झिमयामे दिब्बचक्खुं विसोधेत्वा पच्छिमयामे पटिच्चस मुप्पादे ञाणं ओतारेलि।"

संबोधि का विस्तृत दृश्य है (चित्र २३)। बीच में बोधिमण्ड बना है। बोधिवृक्ष के ऊपर छत्र है। बोधिमण्ड के नीचे वज्रासन है। बोधिमण्ड के बाईं ओर मार की सेना पराजित होकर भाग रही है। धनुष, बाण, ढ़ाल, वज्र, त्रिशूल, अंकुश आदि लिये हुए मार के गण हाथी, घोड़ा या रथ पर बैठकर या पैदल भागे जा रहे हैं। बोधिमण्डल के दाहिनी ओर देवतागण खड़े हैं। इनके हाथों में पुष्पमालाएँ, वस्त्र, त्रिरत्न, पताकाएँ, ढोल, डफले, डमरू आदि विजय-चिन्ह हैं। ये बुद्ध को उनकी सफलता के लिए साधुवाद देने आये हैं। वास्तव में इस दृश्य में सत्य-असत्य का द्वन्द्व प्रदर्शित है। धनुष लिये रथ पर सवार व्यक्ति मार (कामदेव) हो सकता है। आगे खड़े हुए देवों में सबसे पीछे वाला देवता सम्भवतः इन्द्र है। मार की भागती हुई सेना सिरदल के छोर तक जा पहुँची है। पश्चिमी तोरण-द्वार के दक्षिणी स्तम्भ के भीतरी भाग पर ऊपर सम्बोधि का दृश्य है। नीचे नीरांजना नदी के किनारे बोधिसत्व की छह वर्ष की तपस्या का दृश्य है। यहाँ पर केले, आम, पाटलि तथा कमलों की उपस्थिति नीरांजना की द्योतक है। बुद्ध का प्रदर्शन चौकी तथा सिंहासनों द्वारा हुआ है। तीन खड़े हुए व्यक्ति अभ्यर्थना कर रहे हैं। हाथ जोड़े व्यक्ति के पीछे तोरण-द्वार है। बोधिवृक्ष के बाईं ओर मार-सेना है। मार के साथ उसकी पत्नियाँ या पुत्रियाँ भी वृक्ष के आस-पास विद्यमान हैं। उत्तरी तोरण-द्वार के पृष्ठभाग में बीच के सिरदल पर भी यही दृश्य है (चित्र २४)। इसमें तोरण-द्वार से निकलकर सुजाता खीर और जल लेकर वृक्ष की ओर बढ़ रही है। ऊपर आकाशचारी सपक्ष विद्याधर हैं। बाईं ओर सिरदल के बीच में छत के नीचे बैठा हुआ पुरुष मार हो सकता है। पास ही उसकी पत्नियाँ, पुत्रियाँ तथा पुत्र बैठे हैं। बड़े-बड़े चेहरे वाले अट्टहास करते या गरजते हुए उसके गण दूर तक फैले हैं। किनारे का एक गण गिटार लिये संगीत का आनन्द ले रहा है। कई गण नाचते हुए गण के चारों ओर बैठे गायन-वादन में मग्न हैं और आक्रमण की तैयारी कर रहे हैं। मार अपने परिवार सहित बोधिमण्ड की ओर बढ़ रहा है। राक्षसों का सेनापति नाचते-गाते साथियों के दाईं ओर अपने पुत्र समेत बैठा है। उसके दाईं ओर भागते हुए राक्षस हैं। सभी राक्षस योद्धाओं की भाँति छन्नवीर पहने हैं।

बुद्ध[1] और मुचलिन्द

सम्बोधि- प्राप्ति के बाद मुचलिंद नाग ने एक सप्ताह तक ध्यानमग्न अवस्था में बुद्ध को आंधी-पानी से बचाया था। दक्षिणी तोरण-द्वार के पूर्वी स्तम्भ के सम्मुख भाग पर पाँच फणों वाले नागराज अपनी कुण्डली पर चौकी के सामने बैठे हुए हैं। उनके उठे हुए दाएं हाथ में कमल है और बायां हाथ जंघा पर रखा है। उनके साथ मोढ़ों पर बैठी चार नागियाँ हैं। दो नागी परिचारिकाएँ चामर डुला रही हैं। नागियों के एक-एक फण है। यह स्तम्भ अब संग्रहालय में है। पश्चिमी तोरण-द्वार के उत्तरी स्तम्भ के भीतरी भाग में ऊपर से दूसरे दृश्य (चित्र २५) में भी नागराज विद्यमान हैं। इनकी दो रानियाँ दाईं ओर मोढ़ों पर बैठी हैं। उनके पीछे तश्तरी, घड़ा और चामर लिए तीन परिचारक खड़े हैं। बाईं ओर एक नर्तकी और वाद्य बजाने वाली

---

१. कश्यप, महावग्ग, पृ० ५, १/३/५—"अथ खो भगवा..........मुचलिन्दमूले.........। अथ खो मुचलिन्दो नागराजा सकभवना निक्खमित्वा भगवतो कायं सत्तक्खत्तुं भोगेहि परिक्खिपित्वा उपरिमुद्धनि महन्तं फणं करित्वा अट्ठासि।"

पाँच महिलाएँ हैं। दो के हाथ में तंबूरा, एक के हाथ में गिटार और दूसरी के हाथ में बाँसुरी है। वृक्ष के दोनों ओर गगनचारी विद्याधर और सवारियों पर बैठी देवियाँ हैं।

बुद्ध का प्रथम भोजन[1]

दक्षिणी तोरण-द्वार के पूर्वी स्तम्भ के सम्मुख भाग पर ऊपर से तीसरा दृश्य (मार्शल-फूशे, वही, भाग २, फलक २९ सी-थ्री) सम्बोधि-प्राप्ति के बाद उरूवेला में बुद्ध के प्रथम भोजन का है। छतदार बैलगाड़ी में बैठे त्रपुस्स और भल्लिक उरुवेला होकर जा रहे हैं। बैलों की पूँछ को अन्य अलंकरणों के साथ बांध दिया गया है, जिससे वे गाड़ी के पहियों में उलझें नहीं। गाड़ी के आगे कमण्डलु लिये एक पुरुष तथा बगल में दो अश्वारोही चल रहे हैं। ऐसी सम्पूर्ण गाड़ी तोरण-द्वारों पर अन्यत्र नहीं बनायी गयी। गाड़ी के पीछे-पीछे चलता हुआ एक कुत्ता जमीन पर कुछ खा रहा है। बाद में गाड़ी से उतर कर दोनों वणिक् खाद्य-सामग्री लेकर बुद्ध के पास गये। उरुवेला ग्राम पूर्वी तोरण-द्वार के दक्षिणी-स्तम्भ के भीतरी भाग पर ऊपर अंकित है। (चित्र २६) जटिल भिक्षुओं को धर्म-दीक्षा देने के लिए बुद्ध वहीं गये थे।

बुद्ध का भिक्षा-पात्र[2]

दक्षिणी तोरण-द्वार के पूर्वी स्तम्भ के सम्मुख भाग पर मुचलिन्द-दृश्य के नीचे चार लोकपाल बुद्ध को भिक्षा-पात्र प्रदान कर रहे हैं। इनमें से दो लोकपाल वृक्ष के दाईं ओर और एक लोकपाल बाईं ओर खड़े हैं। चौथा लोकपाल अब दृश्य में उपलब्ध नहीं है। उनके प्रतिनिधि भी साथ में हैं। इनमें से एक प्रतिनिधि गिटार बजा रहा है। बुद्ध ने चारों पात्रों को लेकर उन्हें एक ही में मिला लिया और इस पात्र को सदैव अपने पास रखा।

धर्मचक्र प्रवर्तन[3]

दक्षिणी तोरण-द्वार के पश्चिमी स्तम्भ के सिरे पर सम्मुख निचले सिरदल के नीचे यह दृश्य है। स्तम्भ के ऊपर एक बड़ा धर्मचक्र है। धर्मचक की धार पर त्रिरत्नों का अलंकरण है। चक्र के ऊपर छत्र है। अकाशचारी सपक्ष विद्याधर पुष्पमालाएँ लिये हैं। उपासक-उपासिका हाथ जोड़े या सामग्री लिये स्तम्भ के दोनों ओर खड़े हैं। उनके सामने स्तम्भ के दोनों ओर कई

---

१. कश्यप, **महावग्ग**, पृ० ५, १/४/६—"अथ खो तपुस्सभल्लिका वाणिजा मन्थं च मधुपिण्डिकं च आदाय येन भगवा तेनुपसंङ्कमिसु,.........भगवन्तं एतदवोचुं—"पटिगण्हातु नो, भन्ते भगवा मन्थं च मधुपिण्डिकं च, यं अम्हाकं अस्स दीघरत्तं हिताय सुखायाति।"

२. कश्यप, **महावग्ग**, पृ० ६, १/४/६—"अथ खो चत्तारो महाराजानो भगवतो चेतसा चेतो परिवितक्कमञ्ञाय चतुद्दिसा चत्तारो सेलमये पत्ते.........नन्थं च मधुपिण्डिकं चाति। पटिग्गहेसि भगवा पच्चग्घे सेलमये पत्ते मन्थं च मधुपिण्डिकं च पटिग्गहेत्वा च परिभुञ्जि।"

३. वही, पृ० ११, १/६/११—अहं हि अरहा लोके अहं सत्था अनुत्तरो। एकोम्हि सम्मासम्बुद्धो सीतिभूतोऽस्मि निब्बुतो/धम्मचक्कं पवत्तेतुं गच्छामि कासिनंपुरं। अंधभूस्मि लोकस्मि आहञ्छु अमतदुंदुभिन्ति।" वही, पृ० १५/७/१७—"एवं भगवता वाराणासियं इसिपतने मिगदाये अनुत्तरं धम्मचक्कं।" काश्यप, दीघनिकाय (१) पृ० १४८, ८/६/२३—"सीहनादं खो समणो गोतमो नदति।" सांकृत्यायन, **मज्झिमनिकाय**, (२), पृ० १९५—९६, २४/२/५—"सुखा वेदना, दुक्खा वेदना, अदुक्खमसुखा वेदनां।" काश्यप, **चुल्लवग्ग**, पृ० २९२, ७/६/११—"दुक्खं, समुदयं, निरोधम्, मग्गम।"

हिरण हैं। इसी से उस स्थान को 'मृगदाव' कहते हैं। इसी तोरण-द्वार के पश्चिमी स्तम्भ पर ये दृश्य अंकित हैं। नीचे वाले दृश्य में स्तम्भ पर सिंह-शीर्षक चक्र समेत रखा है। पश्चिमी तोरण-द्वार के पृष्ठभाग में बिचले और निचले सिरदलों के बीच दक्षिणी स्तम्भ में चौकी पर धर्मचक्र रखा है। पूर्वी तोरण-द्वार के दक्षिणी स्तम्भ पर भी धर्मचक्र का दृश्य है। यहाँ धर्मचक्र चौकी पर रखा है। पश्चिमी तोरण-द्वार के सम्मुख भाग में बीच के सिरदल पर यही दृश्य विस्तार से है। चौकी के दाएँ-बाएँ हिरण उपस्थित हैं। धर्मचक्र प्रवर्तन के प्रतीक चक्र और हिरण का आरम्भ इसी तोरण से होता है। बाद के सभी युगों में यह प्रतीक प्रथम उपदेश का प्रदर्शन करता रहा है। अन्तर केवल इतना ही रहा कि गुप्तकाल में तथा उसके बाद हिरणों को समूचा शरीर चक्र के दोनों ओर दिखाया जाने लगा। सामने दोनों ओर बहुत से हिरण विद्यमान हैं। उनके पीछे दोनों ओर हाथ जोड़े उपासकगण खड़े हैं। चक्र के ऊपर छत्र है और अगल-बगल से विद्याधर चक्र पर मालाएँ चढ़ा रहे हैं। पृष्ठभूमि में पाटलि आदि वृक्ष हैं। सम्भवतः ये उपासक वाराणसी के श्रेष्ठी पुत्र यश और उसके साथी हैं। इनमें पंचभद्रवर्गीय भिक्षुओं का प्रदर्शन भी है। ये भिक्षु पहली शती ई० और बाद की मूर्तियों में क्रमशः दिखाये गये हैं। प्रो० फूशे ने इन उपासकों को देवता, जिन या स्वामी कहा है।[१]

कपिलवस्तु में आगमन[२] पूर्वी तोरण-द्वार के उत्तरी स्तम्भ के भीतरी भाग पर ऊपर से तीसरे दृश्य में बोधि सत्वलुम्बिनीवन में जन्म लेने के बाद कपिलवस्तु लाए जाते हैं। दृश्य में हाथियों, घोड़ों और अश्वरथों का समारोह घरों और स्वागत-द्वारों से होता हुआ आगे बढ़ता है। कपिलवस्तु के नीचे के दूसरे दृश्य में न्यग्रोधाराम में बुद्ध का चंक्रम है और वहीं वे चमत्कार-प्रदर्शन करते एवं शाक्यों को उपदेश देते हैं। पश्चिमी तोरण-द्वार के दक्षिणी स्तम्भ के भीतरी भाग पर ऊपरी दृश्य के नीचे वाले दृश्य में न्यग्रोधाराम का अंकन है। तोरण-द्वार के सम्मुख क्षेत्र में चौकी के पास तीन शाक्य खड़े हैं। उनमें से एक हाथ जोड़े है (चित्र २७)।

श्रावस्ती-चमत्कार[३] (चित्र २८) : उत्तरी तोरण-द्वार के पूर्वी स्तम्भ के सम्मुख भाग पर यह दृश्य है। ऊपर से नीचे इसका वर्णन इस प्रकार है। आम का वृक्ष फलों से लदा खड़ा है। इसके ऊपर छत्र है। राजा प्रसेनजित् और उनके प्रचारक बैठे हैं। ऊपर चार लोकपाल हाथ जोड़े विद्यमान हैं। उसके ऊपर आकाशचारी देवतागण हैं। सबसे ऊपर दो बड़े-बड़े ढोल डन्डों से बजाये जा रहे हैं। और प्रदर्शन की घोषणा कर रहे हैं। नीचे के फलक में जेतवन-विहार के दान का दृश्य

---

१. मार्शल-फूशे, वही, भाग २ (चित्र ५५, २), बीच का सिरदल।

२. काश्यप, **महावग्ग**, पृ० ८६, १/४६/१०५ "अथ रवो भगवा राजगहे यथाभिरन्तं विहरित्वायेन कपिलवत्थु तेन चारिकं पक्कामि।.....। तत्र सुदं भगवा सक्केसु विहरति कपिलवत्थुस्मिं निग्रोधारामे।"

३. वैद्य, **दिव्यावदानम्** (१२ प्रातिहार्यसूत्रम्) पृ० ९३—"कतमस्मिन् भदन्त प्रदेशे/प्रातिहार्यमण्डपं/कारयामि ? अन्तरा च महाराज श्रावस्तीमंतरा च जेतवनम्"; वही, पृ० ९७—"कर्णिकार वृक्षमादाय भगवतः प्रातिहार्यमण्डपस्यग्रतः स्थापितः ; वही, पृ० ९९—"चंक्रम्यते तिष्ठति निषीदति शय्यां कल्पयति।......अधः-कायं प्रज्वालयति, उपरिमात् कायाच्छीतला वारिधाराः स्यन्दन्ते ; वही, पृ १०१—"तीर्थ्या ह्यशनिवर्षेण बाध्यमाना दिशो दिग्भ्यो विचलंति।"

है। विहार के सामने भूमि पर स्वर्ण मुद्राएँ बिछी हैं।[१] श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक हाथ जोड़े विहार के सामने खड़े हैं। बाईं ओर राजकुमार जेत भी खड़े हैं। दृश्य में तीन विहार प्रदर्शित हैं। गंधकुटी, कोशम्बकुटी और करोरिकुटी।[२] भरहुत के एक दृश्य में गंधकुटी और कोशम्बकुटी को ही दिखाया गया है।[३] तीनों विहारों के सामने रखा सिंहासन इस बात का परिचायक है कि बुद्ध क्रमशः इन तीनों विहारों में बहुत दिनों तक रहे थे।[४] नीचे तीसरे फलक में बुद्ध के चंक्रम का दृश्य है। एक बड़े मण्डप के नीचे चंक्रम बना हुआ है। नीचे हाथ जोड़े खड़े उपासकों में राजा प्रसेनजित् और उनके राजकर्मचारी हैं। इसके नीचे वाले दृश्य में राजा प्रसेनजित श्रावस्ती से निकलकर बुद्ध के चमत्कार-प्रदर्शन वाले स्थान पर जा रहे हैं। यह स्थान श्रावस्ती और जेतवनाराम के बीच में है। ऊपर छज्जों पर बैठे नर-नारी गण समारोह का दृश्य देख रहे हैं। सबसे नीचे के फलक में जेतवन का उस समय का दृश्य है जब वहाँ राजकुमार जेत अपने मित्रों और पत्नियों समेत विहार कर रहे थे। दृश्य में जलक्रीड़ा करते हाथी और बहते हुये झरने प्रदर्शित हैं।

सांकाश्य चमत्कार[५] (चित्र ३०) : उत्तरी तोरण-द्वार के पश्चिमी स्तम्भ के सम्मुख भाग में ऊपर यह दृश्य प्रस्तुत है। इसे देवावतार भी कहते हैं। भरहुत में तीन सोपान दिखाने का प्रयत्न किया गया है।[६] यह कहना कठिन है कि इस दृश्य के त्रायस्त्रिशलोक में माया कौन हैं।

---

१. कनिंघम, **स्तूप आॅफ भरहुत**, पृ० ८४ पर जेतवनाराम के दृश्य पर उत्कीर्ण लेख—"जेतवन अनाधपेड़िको देति कोटिसंथतेन केटा" से स्पष्ट है कि जेतवन की भूमि पर करोड़ों कार्षापण बिछाये गये थे। यही उसका मूल्य था।

२. मार्शल-फूशे, वही, भाग २, चित्र ३४ (ख २)।

३. कनिंघम, स्तूप आॅफ भरहुत, पृ० ८५ और ८७ के अनुसार भरहुत के जेतवन-दृश्य पर दो विहारों के नाम गंधकुटी और कोशम्बकुटी उत्कीर्ण हैं।

४. काश्यप, **चुल्लवग्ग**, पृ० ५५, १/७/६५—"बुद्धो भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिंडिकस्स आरामे।" वही, पृ० ६७, २/१/१ ; वही, पृ० ८६, ३/१/१ आदि।

५. **वैद्य, अवदानशतकम्**, पृ० २१६, ६/८६—"अवतीर्णो भगवांस्ततः सप्तमे दिवसे देवेभ्यस्त्रायस्त्रिंशेभ्यः सांकाश्ये नगरे आपज्जुरे दावे उदुम्बरमूले। यदा भगवान्सांकाश्यं नगरमवतीर्णः, तक्ष अनेकानि प्राणिशत-सहस्राणि भगवतो दर्शनाय संनिपतितानि ; वैद्य, दिव्यावदान, पृ० २५८, २७/६१—"यदापि महाराज भगवता देवेषु त्रायस्त्रिंशेषु वर्षा उषित्वा मातुर्जनयित्र्या धर्मं देशयित्वा देवगणपरिवृतः सांकाश्ये नगरेऽवतीर्णः अहं तत्कालं तत्रैवासम्। मया सा देवमनुष्य संपदा दृष्टा, उत्पलवर्णया च निर्मिता चक्रवर्ती संपदा इति।" फाहियान के "ए रिकार्ड आफ दि बुद्धिस्ट कन्ट्रीज", पृ० ३७–४१ में लिखा है कि बुद्ध बीच की सीढ़ी से उतरे। सफेन वस्त्र लिए ब्रह्मा दाईं सीढ़ी से उतरे। छत्र लिए शक्र बाईं सीढ़ी से उतरे। भिक्षुणी उत्पलवर्णा चक्रवर्ती राजा बन गयी तथा उसने बुद्ध की वन्दना सबसे पहले की। ऐसा ही वाटर्स **"आॅन युवानच्वांग्स ट्रेवेल्स इन इण्डिया"**, भाग २, पृ० ३३४ में भी लिखा है। यह ज्ञात नहीं है कि ब्रह्मा और इन्द्र का समावेश इस दृश्य में कब हुआ। **दिव्यावदान**, के "देवगणपरिवृतः" में ये दोनों देवता सम्मिलित हो सकते हैं। इन्द्र और ब्रह्मा बुद्ध के पास कई बार आये-गये थे। इसका उल्लेख साहित्य में बहुत मिलता है। संभव है सांकाश्य में बुद्ध के साथ ब्रह्मा और इन्द्र की उपस्थिति का मूलाधार पालि साहित्य ही हो।

६. कनिंघम, **स्तूप आॅफ भरहुत**, चित्र १८, बीच का दृश्य।

बुद्ध तेंतीस देवताओं को उपदेश दे रहे हैं। संभवतः छत्र को इन्द्र पकड़े हुए हैं। ब्रह्मा को पहचानना कठिन है। लेकिन दाएँ हाथ से वस्त्र उठाए और बाएँ हाथ में कमल लिये ब्रह्मा ही हो सकते हैं। देवतागण ढोल बजा रहे हैं। नीचे कुछ उपासक अपने परिवारों समेत बुद्ध के दर्शनार्थ आये हुए हैं।

वैशाली चमत्कार[1] (चित्र ३१) : उत्तरी तोरण-द्वार के पश्चिमी स्तम्भ के भीतरी भाग पर ऊपर से दूसरे दृश्य में यह चमत्कार प्रदर्शित हैं। एक लंगूर बन्दर पैरों पर चलता हुआ दोनों हाथों में मधुपात्र लिए बुद्ध की ओर बढ़ रहा है। पात्र अर्पित करने के बाद प्रसन्नता के मारे वह हाथ ऊपर उठाकर नाच रहा है। दो महिलाएं सिंहासन पर फलफूल चढ़ा रही हैं। उनके बीच में एक बालक भी बुद्ध की ओर मुँह किये बैठा है। मध्यकालीन शिल्प में लंगूर कुएँ में गिरता दिखाया गया हैं।[2] किन्तु घटना का यह भाग प्रस्तुत दृश्य में नहीं है।

उरुवेला-चमत्कार[3] : पूर्वी तोरण-द्वार के दक्षिणी स्तम्भ के भीतरी भाग में उरुवेला-ग्राम वाले जटिल ब्राह्मणों के धर्म-परिवर्तन के अनेक दृश्य हैं (चित्र २६)। ऊपर के दृश्य में उरुवेला (आज का उरेलगाँव) प्रदर्शित है। कुछ महिलाएँ सिल-लोढ़े से मसाला पीस रही हैं। एक महिला ओखली में मूसल से धान कूट रही है। दूसरी महिला सूप से अन्न पछोर रही है। एक अन्य महिला कटि पर जल भरा घड़ा रखे खड़ी है। दूसरी घड़े में जल भर रही है। नीरांजना

---

१. वैद्य, **अवदानशतकम्**, पृ० ४, १/२ ; वैद्य, **दिव्यावदानम्**, पृ० ८५ और १२५—"एकस्मिन् समये भगवान् वैशाल्या विहरति मर्कटह्रदतीरे कूटागारशालायाम्।" वाटर्स के **"ऑन युवान च्वांग्स् ट्रैवेल्स"**, भाग २, पृ० ६५ के अनुसार वानरों के एक तालाब के पश्चिम में एक स्तूप उस स्थान पर था, जहाँ वानर बुद्ध का भिक्षा पात्र लेकर एक वृक्ष पर चढ़ गये और शहद एकत्र किया। तालाब के दक्षिण में एक स्तूप उस स्थान पर था जहाँ वानरों ने बुद्ध को शहद अर्पित किया। तालाब के उत्तरी-पूर्वी कोने में वानर की एक मूर्ति स्थापित थी।

२. बनर्जी, **ईस्टर्न इण्डियन स्कूल आफ मेडीवल स्कल्प्चर्स**, चित्र २७ ब, इण्डियन म्यूजियम सं० बी० जी० ५३।

३. काश्यप, **दीघनिकाय** (२), पृ० ८८, ३/१५/४५—"एकमिदाहं आनन्द समयं उरुवेलायं विहरामि नज्जा नेरंजराय तीरे अजपालिनिग्रोधे परमाभिसंवुद्धो"; काश्यप, **महावग्ग**, पृ० २५—३४;१|१४/३७—५३— (१) तेन रवो एन समयेन उरुवेलायं तयो जटिला पटिवसन्ति—उरुवेलकस्सपो, नदीकस्सपो, गयाकस्सपो। ......। अथ खो भगवा अग्यागारं पविसित्वा तिणसंथरकं पञ्ञापेत्वा निसीदि पल्लंङ्क आभुजित्वा उजुकायं पणिधाय परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा। अद्दसा रवो सो नागो भगवन्तं पविट्ठं दिस्वान दुखी दुम्मनो पधूपासि। ......। अथ रवो भगवा तस्सा रत्तिया अच्चयेन तस्य नागस्य अनुपहच्च छविं च चम्मं च मंसं च न्हारुम् च अट्ठिं च अट्ठिमिज्जं च तेजसा तेज...... जटिलस्स दस्सेसि ...... अयं ते कस्सप, नागो परियादिन्नो अस्स तेजसा तेजोति।......। महिद्धिको रवो महासमणो महानुभावो यत्र हि नाम चण्डरसनागराजस्स रद्धिमतो ...... अहंगति।...... चतुद्दिसा अट्ठंसु महन्ता अग्गिक्खन्धा।" (२) तेन रवो पन समयेन ते जटिला अग्गिं परिचरितुकामा न सक्कोन्ति कट्ठानि फालेतुं।...... अथ रवो भगवा ...... एतदवोच—फालियन्तु, कस्सप कट्ठानी' ति। ......।" (३) जटिलां ...... न सक्कोन्ति अग्गिं उज्जलेम तं। भगवा ...... एतदवोच-उज्जलियन्तु कस्सप अग्गी' ति। (४) सकिदेव पंच अग्गिसतानि विज्झायिसु (५) महासुकाल मेघो पावस्सि यस्मिं पदेसे भगवा विहरति, सो पदेसो उदकेन ओत्थतो होति। भगवा ...... रेणुहताय भूमिया चंकमि ...... उरुवेलकस्सपो जटिलो ...... महासमणो उदकेन वूल्हो अहोसीति। नावाय सद्धिं यस्मिं पदेसे भगवा विहरति तं पदेसं अगमासि। ...... अथ रवो ते जटिला केसमिस्सं ...... साव तेसं आयस्मन्तानं उपसम्पदा अहोसि।"

नदी में गाएँ, बैल, भैंस आदि कमलों के बीच विचर रहे हैं। एक पुरुष कंधे पर बाँस की बहंगी रखे है। दृश्य के बीच में छत्र के नीचे रखा हुआ सिंहासन बुद्ध की उपस्थिति का परिचायक है। नीचे के दृश्य में मंदिर है (चित्र ३२)। गुम्बद के गवाक्ष-वातायनों से मंदिर के भीतर बैठे नाग के जहर का गहरा धुंआँ निकल रहा है। नाग को पराजित करने के लिए बुद्ध ने अग्निस्तंभ का रूप धारण कर लिया है। यह अग्निस्तंभ सिंहासन के सामने उपस्थित है। एक व्यक्ति अग्नि को शांत करने के लिए नीरांजना नदी से घड़े में जल ला रहा है। मंदिर के दृश्य के नीचे पर्णकुटी में बैठा ब्राह्मण अग्नि में आहुतियाँ डाल रहा है। अग्नि के चारों ओर पशु एकत्र हैं। लगता है कि ये पशु बलि के लिए लाए लाए गये हैं। बुद्ध के चमत्कारिक प्रभाव के कारण ब्राह्मणों की कुल्हाड़ी से लकड़ी नहीं चिरती। उनके पंखों से अग्नि प्रज्वलित नहीं होती और चम्मचों से हवन की सामग्री हवन-कुण्डों में नहीं गिरती। किंतु बाद में बुद्ध की कृपा से यह कार्य संभव हो जाता है तथा जटिल ब्राह्मण श्रद्धालु हो उठते हैं। सबसे नीचे के दृश्य (चित्र ३३) में भूवेदिका से घिरा हुआ अलंकृत स्तूप है। यज्ञ सम्पन्न करने के लिए तथा अग्नि जलाए रखने के लिए लकड़ी चीरी जा रही है। आयुध अग्नि में तपाए और तेज किये जा रहे हैं। अग्नि पंखे से दहकाई जा रही है। इसी स्तम्भ के सम्मुख भाग में ऊपर के दृश्य में नीरांजना की बाढ़ प्रदर्शित है (चित्र २२)। उत्ताल तरंगें ऊँचे-ऊँचे पेड़ों को निगले जा रही हैं। बाढ़ से बचने के लिए दो बंदर आम के पेड़ पर चढ़ गए हैं। कमलों से भरी नदी में घड़ियाल और हंस किलोल कर रहे हैं। नाव में बैठे तीन जटिल ब्राह्मण बीच धारा में जा पहुंचे हैं। क्रमशः बुद्ध भी बिना नाव की सहायता लिए नदी के बीच में पहुंचकर चमत्कार-प्रदर्शन कर रहे हैं। नाव में बैठे ब्राह्मण बुद्ध को बाढ़ से बचाने के लिए नाव लाए थे किन्तु बुद्ध को नदी की धार पर चलते देखकर वे आश्चर्य चकित हो गये। ब्राह्मणों ने अंत में पराजय स्वीकार कर ली। चंक्रम बुद्ध की उपस्थिति का द्योतक है। आकाश से पुष्पवृष्टि हो रही है। चंक्रम के नीचे हाथ जोड़े खड़े ब्राह्मण बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे हैं। नीचे बाईं ओर कोने में सहस्र जटिलों का धर्म-परिवर्तन करने के बाद बुद्ध उन्हें उपदेश दे रहे हैं।

न्यग्रोधाराम[१] (चित्र १८ तथा २७) : पूर्वी तोरण-द्वार के उत्तरी स्तम्भ के भीतरी भाग पर कपिलवस्तु से राजा शुद्धोदन समारोह बनाकर आगे बढ़ रहे हैं। सम्यक्सम्बुद्ध होने के बाद बुद्ध कपिलवस्तु आकर न्यग्रोधाराम में ठहरे हैं। वहाँ उनका चक्रम बना है। वे नागरिकों को उपदेश दे रहे हैं। नागरिकों में राजा शुद्धोदन तथा अन्य गण्यमान्य शाक्य नागरिक सम्मिलित हैं।

इन्द्रशैलगुहा[२] (चित्र ३४) : उत्तरी तोरण-द्वार के पूर्वी स्तम्भ पर ऊपरी दृश्य के पर्वतों की गुफ़ा में बुद्ध का सिंहासन रखा है। एक बार इन्द्र अपने गन्धर्व-सखा पंचशिख के साथ बुद्ध के

---

१. काश्यप, **महावग्ग**, पृ ८६, १/४६/१०५—"अथ रवो भगवा राजगहे यथाभिरन्तं विहरित्वा येन कपिलवत्थु तेन चारिकं पक्कामि। ········ तत्र सुदं भगवा सक्केसु विहरति कपिलवत्थुस्मिं निग्रोधारामे", सांकृत्यायन, मज्झिमनिकाय (२), पृ० २०, ३/१/१,

२. काश्यप, **दीघनिकाय** (२), पृ० १९८, ८/१/४— "········ सक्को पंचसिखं ········ आमन्तेसि—" तथागता मादिसेन झानरता तदन्तरं पटिसल्लीना, पञ्चसिखो ········ वेलुवपण्डुवीणं अस्सावेसि इमा च गाथा अभासि। इन्द्र के पूछे हुए प्रश्नों का उल्लेख काश्यप, दीघनिकाय (२), पृ० २०६—१६ पर है।

पास गये और उनसे दार्शनिक समस्याओं पर बयालीस प्रश्न किये, जिनका बुद्ध ने समाधान किया। प्रस्तुत व्यक्तियों में इन्द्र और पंचशिख को पहचानना कठिन है। प्रो० फूशे के अनुसार जिस व्यक्ति की पगड़ी सबसे बड़ी है वही इन्द्र है।[१] लगता है कि ऊपर की पंक्ति में सबसे बाईं ओर खड़ा व्यक्ति पंचशिख है; क्योंकि उसका बायां हाथ कंधे से लटकती वेलुवपण्डु वीणा पर टिका है।

बुद्ध के पास बिंबसार अजातशत्रु का आगमन : (मार्शल-फूशे, वही, भाग २, फलक ३५, बी —टू) उत्तरी तोरण-द्वार के पूर्वी स्तम्भ के भीतरी भाग पर ऊपर से दूसरे फलक में राजा बिम्बिसार या अजातशत्रु राजगृह में अपने प्रासाद से निकलकर बुद्ध के पास जा रहे हैं। पूर्वी तोरण-द्वार के दक्षिणी स्तम्भ के सम्मुख भाग वाले बीच के दृश्य मे भी बिम्बिसार या अजातशत्रु राजगृह- स्थित अपने प्रासाद से निकलकर गृद्ध्रकूट में बुद्ध से मिलने जा रहे हैं। ऊपर दाहिने कोने में रखा हुआ सिंहासन बुद्ध की उपस्थिति का परिचायक है। अपने कर्मचारियों को पीछे छोड़ राजा अपने मंत्री समेत बुद्ध के सामने जा पहुंचे हैं। गृद्ध्रकूट को राजगृह से दूर बताने के लिए बीच में एक दीवार उठा दी गई है।[२] (चित्र ४०)।

शाक्यसिंह[३] (चित्र ४) : पूर्वी तोरण-द्वार के पृष्ठ भाग की मध्यवर्ती सिरदल पर बुद्ध का सिंहासन, बोधिवृक्ष और छत्र प्रस्तुत हैं। सिंहासन के दोनों ओर दो-दो सिंह हैं। साथ ही हिरण, शार्दूल, महिष, नाग, गरुड आदि पशु-पक्षी भी बुद्ध के चतुर्दिक् विद्यमान हैं। लगता है कि बुद्ध सिंहनाद[४] कर रहे हैं। एक अभिप्राय यह भी हो सकता है कि बुद्ध के अहिंसा-धर्म के अनुसार इन सभी पशु-पक्षियों को अभयदान प्राप्त हुआ है। बुद्ध के और पहले से देश में यज्ञों के लिए पशुबलि बहुप्रचलित थी। उन्होंने इस कुप्रथा का डटकर खण्डन किया था।[५]

केशपूजा[६] (चित्र ८) : दक्षिणी तोरण-द्वार के पश्चिमी स्तम्भ के सम्मुख भाग पर निचले

---

१. मार्शल-फूशे, वही, भाग २, चित्र ३५ (बी.१)।

२. काश्यप, **दीघनिकाय (१)**, पृ० ३१—७५, २/१/१ से २/६/१०४ (सामञ्ञफलसुत्तम्)। इसमें बुद्ध ने 'बुद्धवाद' पर अजातशत्रु को पूरी जानकारी दी थी।

३. गौतम बुद्ध शाक्यजाति के थे। धर्म के क्षेत्र में उन्होंने सिंह के समान जो अजेय घोषणा की थी, उसी के कारण उन्हें शाक्यसिंह की संज्ञा दी गयी; वैद्य **अवदानशतकम्** (प्रथम परिशिष्ट), पृ० २६५—"यदुक्तं शाक्यसिंहेन तन्मे गपिन्तुमर्हसि।"

४. काश्यप, **दीघनिकाय** (१), पृ० १४८, ८/६/२३—"सीहनादं च समणो गोतमो नदति।"

५. वही, पृ० १०८, ५/१/१—"तेत रवो पन समयेन कूटदंतस्स ब्राह्मणस्स महायञ्ञो उपक्खटो होति। सत्त च उसभसतानि, सत्त च वच्छतरसतानि, सत्त च वच्छतरीसतानि, सत्त च अजसतानि, सत्त च उरब्भसतानि, थूणपनीतानि होन्ति यञ्ञत्थाय।" वही, पृ० ११० — "समणो गोतमो तिविध यञ्ञसम्पदं सोग्लसपरिक्खारं जानति।" वही, पृ १२६—"एसाहं, भो गोतम, सत्त च उसभसतानि .... मुञ्चामि, जीवितं पेमि ...."; वैद्य, **ललितविस्तर** पृ० १५६ (श्लोक ५९) में "अभयदायकानाथ" बुद्ध के लिए प्रयुक्त हुआ है। जीवमात्र को अभयदेनेवाले, जीवन दिलाने वाले बुद्ध के लिए ऐसे शब्दों का प्रयोग कितना सार्थक था।

६. वैद्य, **ललितविस्तर**; पृ० १६४—"स खड्गेन चूडां छित्वा अंतरिक्षे छिपति स्स सा च त्रायस्त्रिंशता देवैः परिगृहीताभूत पूजार्थम्। अद्यापि च त्रायस्त्रिंशत्सु देवेषु चूड़ा महो वर्तते। तत्रापि चैत्यं स्थापितमभूत। अद्यापि च तच्चूडाप्रतिग्रहणमिति ज्ञायते।"

दृश्य में हाथियों पर सवार इन्द्र और इन्द्राणी बोधिसत्व के केशों का समारोह बनाकर लिए जा रहे हैं। कहा जाता है कि अनोमा नदी के किनारे पहुंचकर बोधिसत्व ने अपने केश कतर डाले थे और आभूषणत था राजकीय वस्त्र उतारकर परिव्राजक का काषाय धारण कर लिया था। ये केश इन्द्र अपने लोक ले गये और देवताओं ने नृत्य, गायन और वादन द्वारा केशों की अभ्यर्थना की। ऐसा ही सुंदर दृश्य स्तम्भ के भीतरी भाग के निचले दृश्य में भी अंकित है।

महापरिनिर्वाण[१] (चित्र ३५) : उत्तरी तोरण-द्वार के पश्चिमी स्तम्भ के भीतरी भाग पर ऊपरी दृश्य में कुशीनारा के मल्लों का प्रदर्शन है। इस दृश्य में असीरिया की कला का आभास मिलता है। बुद्ध की अस्थियों का एक भाग लेकर मल्लों ने नेपाल की तराई में मुकुटबन्धन नाम का स्तूप बनवाया और गायन-वादन एवं पूजा-अर्चना द्वारा स्तूप की अभ्यर्थना की। स्वस्थान-जैसे कसे मोजे, चीन-चोलक, आच्छादनक नाम का लबादा, 'कप्फुस' किस्म के जूते, "कुलह" कही जाने वाली गोलटोपियाँ इन मूर्तियों की विशेषता हैं। (धवलीकर—**साँची,** पृ० २५, २७, २९)। उनका पहनावा देखकर फर्गुसन ने सोचा था कि वे सम्भवतः काबुल-घाटी के वासी हैं। क्योंकि पेशावर के उत्तर में स्थित तख्त-ए-वाही के प्रस्तर-शिल्प की मूर्तियाँ और साँची के मल्लों में बड़ी समता है। (फर्गुसन, वही, पृ० १२२)।

अस्थियों का प्रस्थान[२] (चित्र २३) : पश्चिमी तोरण-द्वार के पृष्ठभाग के ऊपरी सिरदल पर यह दृश्य है। कुशीनारा में बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात् अस्थियों का विभाजन हुआ था। एक भाग लेकर मल्ल लोग हाथियों और घोड़ों पर सवार होकर बुद्ध की अस्थियों को सिर पर रखकर शालवृक्ष की ओर बढ़ रहे हैं। कुशीनारा के नर नारी गण छज्जों से उत्सव देख रहे हैं।

गंगा पार करते हुए बुद्ध के अस्थि-अवशेष : पश्चिमी तोरण-द्वार के उत्तरी स्तम्भ के भीतरी भाग (मार्शल-फूशे, वही, भाग २, फलक ६५, ए० थ्री) पर इस दृश्य में बुद्ध के अस्थि-अवशेषों को पाटलिपुत्र में गंगा नदी में नाव द्वारा पार कराया जा रहा है। इसमें सपक्षशार्दूल-मत्स्य नौका का दृश्य है। इस प्रकार की नौका को युक्तिकल्पतरु की "मध्यमन्दिर" नौका कहा गया है (देखिए **इन्डियाज् कन्ट्रीब्यूशन टु वर्ल्ड थॉट ऐण्ड कल्चर** ए विवेकानन्द कम्येमोरेशन वाल्यूम, पृ० ७५)। नौका के चारों ओर कमलों से आच्छादित जल लहरा रहा है। नौका में स्तम्भों पर टिका वितान है। वितान के नीचे वस्त्रों से ढकी टोकरी नुमा अस्थिमंजूषा है। मजूषा के दाएं-बाएं परिचारक हैं। एक के हाथ में चामर और दूसरे के हाथ में छत्र है। एक

---

१. काश्यप, **दीघनिकाय** (२), पृ० १२२,३/२४/१००—"अथ खो कोसिनारका मल्ला गंधमालं च सव्वं च तालावचरं पञ्चं च दुस्सयुगसतानि आदाय येन उपवत्तनं मल्लानं सालवनं येन भगवतो सरीरं तेनुपसंकमिंसु"; उपसंकमित्वा भगवतो सरीरं नच्चेहि गीतेहि वादितेहि मालेहि गन्धेहि सक्करोन्ता ....पीतिनामेसुं।" वही, पृ० १२५,३/२५/१०८—"अथ खो आयस्मा महाकस्सपो येन कुसीनारा मकुटवंधनं नाम मल्लानं चे तियं येन भगवतो चितको तेनपसंकमि ॥"

२. वही, पृ १२८,३/१६/११२—"सब्बेत भोन्तो सहिता समग्गा सम्मोदमाना करोमट्ठभागे। वित्थारिका होन्तु दिसासु थूपा, बहूजना चक्खुमतो पसन्ना' ति।" वही, ३/२६/११५— नवमो, तुम्बथूपो, दसमो अङ्गारथूपो" तथा "कोसिनारकापि मल्ला कुसिनारायं भगवतो सरीराननं थूपं च महं च अकंसु।"

मल्लाह नौका की दीवार पर टिका है। नौका का निचला भाग फर्गूसन के ग्रन्थ "**ट्री ऐण्ड सर्पेण्ट वर्शिप**" की फलक ३१, चित्र १ में देखा जा सकता है। यह वही चित्र है जिसे मैसी ने अपने ग्रन्थ के चित्र २१ के दूसरे रेखा-चित्र में प्रस्तुत किया है। कर्नल कोल ने जब पश्चिमी तोरण-द्वार को खड़ा किया था, तब नौका वाला निचला भाग टूट गया था। इस दृश्य में भी नदी में कमल खिले हैं। एक तैराक नौका पर चढ़ रहा है। पास ही नौका की दीवार से बड़ी सी पतवार लटक रही है। दो तैराक पटरों के सहारे तैर रहे हैं। तीन अन्य तैराक हवा भरी चमड़े की मशकों के सहारे जल-विहार कर रहे हैं। आजकल समुद्री बेड़े में काम करने वाले लोग इसी प्रकार की "लाइफ-जैकेट" का प्रयोग करते हैं।

अस्थियों का विभाजन (चित्र २३) : पश्चिमी तोरण-द्वार के पृष्ठ भाग की निचली सिरदल पर यह दृश्य अँकित है। हाथियों, रथों और घोड़ों पर बैठे राजा लोग कुशीनारा में बुद्ध की अस्थियाँ लेने आये हैं। यह युद्ध का नहीं बल्कि यात्रा का सा दृश्य है। सात छत्रों से यह स्पष्ट है कि अस्थियाँ लेने वाले सात राजा हैं। दक्षिणी तोरण-द्वार के पृष्ठ भाग के नीचे के सिरदल पर इस युद्ध का सजीव चित्रण है। दृश्य में कुशीनारा के मल्ल अपने प्रासादों के छज्जों पर धनुष-बाण ताने खड़े हैं।[१] प्रासादों के सामने अगल-बगल नीचे दूसरे राजा धनुष-बाण ताने छज्जों की ओर देख रहे हैं। प्रासादों के दाहिनी ओर ऊपर के भाग में हाथी के सिर पर अस्थि-मंजूषा रखे एक राजा जा रहा है। इससे स्पष्ट है कि अस्थियों का विभाजन हो चुका है और राजा लोग अपना-अपना भाग लेकर राजधानियों को लौट रहे हैं।

बौद्ध-स्थलों का अशोक द्वारा भ्रमण

रामग्राम (चित्र ३६) : दक्षिणी तोरण-द्वार के सम्मुख भाग में बीच के सिरदल पर रामग्राम के स्तूप की यात्रा के लिए जाते हुए अशोक और उनके राजकर्मचारियों का दृश्य है। उनका दल रथों, हाथियों और घोड़ों पर आगे बढ़ रहा है। स्तूप के एक ओर चार मानवरूपी नाग और नागी मालाएँ लिए स्तूप की पूजा-अर्चना कर रहे हैं। स्तूप के अण्ड पर दो पंक्तियों का अभिलेख है। पूर्वी तोरण-द्वार के पृष्टभाग के निचले सिरदल पर हाथी स्तूप पर सूंड़ों से कमल चढ़ा रहे हैं। यह भी रामग्राम के स्तूप का दृश्य है क्योंकि साहित्य में "नाग" शब्द से हाथी और सर्प दोनों का बोध होता है[२] (चित्र ३७)।

वज्रासन (चित्र ८) : दक्षिणी तोरण-द्वार के पश्चिमी स्तम्भ के भीतरी भाग पर ऊपरी दृश्य में इसका प्रदर्शन है। बोधिवृक्ष की कई डालियाँ बिना पत्तों वाली अर्थात् सूखी दिखायी गयी हैं। वृक्ष के सामने बोधिमण्ड बना है और सिंहासन पर त्रिरत्नों का अंकन है। नीचे के दृश्य में तिष्यरक्षिता और मातंगी के बीच खड़े अशोक तथा उनकी परिचारिकाएं उपस्थित हैं। सूखे

---

१. काश्यप, **दीघनिकाय** (२) पृ० १२७,३/२६/१११—"कोसिनारका मल्ला ते सङ्घगणे एतदवोचुं-भगवा अम्हाक गामक्खेत्ते परिनिब्बुतो न मयं दस्साम भगवतो सरीरानं भागं' ति।" इसी बात पर मल्लों और अन्य राजाओं के बीच तनातनी हो गयी थी।

२. वैद्य, **दिव्यावदानम्**, पृ० २४०—"रामग्रामं गतः। ततो राजा नागैर्नागयवनमवतारितः विज्ञप्तश्च-वयमस्यात्रैव पूजां करिष्याम इति।.........।" "रामग्रामेत्वष्टमे स्तूपमद्य नागस्तत्कालं भक्तिमन्तो ररक्षुः। धातून्ये तस्मान्नोपलभे स राजा श्रद्धाभू ? राजा चिंतयति यस्त्वेतत्कृत्वा जगाम।" (८६)

हुए वृक्ष को देखकर अशोक मूछित हो उठे हैं। इसलिये रानियों ने उन्हें सम्भाला है। बाद में अशोक ने वृक्ष की सेवा करके उसे फिर से पल्लवित किया। पूर्वी तोरण-द्वार के सम्मुख भाग के निचले सिरदल पर अशोक की उरुवेला-यात्रा का दृश्य है। वे रानी तिष्यरक्षिता के साथ हाथी पर चढ़कर वहाँ पहुँचे हैं। और बैठे हुए हाथी पर से उतर रहे हैं। तिष्यरक्षिता हाथी के पीछे खड़ी है। बोधिवृक्ष के दाहिनी ओर बहुत से उपासक १००० घड़ों में दूध लिए वृक्ष को सींचने आए हैं। आकाश में मालाएँ लिए सपक्ष विद्याधर वृक्ष की ओर बढ़ रहे हैं। कुछ उपासकगण मृदंग और डफले बजा रहे हैं और बांसुरी के स्वर निकाल रहे हैं। (वैद्य, **दिव्यावदानम्**, पृ० २५४-५५—"ततोराज पुरुषै राज्ञे निवेदितम्—"देव, बोधिवृक्षाः शुष्यत इति। ·······। श्रुत्वा च राजा मूच्छितो भूमौपतितः। ······। तिष्यरक्षिता मातङ्गीमुवाच—'शक्यसि त्वं बोधिवृक्षं यथापौराणमवस्थापितुम'? 'मातङ्गी आह—'यदि तावत् प्राणान्तिकावशिण्टा भविष्यति, यथा पौराणमवस्थापीयष्यामीति। विस्तरेण यावत्तया सूत्रं मुत्तवा वृक्ष सामंतेन खनित्वा दिबसे क्षीरकुम्भ सहस्रेण पाययति।")

मानुषी बुद्ध[१] : दक्षिणी तोरण-द्वार के पृष्ठभाग के ऊपरी सिरदल पर स्तूप और वृक्ष बने हैं। क्रकुच्छन्द का वृक्ष, कनकमुनि का उदुम्बर, कश्यप का न्यग्रोध और शाक्यमुनि का वृक्ष अश्वत्थ हैं। अन्य बुद्धों का प्रदर्शन करने वाले तीन स्तूप हैं। उत्तरी तोरण-द्वार के सम्मुख भाग के मध्यवर्ती सिरदल पर भी यही दृश्य है। यहाँ विपश्यी का वृक्ष पाटलि, शिखी का वृक्ष पुण्डरीक और विश्वभू का वृक्ष शाल भी प्रस्तुत हैं।

जातक-कथाएँ

षड्दन्त[२] : हिमालय में श्वेत-लाल-नीले कमलों से परिपूर्ण षड्दन्त नाम की झील थी। पास ही एक गुफा थी। वर्षाकाल में षड्दन्त बोधिसत्व इसी गुफा में रहते थे। ग्रीष्मकाल में वे अपने ८००० हाथियों के झुण्ड समेत विशाल वटवृक्ष के नीचे रहते थे। एक बार षड्दन्त ने शालवृक्ष की झाड़ी को झकझोरा। परिणामस्वरूप सूखी पत्तियाँ और लाल चींटियाँ उसकी छोटी रानी पर और हरी पत्तियाँ तथा फूल बड़ी रानी पर गिरे। छोटी हथिनी ने इसे अपना अपमान समझा और बोधिसत्व के प्रति कुण्ठित हो गई। दूसरे दिन सब हाथी झील में स्नान करने गए। दो हाथियों ने बोधिसत्व को स्नान कराया। एक हाथी ने उसे बड़ा सा कमल भेंट किया। अपनी सूँड़ में लेकर बोधिसत्व ने इसकी कुछ पंखुड़ियाँ अपने ऊपर फेंकी और इसे बड़ी रानी की ओर बढ़ा दिया। यह देखकर छोटी रानी फिर ईर्ष्यालु हो उठी। उसने प्रत्येक बुद्धों की पूजा की और वर माँगा कि वह वाराणसी के राजा की रानी बने और राजा से कहकर शिकारी भेजकर बोधिसत्व को मरवा दे। कालान्तर में शिकारी जंगल में गया। वहाँ उसने गहरी खाई खोदी और धनुष-बाण लेकर उसमें छिप गया। बोधिसत्व के उधर से निकलते समय बाण से उन्हें घायल कर दिया। बोधिसत्व ने शिकारी से कहा कि वह आरी से उनके दाँत काट ले। तत्पश्चात् बोधिसत्व ने प्राण त्याग दिये। दाँत जब रानी के समक्ष

---

१. काश्यप, **दीघनिकाय** (२), पृ० ५,१|२/८.
२. फ्रांसिस, "**दी जातक**" (भाग ५), पृ० २०—३१.

लाये गए तो पश्चाताप से दुखित होकर उसने उसी दिन संसार छोड़ दिया। दक्षिणी तोरण-द्वार के पृष्ठभाग के मध्यवर्ती सिरदल पर बोधिसत्व दाहिनी ओर कमलों से भरी झील में स्नान कर रहे हैं। उनके साथ छत्र और चामर लिए दो हाथी खड़े हैं। स्नान के बाद वे इन हाथियों के साथ न्यग्रोधवृक्ष की ओर बढ़ते हैं। इसके बाद जंगल में वे अकेले भ्रमण करते हैं। और बाईं ओर शालवृक्ष के नीचे आते हैं। उनके आगे एक हाथी सूँड़ से गड़ुवा रख रहा है। इसी समय खाईं से निकलकर शिकारी पेड़ की आड़ लेकर बाण छोड़ता है। पश्चिमी तोरण-द्वार के सम्मुख भाग में बिचले सिरदल पर इस जातक में ईर्ष्यालु हथिनी पीठ मोड़कर अलग हट रही है। सब हाथी मिलकर यहाँ वट के नीचे इकट्ठे हो रहे हैं और सूँड़ों से कमल आदि बिखरा रहे हैं। उत्तरी तोरण-द्वार के पृष्ठभाग के ऊपरी सिरदल पर भी यही दृश्य प्रदर्शित है (चित्र २४)।

विश्वन्तर[१] : एक समय राजा शिवि और रानी फुसती के यहाँ राजकुमार विश्वन्तर ने जन्म लिया और जन्म लेते ही १००० मुद्राओं का दान किया। १६ वर्ष की आयु में विश्वन्तर का विवाह राजा मद्द की पुत्री मद्दी के साथ हुआ। कालांतर में उनके जालि नामक पुत्र हुआ। फिर पुत्री कण्हाजिना हुई। एक समय कलिंग देश में अकाल पड़ा। कलिंग के ब्राह्मण विश्वन्तर से उनका श्वेत हाथी, जो जलवृष्टि करता था, ले गये। राजा शिवि को जनता ने इस दान का विरोध किया और विश्वन्तर को नष्ट करने की सोची। अन्त में शिवि ने विश्वन्तर को राज्य निष्काशन का दण्ड दिया। चार सिंधी घोड़ों वाले रथ में पहले मद्दी बैठी फिर विश्वन्तर। तब चार ब्राह्मण वहाँ प्रकट हुए और पूछने लगे कि विश्वन्तर साथ में क्या ले गये हैं। यह जानकर कि वे केवल रथ ले गये हैं, वे विश्वन्तर के पास गये और चारों घोड़ों को दान में ले लिया। घोड़े निकल जाने से रथ का जुआ ऊपर उठ गया। तब चार देवताओं ने हिरण का वेश धारण कर जुआ सम्भाला। तभी एक ब्राह्मण आकर रथ माँग ले गया। अब विश्वन्तर मद्दी और बालकों समेत पैदल चलने लगे। बालकों को कटि पर बिठा लिया। चलते-चलते वे विपुल पर्वत और केतुमती नदी के किनारे पहुंचे। विश्वकर्मा ने उनके लिए जगल में दो पर्णशालाएं बना दीं। विश्वन्तर अपना-अपना राजसी वेश बदल कर परिव्राजक बन गये। मद्दी ने भी अपना वेश वैसा ही कर लिया। कुछ समय बाद जूजक ब्राह्मण ने वहाँ आकर दोनों बालकों को माँग लिया। जंगल में जाकर वह दोनों बालकों को बेलों से बाँधकर बेलों से ही पीटने लगा। मद्दी उस समय वाहर गयी थी, जब बालक दान किये गये थे। बालकों के दान के समय मद्दी न आ जाये, इसीलिए देवता गण सिंह-सिंहनी के वेश में मद्दी का रास्ता रोकने लगे। बाद में वह आ पहुँची। तब शक्र ब्राह्मण बनकर आये और हाथ में जल डलवाकर मद्दी को ले जाने लगे। मद्दी ने कोई प्रतीकार नहीं किया। तब शक्र ने प्रसन्न होकर मद्दी

---

१. कांवेल और राउज़—"**दि जातक** (भाग ६ पृ० २४७—३०५; **चरियापिटक**, पृ० ९—१०, वर्ग ९:—

जलं हत्थे आकिरित्वा ब्रह्मणानं अदं गजं ॥ ३० ॥
उभो पुत्ते गहेत्वान अदासि ब्राह्मणो तदा ॥ ४७ ॥
मद्दिं हत्थे गहेत्वान उदकञ्जलिं पूरिय ।
पसन्नमनसङ्कप्पो तस्स मद्दिं अदासऽहं ॥ ५० ॥

को वापस कर दिया और उनके कहने पर विश्वन्तर ने उनसे कई वरदान मांगे :—
"(१) राजा शिवि मुझे वापस बुलाकर मेरा राजसी अधिकार दें। (२) मेरा पुत्र जालि दीर्घायु हो और धर्म पर चले। (३) मैं सदैव दान देता रहूँ। (४) मैं पृथ्वी पर पुन: जन्म न लूँ।" जूजक बालकों को लेकर राजा शिवि की राजधानी में पहुंचा। जालि ने राजा शिवि को पूरा वृत्तान्त सुनया। राजा ने बालकों को ब्राह्मण से धन देकर वापस ले लिया। जालि को लेकर राजा शिवि जंगलों में विश्वन्तर और मद्दी को लेने गये।

उत्तरी तोरण-द्वार के सम्मुख भाग के निचले सिरदल पर यह जातक-कथा आरम्भ होती है। अपने श्वेत हाथी पर चढ़े राजकुमार विश्वन्तर कलिंग देश के तीन ब्राह्मणों से मिलते हैं। परिवार समेत छज्जे पर बैठे गडुवे से ब्राह्मण के हाथों में जल देकर श्वेत हाथी दान कर देते हैं। राजा शिवि इस दान को छज्जों से देख रहे हैं और जनता के विद्रोह से विवश होकर राजकुमार को अनधिकार दान करने के अपराध में देशनिष्काशन का दण्ड देते हैं। अपनी रानी मद्दी, पुत्र जालि और पुत्री कण्हाजिना समेत राजकुमार राजधानी से निकल आये हैं। राजमाता फुसती के साथ राजा शिवि दायाँ हाथ उठाये छत्र और चामर समेत आते हैं और राजकुमार को दुख:पूर्वक विदा करते हैं। परिवार समेत चार सिंधी घोड़ों वाले रथ-पर सवार होकर राजकुमार आगे बढ़ते हैं। मद्दी राजकुमार पर स्वयं चामर डुला रही है। छत्र राजकुमार के दाईं ओर रथ पर टिका है। राजकुमार स्वयं घोड़ों की बागडोर और चाबुक पकड़े हुए हैं क्योंकि रथ हाँकने वाला उन्हें नहीं दिया गया। आगे चलकर राजकुमार घोड़ों का दान कर देते हैं। ये घोड़े बिना रथ के ऊपर दिखाए गये हैं। तत्पश्चात् बिना घोड़ों वाले रथ का दान वे एक ब्राह्मण के हाथ में जल देकर कर देते हैं। राजकुमार और मद्दी जुएं को थामे हैं और दोनों मिलकर रथ का दान करते हैं। ब्राह्मण के हाथ में भी जल-कमण्डलु है। बाद में बिना घोड़ों वाला खाली रथ लिए ब्राह्मण आगे बढ़ता है। इसी सिरदल के पूर्वी छोर पर कथा और आगे बढ़ती है। राजकुमार वालक की अंगुली पकड़कर और मद्दी बालिका को कटि पर बैठाये चल रहे हैं। हाथ जोड़े पाँच पुरुष-महिलाएँ रास्ते में उनका स्वागत करते हैं। ऊपर के दृश्य में पर्णशालाओं के सामने वैठी महिलाएँ अपने बालकों के साथ व्यस्त हैं। दो ग्रामीण क्रमश: भाला तथा धनुष लिए शिकार को जा रहे हैं। अन्य दो ग्रामीण हिरणों को बहंगी (विहंगिका) पर लटकाए गाँव वापस आ रहे हैं। उनमें से एक की कटि में भुजाली खुंसी हुई है। सिंह की उपस्थिति घोर जंगल की परिचायक है। इसी तोरण-द्वार के पृष्ठभाग के निचले सिरदल पर पूर्व से राजकुमार की कथा और आगे चलती है (चित्र २४)। विश्वन्तर और मद्दी चलते हुए केतुमती नदी के किनारे जंगल में पहुँचते हैं और घने वृक्षों की छाया में बैठते हैं। हिरणों के झुण्ड और कंदराओं में बैठे सिंह घने जंगल के द्योतक हैं। विश्वन्तर के प्रताप से आम का वृक्ष झुक जाता है और दोनों बालक आम तोड़-तोड़कर खाने लगते हैं। पर्णशालाओं के सामने कमलों से भरी पुष्करिणी में हंस और हाथी तैर रहे हैं। दो शूकर जल पीने आये हैं। महिष, हिरण, सिंह, हाथी और लगूर पेड़-पौधों के आस-पास विचर रहे हैं। राजकुमार-मद्दी ने वल्कल-वस्त्र धारण किये हैं। वे हवन-सामग्री अग्नि में डाल रहे हैं। पहली पर्णशाला के पास उनके दोनों बालक खेल रहे हैं। दूसरी पर्णशाला के सामने राजकुमार और मद्दी वार्तालाप कर रहे हैं। पर्णशाला के दाईं ओर जूजक ब्राह्मण को धनुष-

बाण लिए एक शिकारी आगे बढ़ने से रोक रहा है। शिकारी के खाने-पीने का सामान उसके सिर के ऊपर थैली और बोतल के रूप में प्रदर्शित है। शिकारी के पीछे मद्दी टोकरी में आम लिये जंगल से लौट रही है। इन्द्र तथा अन्य देवताओं ने तीन सिंहों का रूप धारण कर उसका रास्ता रोक लिया है। माता की अनुपस्थिति में चतुर जूजक ने हाथ में जल लेकर दोनों बालक दान में पा लिये हैं। और जंगल में वह उन्हें ले जाकर बेल से पीट रहा है। अन्त में चतुर ब्राह्मण ने निश्चिय किया कि राजकुमार के बच्चों को राजा शिवि अर्थात् बच्चों के बाबा के हाथ बेंच दें। इसीलिए ब्राह्मण राजभवनों में गया है। इसके बाद नीचे के भाग में राजकुमार-मद्दी को ब्राह्मण रूपी इन्द्र के हाथों दान कर रहे हैं। ब्राह्मण मद्दी को पकड़े है। उसके पीछे इन्द्र वज्र और मुकुट समेत खड़े हैं। इसी सिरदल के छोर पर ब्राह्मण जूजक दोनों बालकों को राजा शिवि के हाथों बेच रहा है। तत्पश्चात् राजा शिवि अपने कर्मचारियों के समेत हाथी-घोड़ों पर जंगल में आते हैं और राजकुमार मद्दी को सादर वापस ले जाते हैं।

ऋष्यशृङ्ग (एकशृङ्ग या अलंबुस चित्र ३८)[१] : उत्तरी तोरण द्वार के निचले सिरदल के पश्चिमी छोर पर प्रदर्शित इस जातक-कथा में तपस्वी बोधिसत्व घुटने बांधे पर्णशाला के सामने चौकी पर बैठे हुए हैं। एक हिरणी मुँह उठाए उनके पैरों के पास बैठी है। तदनंतर वह बोधिसत्व की पीठ के पीछे खड़ी दिखाई देती है। बोधिसत्व से हिरणी के गर्भ रह गया था। उत्पन्न बालक ऋष्यशृङ्ग पुष्करिणी में स्नान कर रहा है। यही बालक हाथ जोड़े पर्णशाला के सामने आकर पिता को अपना परिचय देता है। उसके सिर पर बना सींग उसकी माता की देन है। यह देखकर पिता को बड़ा आश्चर्य होता है। एक ओर मदिर में अग्नि प्रज्वलित है। पर्णशाला के आस-पास हाथी, सिंह और अनेक पेड़-पौधे दृष्टिगत हैं। ऋष्यशृङ्ग अपने तपोबल से इन्द्र का आसन हिला देता है। इन्द्र अलम्बुसा नामक अप्सरा उसे भ्रष्ट करने के लिए भेजते हैं। अलंबुसा अपने उद्देश्य में सफल होती है।

महाकपि[२] (चित्र ३९) : पश्चिमी तोरन द्वार के दक्षिणी स्तम्भ के सम्मुख भाग पर ऊपर यह दृश्य प्रदर्शित है। हिमालय में महाकपि बोधिसत्व ८०,००० वानरों समेत रहते थे। वहाँ गंगा नदी के किनारे एक आम्र वृक्ष था। वानरगण वृक्ष की रक्षा करते और आम खाते थे। किसी प्रकार वाराणसी के राजा को वृक्ष का पता लगा। वह सैनिकों समेत वहाँ गया। सैनिकों ने वानरों को वृक्ष पर ही घेर लिया। महाकपि ने अपने शरीर को गंगा के आर-पार फैलाकर वानरों को दूसरी ओर उतार दिया। बुद्ध का चचेरा भाई देवदत्त भी वानरों में से एक था। उसने बोधिसत्व को मारने की दृष्टि से छलांग लगायी और उनकी पीठ पर जा गिरा। बोधिसत्व की पीठ टूट गयी। राजा ने दयापूर्ण बोधिसत्व को मचान बाँधकर नीचे उतारा और हर प्रकार से उन्हें सुविधा दी। उन्होंने राजा को शिक्षा दी और दमतोड़ दिया। महाकपि की अस्थियों पर राजा ने मंदिर बनवाया।

दृश्य में गंगा के प्रवाह में मकर, मछली तथा कच्छप विचरते देख पड़ते हैं। महाकपि ने अपने शरीर को गगा के आर-पार फैलाकर पुल बना लिया है। कुछ वानर उस पुल पर से दूसरी

---

१. मार्शल-फूशे, वही, भाग २, पृ० २२५--३५; फ्रांसिस, दि जातक (भाग ५), पृ० ७९—८४, (संख्या ५२३)
२. राउज् दि जातक (भाग ३) पृ० २२५—२७.

ओर भाग रहे हैं। घायल होने के बाद महाकपि आम के वृक्ष के नीचे वाराणसी के राजा को उपदेश दे रहे हैं।

श्याम[1] (चित्र २५) : एक समय बनारस के पास नदी की एक ओर अन्य शिकारियों का गाँव तथा दूसरी ओर वैसा ही गाँव था। एक गाँव के मुखिया ने अपने लड़के दुकूलक का विवाह दूसरे गाँव के मुखिया की लड़की पारिका से कर दिया। दोनों का विवाह हो गया; किंतु वे घर त्यागकर परिव्राजक बन गये। इन्द्र ने उनके लिए मिगसम्मता नदी के किनारे घास-फूस की पर्णशालाएँ बना दीं। कुछ समय के उपरान्त दैवी कृपा से पारिका गर्भवती हुई और बोधिसत्व ने उसकी कोख में प्रवेश किया। जन्म होने के बाद बोधिसत्व को सुवण्णसाम का नाम मिला। कालांतर में माता-पिता को सर्पदंश के कारण अंधा होना पड़ा। अस्तु साम को ही अब सब काम करने पड़ते थे। नदी से जल भी वही लाता था। एक समय बनारस के राजा पिलियज्ञ नदी के किनारे आये और वहाँ झाड़ी में छिपकर हिरणों की राह देखने लगे। इतने ही में साम उधर से निकला। राजा ने उसे देखा और बाण मारने का निश्चय कर लिया। ज्यों ही साम जल भरकर चलने लगा त्यों ही राजा ने बाण मारा। हिरण भागे। साम आहत होकर जल से निकला और बालू पर किनारे लेट गया। राजा व्याकुल होकर साम के पास पहुँचा और अपना अपराध स्वीकार कर लिया और साम को वचन दिया कि वह उसके माता-पिता की देख रेख करेगा। साम की मृत्यु के बाद राजा जल भरा घड़ा लेकर माता-पिता के पास पहुँचा। माता-पिता राजा के साथ साम के पास गये और अपने प्रभाव एवं एक देवी के सहयोग से साम को जीवित किया और उसकी कृपा से उनके नेत्र भी ठीक हो गये।

पश्चिमी तोरण-द्वार के उत्तरी स्तम्भ के भीतरी भाग पर इस दृश्य में राजा धनुषबाण लेकर आखेट करने निकले हैं। जंगल में हिरन विचरते हैं। दो पर्णशालाओं के सामने अंधा और अंधी बैठे हैं। साम घड़ा लेकर पशुओं और कमलों से भरी मिगसम्मता नदी के सामने पहुँचा है। वह ज्योंही घड़े में जल भरकर निकलने लगता है त्यों ही राजा का बाण उसे गिरा देता है। बाद में राजा साम को देखने आते हैं, उसे गिरा हुआ देखकर बहुत दु:खी होते हैं। धनुष-बाण त्याग कर पश्चात्ताप करने लगते हैं। ऊपर अपना मुकुट पहने और अमृत-कलश लिए इन्द्र खड़े हैं। उनके साथ ही राजा, माता-पिता तथा साम भी उपस्थित हैं। दृश्य में ऐसा लगता है कि इन्द्र ने साम को जीवित किया है और उसके माता-पिता को नेत्र-ज्योति दी है।

अन्य प्रमुख दृश्य

(१) पूर्वी तोरण-द्वार के उत्तरी स्तम्भ के सम्मुख भाग में लोकपाल त्रायस्त्रिंश, यम, बुद्ध, मैत्रेय तथा निर्माणरति देवताओं के ६ लोक हैं[2] (मार्शल-फूशे, वही, भाग २, फलक ४६ ए-बी)।

(२) पश्चिमी तोरण-द्वार के पृष्ठ भाग के बिचले सिरदल के उत्तरी सिरे पर (चित्र २३)

---

१. कॉवेज और राउज, **दि जातक** (भाग ६) पृ ३८—५२

२. मार्शल-फूशे, वही, भाग २, पृ २२७—२८.

छत्र के नीचे आसवपायी राजा सिंहासन पर बैठे हैं।[१] बगल में गड़वा रखा है। परिचारिका चामर डुला रही है। मोढ़े पर राजा के सामने बैठी युवती के दाएं हाथ में गिलास है। एक व्यक्ति हांडी से गिलास में पेय उंडेल रहा है। सिंहासन के पीछे भवन है। वहाँ की महिलाएँ, कुछ छज्जे पर और कुछ नीचे खड़ी हुई, द्रव-पान के दृश्य देख रही हैं। सम्भवतः यह आमोद-प्रमोद का दृश्य है।

यक्ष-द्वारपाल : पहले भू-वेदिका के प्रत्येक द्वार पर दो-दो द्वारपाल खड़े थे। दक्षिणी द्वार के दोनों स्तम्भ अब नए हैं। इनके पुराने स्तम्भों पर द्वारपाल रहे होंगे। यक्ष स्तूप, वेदिका तथा तोरण-द्वारों की रक्षा करते हैं और भूत-प्रेत, कुतीर्थिक, अधर्मी, असांस्कृतिक तत्वों से त्रिरत्न को बचाते हैं। उत्तरी तोरण-द्वार के पूर्वी स्तम्भ (चित्र ४१) के भीतरी भाग की निचली भव्य मूर्ति द्वारपाल यक्ष कुबेर की है। वे कटि पर बायाँ हाथ टिकाये और दाएं हाथ में कमल लिए बाएँ पैर पर खड़े हैं। ऊँची पगड़ी, बहुत से कंकण, उत्तरीय और धोती इनकी वेषभूषा है। इसी द्वार के पश्चिमी स्तम्भ का द्वारपाल उतना भव्य नहीं लगता। पूर्वी तोरण-द्वार के उत्तरी स्तम्भ के द्वारपाल-यक्ष धृतराष्ट्र के दाएँ हाथ का कमल और कटि पर लटकती धोती सुँदर बन पड़े हैं। इसी द्वार के दक्षिणी स्तम्भ पर भी यही यक्ष है। पश्चिमी तोरण-द्वार के दक्षिणी स्तम्भ पर द्वारपाल यक्ष विरूपाक्ष ने स्थान पाया है जो वेशभूषा से यवनसैनिक लगते हैं। (चित्र ४२)। उनके बाल नुकीली लटों के समान हैं। लटों को फीते से बाँधकर आगे गेंद जैसा अलंकरण उनमें लगाया गया है। गले में लड़ियों और पत्तियों का चौड़ा हार है। पारदर्शक धोती में से उनकी जंघा, पैर और घुटने झलकते हैं। बाएँ हाथ में रुमाल बंधा भाला है। उनका दाहिना हाथ कटि पर टिका है। कटि से लटकती हुई तलवार छोटी किंतु चौड़ी और चमड़े की वद्धियों से बधी है। मूर्ति को देखकर लगता है कि कुषाण और गुप्तकालीन मूर्तिकारों ने विरुपाक्ष की मूर्ति को देखकर बुद्ध और बोधिसत्व-मूर्तियों का गठन किया होगा।[२] द्वारपाल के कमल पकड़ने का ढ़ंग, कण्ठहार, धोती का फेंट, पगड़ी का लट्टू चमड़े की बद्धियों से बंधी कटार आदि यूनान एवं मिश्र देश की कला की छापे लिये हैं। इस द्वार के उत्तरी स्तम्भ का निचला भाग नया है। अस्तु इसके द्वारपाल का अनुमान सम्भव नहीं है।

अन्य-यक्ष[३] : दक्षिणी तोरण-द्वार के सम्मुख भाग में निचले सिरदल (चित्र २६) पर कुम्भाण्डों के मुख या नाभियों से कमल की डण्डियाँ-पत्तियाँ निकलती हैं। इसी प्रकार कुम्भाण्ड उत्तरी तोरण-द्वार के पृष्ठभाग के बिचले सिरदल (चित्र २४) पर मारसेना के प्रमुख अग बने हुए हैं और नृत्य-गायन-वादन में लीन हैं। पश्चिमी तोरण-द्वार के चार-चार कुम्भाण्ड यक्ष ऊपर का भार वहन कर रहे हैं[४] (चित्र २३)। इनमें से किसी का मुख गंभीर है, कोई मुस्करा रहा है, कोई अट्टहास कर रहा है तो कोई चुप है। इन सबों के शरीर नितान्त ठिगने और स्थूल काय

---

१. मार्शल-फूशे, वही, भाग २, चित्र ६३ (२)

२. साहनी, **कैटेलाग**, चित्र ७ (कनिष्क के राज्यकाल की मूर्ति)।

३. मार्शल-फूशे, वही, भाग १, पृ० २३२.

४. शिवराममूर्ति, वही, पृ० ३—"वहन्ति यं कुण्डलशोभिताननः महाशना व्योमचरा निशाचराः (रामायण, ५-८-७)

हैं। इनकी उपस्थिति बहुधा मनोरंजन या शुभ-संभावना प्रगट करती है। कुछ विद्वानों ने उन्हें यज्ञ भी कहा है। पश्चिमी तोरण-द्वार के पृष्ठभाग के निचले सिरदल (चित्र २३) पर मार-सेना के गण भी इन्हीं यक्षों जैसे हैं।

यक्षियाँ[१] : उत्तरी तोरण-द्वार के सम्मुख भाग में पूर्व की ओर ऊपरी और बिचले सिरदल के बीच शालभंजिका वृक्ष की शाखा दाहिने हाथ से पकड़े और दायाँ पैर वृक्ष के तने पर टिकाये खड़ी है। बायां हाथ कटि पर है। निचले सिरदल के नीचे शालभंजिकाओं के एक हाथ की कुहनी वृक्ष पर टिकी हुई है। पश्चिम की ओर ऊपरी और बिचले सिरदल (चित्र २४) के बीच की शालभंजिका अपने दाएं हाथ और पैर से वृक्ष को लपेटे है। इसके पैरों में बहुत से कंकण हैं और केश लटकती हुई वेणियों में गुंथे हैं। पूर्वी तोरण-द्वार में उत्तर की ओर निचले सिरदल (चित्र ४३) के नीचे वाली यक्षी सबसे सुंदर है। उसका दायां पैर भूमि पर टिका है और बायां पैर बड़े कलात्मक ढ़ंग से पंजे पर उठा है। दायां हाथ आम की दो डालियों के बीच डाले और बांए हाथ से डाल पकड़ते झूलती हुई मुद्रा में वह खड़ी है। पैरों और हाथों में बहुत से कंकण हैं। गले में एकावली और कटि में मेखला है। फीते से बंधे कलंगीदार नुकीले केशों की अगणित छत्तेदार लटें पीठ पर छितराई हैं। केश-विन्यास की यह पद्धति यूनानी कला की छाप का अनन्य और सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। धोती का कच्छा पीछे कटि पर टंका हुआ है। पाणिनि के समय में शालभंजिका, उद्दालकपुष्पभंजिका और अशोकपुष्पप्रचायिका से उन खेलों का अर्थ लगाया जाता था, जिनमें बालाएँ शाल और अशोक वृक्षों की शाखाओं से फूल तोड़-तोड़ कर एकत्र करती थीं। कालान्तर में बाला और यज्ञ का अंकन शिल्पकला में होता रहा। अश्वघोष (ई० दूसरी शती) के समय में तोरण से लगकर खड़ी हुई बालाओं को तोरणशाल-भंजिका कहा गया। ये बालाएँ उस समय भी शालवृक्ष के नीचे खड़ी की जाती थीं। उनके लचीले शरीर देखते ही बनते थे। साँची के तोरण-द्वारों की यक्षियाँ भरहुत की वेदिकाओं पर बनी सुदर्शना चुलकोका, सिरिमा आदि की श्रेणी में आती हैं; किन्तु सौन्दर्य में उनसे बहुत आगे हैं। ये वृक्षदेवता सिंधुसभ्यता की अदिति माता की वंशजा हैं।[२]

सांची के शिल्पी : साँची के अभिलेखों से स्तूप के विभिन्न अंगों का परिचय प्राप्त होता है, जैसे, तोरण, प्रतोली (सं. ३९६, ८३५—३६), सूची (सं० ७३४), सिला, प्रदक्षिणापथ (सं० ७३९) वज्रपाणि-स्तम्भ, तोरण-स्तम्भ, विहार, मण्डप (सं० ८३५—३६) आदि। जिन श्रमकारों और शिल्पियों ने साँची के स्मारकों के निर्माण में योगदान दिया, उनमें से कुछ को राजलिपिकार (सं० १७५), दंतकार (सं० ४००), कम्मिक (सं० १९९), आसवारिक (सं० ३२१), आवेसनिक (सं० ३९८), वढ़की (सं० ४५४ तथा ५८९) आदि शब्दों से अनुबोधित किया गया है।[३]

---

१. मार्शल-फूशे, वही, भाग १, पृ० २४६.

२. शिवराममूर्ति, वही, पृ० १—"अवलंब्य गवाक्षपार्श्वमन्या शयिता चापविभुग्नगात्रयष्टिः। विरराज विलम्बिचारुहारा रचिता तोरणशालभञ्जिकेवा।" (बुद्धचरित, पृ० ५२)

३. मार्शल-फूशे, वही, भाग १, पृ० १२९.

वेशभूषा

साँची की मूर्तियों में **पगड़ी** (उष्णीष) बहुधा गोल टोपी की भाँति है, जिसके आगे और बीच में अलंकृत गोला लगा है.। कभी-कभी अर्द्धचंद्राकार फीते के सहारे अण्डाकार अलंकरण पगड़ी में लगाया गया है। कहीं-कहीं इसमें चार गोले लगे हैं। कहीं-कहीं गोला दाईं ओर खिचा है। अण्डाकार अलकरण कहीं-कही पगड़ी के आकार से भी बड़ा है। पगड़ी पतली या चौड़ी डोरियों की सहायता से गोलों को बाँधकर बनी हैं। कहीं-कहीं इसका आकार तिकोना अर्थात् तीन गोलों वाला है। इन्द्र का मुकुट ऊँचा चौकोर दिखाया गया है। द्वारपालों की पगड़ियाँ व्यवस्थित और सुंदर दिखती हैं। इनमें भी डोरी, गद्दी और अलंकृत गोले प्रयुक्त हुए हैं। लगता है कि अण्डाकार अलंकरण वाली पगड़ी विशेष व्यक्तियों को पहनायी गयी है। पश्चिमी तोरण-द्वार (चित्र २३) के दोनों स्तम्भों के यक्षों की पगड़ियाँ भी सुंदर और अलंकृत हैं। इसके दक्षिणी स्तम्भ (चित्र ४२) के द्वारपालयक्ष के केशों को फीते से बाँधकर मस्तक पर बड़ा सा गोला बाँधा गया है जो पगड़ी के बीच में उल्टी हाँडी के समान रखा है। यह पगड़ी चौड़ी पट्टियों की बनी है।

धोती (अर्द्धोरुक)[१] : यह बहुधा पैरों को नहीं ढ़कती। कटि पर धोती का बड़ा सा फेंट लगता है और छोर भूमि तक जाता है। अक्सर फेंट देने के बाद धोती के दो छोर जाघों पर लटकते हैं। द्वारपालों की धोतियाँ बड़े करीने से पहनायी गयी हैं। धोती की चुन्नट गांठों तक लकीरों द्वारा दिखायी गयी हैं। इससे एक छोर को सादे या अलंकृत रूप में भूमि तक ले जाया गया है। धोती का कच्छा पीछे से लाकर फेंट में जोड़ दिया गया है। कभी-कभी फेंट के लम्बे छोर को द्वारपाल यक्ष हाथ से संभालते हैं। बहुधा मूर्तियों की कटि के नीचे धोती के दो छोटे और एक लम्बा छोर बना होता है। छोटे छोर जंघों तक गये हैं। परंतु बड़ा छोर जंघों और पैरों के बीच रहता, गांठों पर रुकता, या भूमि तक जाता है। कहीं-कहीं धोती के दो लम्बे छोर समान रूप से लटकते हैं। पश्चिमी तोरण-द्वार के द्वारपालयक्ष की धोती पारदर्शी है, अस्तु उसके अंग बाहर झाँकते हैं। मलमल जैसी झीनी यह धोती पैरों तक गयी है और गीले वस्त्र की भाँति चिपक कर बैठी है। उसके ऊपर का पल्ला नीचे के पल्ले को ढ़कता हुआ बाएँ हाथ पर जाकर सिमट जाता है और नीचे दूर तक लटकता है। कुशीनारा के मल्लगण तिकोनी या चपटी टोपियाँ, चिपके घांघरे, मोजे और बूट पहिने हुए हैं (चित्र ३५)।

द्वारपालों ने अलंकृत **उत्तरीय** पीठ और बाहुओं पर लपेट रखा है (चित्र ४१)। यह दोनों ओर नीचे तक लहराता है। कभी-कभी यह कटि के दाईं ओर से पीठ पर होता हुआ बाएँ कंधे तक जाता और वहाँ से पीठपर लटकता है।

महिलाओं के **केश** बहुधा फीते से बंधे दिखते है। शालभंजिका के केश कभी-कभी कंघी की हुई दो घनी वेणियों में से अलग होकर नीचे फिर जुड़ जाते हैं। लटकती हुई मणिमालाएँ उन पर ऊपर से लहराई जाती हैं। पूर्वी तोरण-द्वार की यक्षी के सिर पर पंखदार कलंगी लगायी गयी है। उसके केश ताड़ के पत्ते के समान पीठ पर छितराये हुये हैं (चित्र ४३)। ऐसे केश-विन्यास को बर्ह-भार-केश कहा गया है। (धवलीकर, साँची, पृ० ३३)

---

१. धवलीकर, **साँची ए कल्चरल स्टडी**, पृ० १७.

महिलाओं को घुटनों तक चिपकी हुई पारदर्शक **साड़ियां** पहने हुए अंकित किया गया है। इनके छोर किनारों पर लटकते हैं। कहीं-कहीं शालभंजिका हाथ में साड़ी का लम्बा छोर या पल्ला पकड़े है। साड़ी का कच्छा पीछे कटि पर फेंट में जुड़ता है।

ब्राह्मण पट्टियों की ऊँची **टोपी** या पगड़ी पहिने हैं (मार्शल फूशे, वही, भाग २, फलक २६, थ्री-सी)। **वक्ष पर उत्तरीय** है। **धोती** का लम्बा छोर भूमि तक जाता है। हाथी का दान लेने वाले ब्राह्मण दाढ़ी वाले हैं। बहुधा ब्राह्मण ऊँची पगड़ी, जटा या दाढ़ी रखे हैं। कुछ ब्राह्मणों ने अपने घुटने पट्टियों से बांध रखे हैं और **वल्कल वस्त्र** पहिने हैं। विश्वन्तर जातक की मद्दी को भी वल्कलवस्त्र पहिनाया गया है। जटिल ब्राह्मण भी वल्कलधारी हैं (चित्र २२)।

आभूषण

पुरुष-मूर्तियों में चपटे मोटे **हार** और चौकोर, गोल या पुष्पांकित **कर्णफूल** दृष्टिगत हैं (चित्र ४१)। द्वारपाल-यक्ष हाथों में अनेक **कंकण** पहिने हैं। विभिन्न प्रकार के कंठों का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण उत्तरी तोरण-द्वार के पूर्वी स्तम्भ पर बुद्ध-पादों के ऊपर प्रस्तुत किया गया है (चित्र ४४)। यक्षी चौकोर गोट के कर्णफूल, महीन हीरक, अष्टमंगलक हार तथा चौड़ी **मेखला** धारण किये हैं। पैरों में एकहरे मोटे **कड़े** या कड़ों के साथ-साथ बहुत से पतले **लच्छे** हैं।

तोरणद्वारों पर वास्तु कला के उदाहरण : साँची के स्मारकों में स्तूप, विहार, मण्डप और मंदिर प्रमुख हैं।

स्तूप : नीचे से ऊपर तक स्तूप के आठ भाग दृष्टिगत होते हैं। भूवेदिका, प्रदक्षिणापथ, तोरण-द्वार, सोपान, मेधी, अण्ड, हर्मिका और छत्रयष्टि। दक्षिणी तोरण-द्वार (चित्र ३६) पर सम्मुख भाग के बिचले सिरदल पर रामग्राम का स्तूप, भूवेदिका, मेधी, अण्ड, हर्मिका, ६ खण्डों वाला शीर्ष और एक छत्र प्रदर्शित है। बिचले और निचले सिरदलों के बीच पश्चिमी स्तम्भ पर बने स्तूप में चार छोटे तथा उनके ऊपर एक बड़ा छत्र है। उत्तरी तोरण-द्वार के ऊपरी सिरदल के पूर्वी छोर पर स्तूप है। इसके अण्ड पर लटकती हुई अर्द्धचक्राकार माला और अलंकरण है। ऐसा अलंकरण बाद के स्तूपों में भी काफी प्रचलित हुआ। नागार्जुनकोण्डा और अमरावती के स्तूप इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। (लांगहर्स्ट, **एम. ए एस. आई.** (५४), चित्र ११ ए-बी)। इसी द्वार के निचले सिरदल के निचले स्तम्भ पर स्तूप के अण्ड और भूवेदिका पर भी अलंकरण है। इसके पश्चिमी स्तम्भ (चित्र ३५) पर मल्लों के स्तूप में अलंकृत भूवेदिका और मेधी तथा वेदिका तोरण-द्वार समेत है। पूर्वी तोरण-द्वार में ऊपरी सिरदल के दक्षिणी छोर वाले स्तूप की यष्टि पर तीन छत्र हैं और दाएं-बाएं एक-एक छत्र है। पूर्वी तोरण-द्वार के ऊपरी सिरदल के उत्तरी छोर पर शीर्ष के ऊपर यष्टि पर दो छत्र और दाएं-बाएं एक-एक छत्र है। इसी द्वार के दक्षिणी स्तम्भ के भीतरी भाग पर ऊपर से तीसरे (चित्र ३३) दृश्य में ईंटों या पत्थरों की पटियों का अण्डाकार स्तूप ऊँची भूवेदिका के भीतर बना है। इसमें अण्ड के सिवाय दूसरे सभी अंगों का अभाव है। स्तूपों के इन सभी उदाहरणों में सीढ़ियों एवं सोपान का अभाव है।

विहार : विहारों में प्रवेश-द्वार, भिक्षु-भिक्षुणियों के कक्ष, स्तम्भों पर टिका बरामदा, आंगन, पानी के निकास के लिए प्रणाली तथा प्रवेश-द्वार के अगल-बगल वाले कक्ष जिनमें जाने-आने का रास्ता नहीं है, उपलब्ध हैं। साँची के अधिकाँश विहार गुप्तयुग से मध्ययुग तक निर्मित हुए हैं। मध्ययुगीन विहार-मंदिर ४५ में प्रवेश-द्वार के ठीक सामने वाले कक्ष में बुद्ध-मूर्ति स्थापित

है (चित्र ४५)। किंतु अन्य विहारों में इस मूर्ति को रखने का प्रबंध स्पष्ट नहीं है। समय-समय पर इन चतुःशालाओं में सुविधानुसार परिवर्तन होते रहे हैं। वेदिकाओं या तोरण-द्वारों के किसी भी दृश्य में तत्कालीन विहार का भीतरी भाग प्रदर्शित नहीं हुआ है। अधिकांशतः उनका प्रवेश-द्वार ही प्रस्तुत किया गया है। ऐसे प्रवेश-द्वार पर्वतों को काटकर बनाये गये बिहारों में द्रष्टव्य हैं। उत्तरी तोरण-द्वार के पूर्वी स्तम्भ (चित्र २८) पर ऊपर से दूसरे दृश्य में गंधकुटी, कोशंब-कुटी और करोरिकुटी का जेतवनाराम में प्रदर्शन हुआ है। बाईं ओर नीचे के कोने वाले विहार की छत गुम्बदाकार है। ऊपर शिखर है, दीवार गोल है तथा ऊँचा प्रवेश-द्वार है। चारों ओर वेदिका बनी है। किंतु विहारों की छत गजपृष्ठाकार, गवाक्ष-वातायनों से सुशोभित, ऊपर छोटे-छोटे चार-पाँच शिखरों से युक्त तथा एक ऊँचे प्रवेश-द्वार वाली है।

मण्डप : दक्षिणी तोरण-द्वार के पश्चिमी स्तम्भ (चित्र ८) पर चार शिखरों और तीन गवाक्ष-वातायनों से युक्त मण्डप छह स्तम्भों पर टिका है। चार स्तम्भ कलशों पर खड़े हैं। नीचे के दृश्य में मण्डप की छत पर शिखर नहीं है किंतु बीच में गवाक्षवातायन है। अगल-बगल गुणक चिन्ह वाले अलंकरण और वेदिका वाला छज्जा है। उत्तरी तोरण-द्वार के पूर्वी स्तम्भ पर ऊपर से तीसरे दृश्य (चित्र २८) में बुद्ध के चंक्रम की समतल छत है और चार गवाक्ष-वातायनों वाला भाग स्तम्भों पर टिका है। पूर्वी तोरण-द्वार के निचले सिरदल (चित्र २१) पर बोधिमण्ड प्रस्तुत है। चार स्तम्भों पर टिका इसका भवन अठपहला लगता है। इसमें से तीन पहल सामने तथा दो दाएँ-बाएँ हैं। पूर्वी तोरण द्वार के उत्तरी स्तम्भ के सम्मुख भाग पर स्वर्गों के दृश्य अंकित हैं। (मार्शल-फूशे, वही, भाग २, फलक ४६, ए० बी०)। यहाँ समतल छत वाले तीन गवाक्ष-वातायनों से युक्त मण्डप चार अठपहले स्तम्भों पर टिका है; नीचे भूवेदिका है। दो दृश्यों में स्तम्भों पर कमल के आकार का शीर्ष है। जिस पर शार्दूल, वृषभ, गज तथा अश्व वाले उपशीर्ष हैं। पूर्वी तोरण-द्वार के दक्षिणी स्तम्भ पर ऊपर से दूसरे दृश्य में छोटे शिखरों वाली छत कम-से-कम चार गवाक्ष-वातायनों वाली है (चित्र २२)। तीन वातायनों में से अश्वत्थ की शाखा-प्रशाखाएँ फूट निकली हैं। इसमें छज्जा है और चार स्तम्भों में से सामने के दो स्तम्भ दृष्टिगत हैं। पश्चिमी तोरण-द्वार के पृष्ठभाग के निचले सिरदल पर ६ स्तम्भों वाला दो खण्डा मण्डप (चित्र २३) तथा नीचे के खण्ड में वेदिका और पाँच गवाक्ष-वातायन हैं। ऊपर के खण्ड में दो गवाक्ष-वातायन तथा वेदिका हैं।

पर्णकुटी : उत्तरी तोरण-द्वार के पृष्ठभाग में निचले सिरदल पर दो पर्णशालाएँ हैं (चित्र २४)। इनकी छत गुम्बदाकार और शिखरवाली है। गोल दीवार में सामने ऊँचा प्रवेश-द्वार है। ऐसी ही पर्णकुटी पूर्वी तोरण-द्वार के दक्षिणी स्तम्भ (चित्र ३२) पर ऊपर से दूसरे दृश्य में बनी है। गुप्तकाल से चौकोर मंदिर बनने लगे और गर्भगृह से मण्डप को अलग कर दिया गया। पूर्वी तोरण-द्वार के दक्षिणी स्तम्भ के भीतरी भाग पर मंदिर का प्राचीनतम चित्र है। इसमें चौकोर गुम्बद पर छोटा सा शिखर और कई गवाक्ष-वातायन हैं। वस्तुतः देवगढ़ (जिला झाँसी) के गुप्तकालीन मंदिर में शिखर का पुनरारम्भ हुआ। यह शिखर मध्ययुगीन मंदिरों में क्रमशः ऊँचा होता गया।

नगर : इनमें बहुधा प्रवेश-द्वार, प्रासाद तथा सुरक्षाप्राचीरें देख पड़ती हैं। दक्षिणी तोरण-द्वार के पृष्ठभाग में कुशीनारा काप्र वेश-द्वार चार स्तम्भों पर टिका है (मार्शल-फूशे, वही,

भाग २ फलक १५ थी)। सामने के स्तम्भों में एक-एक वातायन है। वातायन पर हवा-पानी-धूप से बचने के लिये सायबान लगाये गये हैं। स्तम्भों के ऊपर तीन छोटे शिखरों वाले गवाक्ष-वातायनों से युक्त गजपृष्ठाकार छत है। इनके पीछे दो स्तम्भों पर टिकी हुई ऐसी ही लम्बी छत है। प्रवेश-द्वार के बाईं ओर ईंटों की दीवार है। इसकी आड़ लेकर कुछ योद्धा बाण चला रहें हैं या अपनी गदा लेकर ऊपर चढ़ने का प्रयत्न कर रहे हैं। छज्जों से नरनारीगण युद्ध का दृश्य देख रहे हैं। छज्जों में वेदिकाएँ और गवाक्षवातायन हैं। बहुधा वे द्वितल देख पड़ते हैं। उत्तरी तोरण-द्वार के सम्मुख भाग में निचले सिरदल पर राजा शिवि के नगर का दृश्य है। वह भी लगभग इसी पद्धति का है। प्रवेश-द्वार के बाईं ओर ईंटों से निर्मित प्राचीरें दृष्टिगत हैं। उत्तरी तोरण-द्वार के पृष्ठभाग में निचले सिरदल के पश्चिमी छोर (चित्र २४) पर राजा शिवि के नगर का प्रवेश-द्वार त्रितल है। उत्तरी तोरण-द्वार के पूर्वी स्तम्भ पर ऊपर से चौथे दृश्य (चित्र २८) में श्रावस्ती नगर का प्रवेश-द्वार भी त्रितल है। उत्तरी तोरण-द्वार के पश्चिमी स्तम्भ पर ऊपर से दूसरे दृश्य (चित्र २०) में कपिलवस्तु का द्वितल प्रवेश-द्वार और ईंटों की कंगूरदार प्राचीरें हैं। प्रवेश-द्वार बहुधा इतने ऊँचे हैं कि उनमें से सजे-सजाए हाथी, महावत और सवारियों समेत आसानी से आ-जा सकते हैं, जैसा कि पूर्वी तोरण-द्वार के उत्तरी स्तम्भ के बीच कपिलवस्तु वाले दृश्य से प्रगट होता है (चित्र १८)। पश्चिमी तोरण-द्वार के पृष्ठभाग में बिचले सिरदल पर प्राचीर के बाहर पुष्करिणी का प्रदर्शन है। पश्चिमी तोरण-द्वार के पृष्ठभाग में बिचले सिरदल के दाहिने छोर (चित्र २३) पर एक द्वितल भवन प्रस्तुत है। इसके दक्षिणी स्तम्भ पर भीतर की ओर ऊपरी दृश्य में एक सिरदल वाला तोरण-द्वार खड़ा है।

स्तम्भ : दक्षिणी तोरण-द्वार के सम्मुख भाग में निचले सिरदल के नीचे पश्चिमी स्तम्भ पर ऊपर के दृश्य में स्तम्भ पर धर्मचक्र टिका है। इसके नीचे चौकोर चौकी, कलस, अठपहला भाग कमल-शीर्ष हैं। उत्तरी तोरण-द्वार के सम्मुख भाग के ऊपरी और बिचले सिरदलों के बीच कमल-शीर्ष के ऊपर सिंह-शीर्ष भी हैं।

अस्थिमंजूषाएँ[१] : जनरल मैसी और जनरल कनिंघम को स्तूप २ में ऊपर से थोड़ी दूर नीचे जाने पर छोटी कोठरी मिली, जो स्तूप के केन्द्र से दो फुट पश्चिम की ओर थी। इस कोठरी का फर्श मेधी की प्रदक्षिणापथ की सतह में लगभग ६ फुट की ऊंचाई पर था। कोठरी के अन्दर ११ इन्च लम्बी, ६½ इन्च चौड़ी, ६½ ऊँची अस्थिमंजूषा मिली। इसके पूर्वी भाग पर तीन सतहों में अभिलेख देख पड़े। ढक्कन अलग करने पर भीतर पाषाण की चार छोटी मंजूषाएँ मिलीं। इनमें बौद्ध आचार्यों एवं उनके शिष्यों (अंतेवासिन) की अस्थियाँ थीं, जो साँची से बाहर के स्तूपों से लाकर स्तूप २ में रखी गयी थीं और उनके नाम उन पर इस प्रकार खुदे थे—"काश्यपगोत्र, वात्सीसुविजयत, मध्यम, हारितीपुत्र, कोण्डिनीपुत्र, महावनाय, आपगिरि, कौशिकीपुत्र, गौप्तीपुत्र तथा मौद्गलिपुत्र।"

काश्यपगोत्र, मध्यम, कौशिकीपुत्र और गौप्तीपुत्र के नाम सोनारी से प्राप्त अस्थि-मंजूषाओं के अभिलेखों में तथा गौप्तीपुत्र, हारितीपुत्र और मौद्गलिपुत्र के नाम आँधेर से प्राप्त अस्थि-

१. कनिंघम—"भिलसाटोप्स", पृ १४८—६८, चित्र २० और २२,

74125

मंजूषाओं पर उत्कीर्ण मिले हैं । आपगिरि सोनारी की एक अस्थि-मंजूषा पर उत्कीर्ण आलाबगिर का ही नाम है । आँधेर की एक अस्थि-मंजूषा पर गौप्तीपुत्र के शिष्य वात्सीपुत्र का नाम उत्कीर्ण है । आँधेरे की एक अन्य अस्थि-मंजूषा पर गोप्तीपुत्र के शिष्य मौद्गलिपुत्र वाला अभिलेख है । आँधेर की एक अन्य अस्थि-मंजूषा के अभिलेख में गौप्तमीपुत्र को कौन्डिन्यगोत्र वाला बताया गया है । सोनारी के एक अस्थि-मंजूषा-अभिलेख में गौप्तीपुत्र को हेमवत तथा दुदुभिसर का उत्तराधिकारी (दायाद्) कहा गया है । सोनारी के दो अन्य ऐसे ही अभिलेखों में काश्यपगोत्र को कौत्सीपुत्र तथा मध्यम को कौण्डिनीपुत्र बताया गया है । यह मध्यम सांँची के मध्यम से भिन्न आचार्य हैं ।

काश्यपगोत्र, मध्यम, गौप्तीपुत्र, मौद्गलिपुत्र और वात्सीपुत्र अशोक के समकालीन थे । लगता है, उनके अस्थि-अवशेष पहले आँधेर की मंजूषाओं में रखे गये । बाद में उनके कुछ अंश सांँची के स्तूप २ में प्रतिष्ठित किये गये ।

इन आचार्यों में पहली पीढ़ी के आचार्य काश्यपगोत्र हैं । वात्सी-सुविजयत तीसरी या चौथी पीढ़ी के आचार्य हैं । इन पीढ़ियों का काल १०० वर्ष या अधिक रहा होगा ।[१]

स्तूप तीन के केन्द्र में जनरल कनिंघम को उत्तर-दक्षिण में मेधी के प्रदक्षिणापथ की सतह तक जाने पर उत्तर-दक्षिण दिशा में ५ फुट लम्बा पाषाण का एक पटिया मिला । पटिये के नीचे पाषाण की दो बड़ी मंजूषाएँ देख पड़ीं । इनके ढक्कनों की भीतरी सतह पर अभिलेख थे । दक्षिण वाली मंजूषा के ढक्कन पर "सारिपुतस" और उत्तर वाली मंजूषा के ढक्कन पर "महामोगलानस" लिखा था । प्रत्येक मंजूषा १½ फुट × १½ फुट × १½ फुट के आकार की थीं । उनके ढक्कन ३ इन्च मोटे थे । सारिपुत्र की मंजूषा खोलने पर एक छोटी सी मंजूषा मिली जो ६ इन्च से ऊपर चौड़ी और ३ इन्च से ऊपर ऊँची थी और मिट्टी के बारीक काले ढक्कन से ढकी थी । यह ढक्कन टूटा मिला था । छोटी मंजूषा के पास चदन की लकड़ी के दो टुकड़े (एक ४½ इन्च और दूसरा २½ इन्च लम्बा) मिले । छोटी मंजूषा सफेद, मुलायम पाषाण की और पहिये पर घुमाकर बनायी गयी लगती है । इसके अन्दर लगभग १ इन्च लम्बा अस्थि-खण्ड और विभिन्न प्रकार की गुरियाँ मिलीं । इनमें मोती, मूँगा, स्फटिक आदि की गुरियाँ उल्लेखनीय हैं । महामोगलान की मंजूषा सारिपुत्र की मंजूषा से छोटी और सफेद, मुलायम पाषाण की बनी हैं । इसके अन्दर अस्थियों के दो टुकड़े मिले हैं । बड़ा टुकड़ा ½ इन्च से छोटा है । इन छोटी मंजूषाओं के ढक्कन की भीतरी सतह पर स्याही में एक पर "सा" और दूसरी पर "म" लिखा है । सारिपुत्र और महामोगलान बुद्ध के प्रमुख शिष्य थे । उनकी मंजूषाएँ इस ढंग से रखी मिली थीं कि लगता था कि बुद्ध के एक ओर सारिपुत्र हैं तो दूसरी ओर महामोगलान । सारिपुत्र की मंजूषा से प्राप्त चन्दन के टुकड़े उनकी चिता पर से चुने गये होंगे । दोनों शिष्यों की अस्थियाँ दूर तक वितरित की गयी होंगी, क्योंकि सतधारा के स्तूप २ से भी उनकी अस्थियाँ मिली हैं । फ़ाहियान का कथन है कि मथुरा में दोनों की अस्थियों पर स्तूप बनाये गये थे । सम्भव है कि पहले दोनों की अस्थियाँ राजगृह के किसी स्तूप में रखी थीं । बाद में अशोक ने उन्हें निकालकर उनका फिर से वितरण किया ।

---

१. मार्शल-फूशे वही, भाग १ पृ० २९१—९३ .

पुरातत्त्व संग्रहालय : सर जॉन मार्शल ने संग्रहालय की योजना सन् १९१२ से ही आरम्भ कर दी थी। १९१९-२० में साँची की पहाड़ी पर संग्रहालय की स्थापना हुई। उन्हें जो सामग्री यत्र-तत्र मिली या खोदाई से प्राप्त हुई उसे उन्होंने एक खुले प्रांगण एवं संग्रहालय में प्रदर्शित कर दिया। काफी समय तक साँची के स्मारक और संग्रहालय भोपाल राज्य की देखरेख में चलते रहे, किन्तु १९४७ में देश स्वाधीन हुआ और स्मारक तथा संग्रहालय भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण को सौंप दिये गये। १९६०-६१ में सर्वेक्षण ने पहाड़ी के नीचे नया संग्रहालय खोलने का निश्चय किया। एतदर्थ, सारी सामग्री नीचे लायी गयी और २७ मार्च १९६६ को वर्तमान संग्रहालय का उद्‌घाटन हुआ। कृतियों का वर्णन तिथिक्रमानुसार नीचे दिया जाता है। यह वर्णन संग्रहालय के कक्षों के क्रम से नहीं है। कृतियों के साथ-साथ उनकी क्रमांक संख्या तथा कक्षों में उनकी वर्तमान स्थिति भी बतायी गयी है।

(अ) प्रदर्शित कृतियाँ

सं० २८६८ मार्शल-फूशे, वही, भाग ३, फलक १०७ ए में **तीसरी शती ई० पू०** का ओपदार सिंह-शीर्ष है (चित्र ३)। इसमें नीचे उल्टा कमल है। कमल पर बटी हुई रस्सी के समान कण्ठा है। उस पर फलका है। फलके पर पहले मधुमालती की चार लताएँ थीं, जिनमें से अब दो शेष हैं। प्रत्येक दो लताओं के बीच मुँह-से-मुँह जोड़े दो हंस हैं। पहले कुल मिलाकर चार लताएँ और हंसों के चार जोड़े थे। हंसों के ऐसे ही जोड़े रामपुरवा (बिहार) के अशोक स्तम्भ के सिंह-शीर्ष पर भी दृष्टिगत हैं।[1]

सबसे ऊपर दहाड़ते हुए सिंह हैं। कमल बुद्ध के जन्म, हंस उनके संघ और सिंह धर्मचक्र-प्रवर्तन करते हुए बुद्ध के प्रतीक हैं।[2] यह शीर्ष ६ फुट १०½ इन्च ऊँचा है (मुख्य कक्ष)।

सं० २७४६-४९ : ये सम्भवतः अशोक के ईंटों वाले स्तूप के ओपदार छत्र के टुकड़े हैं। उन पर एक के भीतर एक चार वृत्त हैं। भीतर का वृत्त काफी मोटा है, दूसरे वृत्त बारीक रेखाओं के हैं। प्रत्येक दो वृत्तों के बीच उभरी हुई समानान्तर रेखाएँ हैं (१ फुट ११½ इन्च × १ फुट १०½ इन्च × ७½ इन्च; मार्शल-फूशे, वही, भाग ३, फलक १०४ ए; मुख्य कक्ष)।

सं० २८०९ (मार्शल-फूशे, वही, भाग ३, फलक १०४ बी) : अठपहले स्तम्भ पर टिका हुआ यह अठपहला कटोरा है। इसके ऊपर एक गोल पात्र है जिसका केवल पेंदा बचा है। सम्भवतः इस पात्र में एकत्र किया गया भोजन भिक्षुओं को बाँटा जाता था। ओपदार कृति २ फुट ५¼ इन्च ऊँची है (मुख्य कक्ष)।

---

१. शास्त्री, **एज आफ़ दि नन्दनज़् ऐण्ड मौर्यज़्** चित्र ६।

२. चारों दिशाओं में गरजते हुए सिंह बोधिसत्व के जन्म का स्मरण दिलाते हैं। जब उन्होंने प्रत्येक दिशा में घूम-घूमकर सिंहनाद किया था—"लोक में अग्रणी मैं हूँ, ज्येष्ठ मैं हूँ, श्रेष्ठ मैं हूँ, यह मेरा अंतिम जन्म है। भविष्य में मैं जन्म नहीं लूँगा।" देखिये, सांकृत्यायन, **मज्झिमनिकाय** (३), पृ० १८८........"बोधिसत्वो समेहि पादेहि पथविय पतिट्ठहित्वा उत्तराभिमुखो सत्तपदवी विहारेन गच्छति; सेतम्हि छत्ते अनुधारीयमाने, सब्बा च दिसा विलोकेति, आसभि च वाचं भासति-अग्गोहमस्मि लोकस्स, जेट्ठोहमस्मि लोकस्स, सेट्ठोहमस्मि लोकस्स, अयमन्तिमा जाति, नत्थिदानि, पुनब्भवोति।"

दूसरी शती ई० पू०

सं० २७५५ अ—सं० २८४५ : स्तूप २ से लायी गयी मेधी और सोपान की वेदिका है। उष्णीष, सूची और स्तम्भ मिलकर यह वेदिका बनी है। स्तम्भों के सिरे पर खूँटे हैं जिन पर उष्णीष के पेंदे में बने छेद बैठते हैं। इस प्रकार उष्णीष के गिरने का भय नहीं रहता और इसके भार से स्तम्भ अपने स्थान पर रहता है। प्रत्येक तीन स्तम्भों के बीच एक सूची है। वेदिका पर तीन अभिलेख हैं जिनमें इसके विभिन्न अंगों के दान का उल्लेख हैं। स्तम्भों पर बलीवर्द, मत्स्य, कमल-पत्रावली एवं फुल्ले-अर्द्धफुल्ले, पक्षी, धर्मचक्रवाला स्तम्भ तथा हाथी आदि का अलंकरण है। कुछ फुल्ले सादे हैं (४′—७½″ ऊँची; मुख्य कक्ष)।

पहली शती ई० पू०

सं० २७८३—८४ : ये शाल भंजिकाएँ या यक्षियाँ साक्षी हैं। फले-फूले आम्रवृक्ष के नीचे झूलती हुई यक्षी का दृश्य है। वक्ष पर मुक्तामाल, कटि पर मेखला और बन्ध, पीठ पर वेणी तथा अलंकृत मणिमालाएँ हैं। साड़ी का कच्छा बंध में खोंसा हुआ है। वृक्ष के ऊपर बड़ा सा खूँटा है। सम्भवतः निचले सिरदल का खाँचा इसी खूँटे पर बैठता था (३ फुट ऊँची; मुख्य कक्ष, मार्शल-फूशे, वही, भाग २, फलक ६८ ए)।

सं० २८६७—२७९८ : यह यक्षी कुछ बड़ी है। और बाँए हाथ में आम की शाखा पकड़े है (३′—४″ ऊँची; मुख्य कक्ष; मार्शल-फूशे, वही, भाग २, फलक ६८ बी)।

सं० २६७८ : स्तूप १ के तोरण-द्वार के सिरदलों के बीच लगे छोटे-छोटे स्तम्भों में से यह एक है। एक ओर पुरुष-मूर्ति दाहिने हाथ में फूल पकड़े और बाँए हाथ से कटिबन्ध थामें हैं। उत्तरीय दाहिनी ओर लटकता है। मूर्ति की पगड़ी, उसका प्रसन्न मुख, ग्रीवा की अनोखी भंगिमा और गतिमान पैरों की मुद्रा दर्शनीय है। स्तम्भ के दूसरी ओर कमल का अलंकरण है (२′ ऊँचा; कक्ष १)।

सं० २६७९ : पट्टियों और दो गद्दीदार गोलों से बनी पगड़ी, वज़नदार कर्णफूलों और भरे हुए मुखवाला यह सिर उत्तरी तोरण-द्वार पर खड़े चामरधारी के सिर से मिलता जुलता है। सम्भव है कि इसके जोड़ीदार चामरधारी का यही सिर है (मार्शल-फूशे, वही, भाग २, फलक ६७ ई०; ६½ ऊँचा; कक्ष २)।

पहली शती ई०

सं० २७७७ : यह गजारोही है। सम्भवतः स्तूप ३ के तोरण-द्वार के सिरदलों के बीच छोटे स्तम्भों के बीच रखा था। हाथी पर महावत और पताका-वाहक के चिन्ह स्पष्ट हैं (१′—७″ ऊँचा; मुख्य कक्ष)।

दूसरी शती ई०

सं० २७१२ : स्तूप ४ की वेदिका का यह उष्णीष है। इस पर कमल-पत्रावली और हंसों का प्रदर्शन है (५′—७½ ऊंचा, मुख्य कक्ष)।

सं० २७८५ : मथुरा के पाषाण की बनी इस मूर्ति में बोधिसत्व के दो पैर शेष हैं। पैरों के बीच धोती के लटकते हुए छोर का चिन्ह है। मूर्ति के बाईं ओर खड़ी एक अन्य मूर्ति के पैर बने हैं। मार्शल-फूशे, वही, भाग ३, फलक १०५ सी से स्पष्ट है किये पैर खड़ी बोधिसत्व-मूर्ति

के हैं। चित्र में नाभि से पैरों तक मूर्ति का अंग उपलब्ध है। पादपीठ पर ध्यानमुद्रा में बैठी बोधिसत्व-मूर्ति के पीछे हस्तिनखों से युक्त बड़ा-सा प्रभा मण्डल है। इसके दाईं ओर दाएँ हाथ में कमल लिए छह पुरुष-मूर्तियाँ खड़ी हैं। उनमें से एक हाथ जोड़े है। इन मूर्तियों ने घुटनों तक लम्बे चीन-चोलक पहिन रखे हैं और पेटियाँ कसे हैं। बाईं ओर पाँच महिलाएँ खड़ी हैं। पहली महिला दाँए हाथ में कमल लिए है। तीन महिलाएँ हाथ जोड़े हैं। सभी महिलाएँ धोती के ऊपर से जांघों तक कुर्ती पहिने हैं। मूर्ति के पादपीठ पर यह अभिलेख है :—
(१) राज्ञो वस्कुषाणस्य स २० २ व २ दि १० भगवतो सक्यमुनेः प्रतिमा प्रतिष्ठापिता विद्य-मतिये ....पु .... वष्कुषाण।
(२)माता-पितृण सर्व्वसत्तना च हितसु" इसमें राजा के रखें राज्यवर्ष में विद्यामति द्वारा मूर्ति के दान का उल्लेख है[१] (१′–४″ × ११½″; मुख्य कक्ष)।

सं० २७१५ : पद्मासन में बैठी मथुरा के पाषाण की यह मूर्ति बोधिसत्व या "भगवत्" मूर्ति (मार्शल-फूशे, वही, भाग ३, फलक १२४ बी) ध्यानमुद्रा प्रदर्शित करती है। कुषाण राजा वासष्क के २८वें राज्यवर्ष में मधुरिका द्वारा यह मूर्ति धर्मदेव विहार में स्थापित की गयी थी[२] (१′–६¾″ × १′–३⅘″; कक्ष ३)।

चौथी शती ई०

सं० २८५९ : नागराज की खड़ी विशालकाय मूर्ति (मार्शल, **कैटेलाग**, फलक १, ए० १०२) के दाएँ हाथ में कमल और बाएँ हाथ में अमृत-कुण्डिका पकड़े हैं। मूर्ति के पीछे नाग के कई फण और पैरों तक कुण्डलियाँ हैं। मुकुट में तीन कीर्तिमुख लगे हैं, जिनसे मुक्तामाल निकल रहे हैं। भुजाओं पर लहराता हुआ उत्तरीय शरीर के दोनों ओर झूल रहा है। कटिबंध के छोर जंघाओ पर झूलते हैं। विष्णु-मूर्तियों की तरह नाग ने वैजयन्तीमाला धारण कर रखी है[३] (७′–१०½″ ऊँचा, कक्ष १)।

---

१. मार्शल-फूशे, वही, भाग १, पृ० ३८६, अभिलेख सं० ८२६।

२. वही, पृ० ३८५—८६ अभिलेख सं० ८२८। अभिलेख इस प्रकार है :— (१) "महाराजस्य राजातिराजस्य देव पुत्रस्य षाही वासष्कस्य सं० २०८ हे० १ दि० ५ एतस्यां पूर्व्वायां भगवस्य (२)...स्य जम्बूचाया-शिला गृहश्च धर्मदेव-विहारे प्रतिष्ठापिता वेरस्य धितरो मधुरिका (३) अनेन देयधर्म-परित्यागेन।" यहाँ जम्बू-छाया-शिला गृह का तात्पर्य बोधिसत्व के कपिलवस्तु में जम्बू वृक्ष के नीचे बैठकर प्रथम ध्यान लगाने की घटना से है जो वैद्य, **ललितविस्तार**, पृ० ९२ में दी हुई है। कपिलवस्तु के समीप कृषिग्राम की उद्यान भूमि में राजा शुद्धोदन अपने शाक्यों समेत गये। वहाँ उन्होंने बोधिसत्व को जामुन के पेड़ के नीचे आसन पर बैठा दिया और कृषिकार्य में लग गये। राजा शुद्धोदन को बिना बोधिसत्व के शांति नहीं मिल रही थी। उन्होने लौटकर जो देखा तो बोधिसत्व अपने स्थान पर ध्यानमग्न बैठे मिले :—"ततोऽन्यतम अमात्यो बोधिसत्वं पश्यति स्म जम्बुच्छायायां पर्यङ्कनिषण्णं ध्यायन्तम्।

३. नालन्दा की एक मूर्ति (सं० ०००४) में नागराज अपनी कुण्डलियों पर बैठे हैं। सिर के ऊपर सातफण हैं। दायें हाथ में कमल और अक्षमाला है तथा अभयमुद्रा का प्रदर्शन है। बायें हाथ में, जो गोद में रखा है, अमृत कुण्डिका पकड़े हैं। १ अ—५८ (नालन्दा की अष्टधातु मूर्ति) में भी ये ही लक्षण हैं। नालन्दा और साँची की इन मूर्तियों को नागराज कहना उचित नहीं जान पड़ता; क्योंकि नागों की मूर्तियां बहुधा पूजा-अर्चना करते या रक्षा करते हुए प्रदर्शित की गयी हैं। उनमें विशेष लक्षणों एवं चिह्नों का अभाव है। सम्भव

सं० २८५८ (चित्र ४६) : इसकी गढ़न **सं० २८५९** की भांति; किंतु इसमें नाग की कुण्डलियाँ चार और फण सात हैं। कमल लिये दायाँ हाथ कन्धे तक उठ गया है। इस मूर्ति में वैजयन्तीमाला नहीं है (६′–६″ ऊँची, कक्ष १)।

सं० २७०१ (चित्र ५२) : कमलासन पर बैठी और ध्यान-मुद्रा प्रदर्शित करती हुई इस बुद्ध-मूर्ति के शरीर पर गंधार मूर्तियों का-सा धारीदार चीवर है (१′–२″ ऊँची; कक्ष ३)

सं० २७९१ (चित्र ४७) : मथुरा के पाषाण की इस मूर्ति में ध्यानमग्न बैठे बुद्ध का प्रदर्शन है। सिर के पीछे चौकोर छेद है। सम्भवत: अलग से बना हुआ प्रभामण्डल इस छेद में अटकाया गया था। केश दक्षिणावर्त हैं। उठी हुई भौंहों के बीच मस्तक पर ऊर्णा है। आँखें कुछ धंसी हुई और कान लम्बे हैं। ग्रीवा पर रेखाएँ नहीं हैं। त्रिचीवर से सारा शरीर ढका है। मोटी धारियों द्वारा चीवर की उपस्थिति बतायी गयी है। हथेलियों पर चक्र तथा तलुओं पर त्रिरत्न और चक्र बने हैं। पालथी के नीचे चीवर की सलवटें दृष्टिगत हैं। पीठ का भाग समतल किंतु खुरदरा छोड़ दिया गया है (२′–७½″ ऊंची; मुख्य कक्ष)।

सं० २८०८ के चौकोर शीर्षक पर गोल गहरा छेद है, जो लोहे या पाषाण की छड़ द्वारा स्तम्भ पर कसा गया होगा। इसके कोनों पर कीचक बैठे हैं। चारों ओर दो कीचकों के बीच में कमल-बेल है (११½″ ऊँचा; मुख्य कक्ष)।

सं० २८५७ (चित्र ४८) : वाले शिला पटट पर खड़ी पद्मपाणि की विशालमूर्ति के सिर के पीछे अण्ड़ाकार प्रभामण्डल है। मुकुट पर कीर्तिमुख हैं, जिनसे मुक्तामाल निकल रहे हैं। ध्यानमग्न बोधिसत्व की दृष्टि करुणामयी है। वे कन्धों तक उठे हुए दाएं हाथ में कमल लिये हैं। उनका बायाँ हाथ जंघाओं पर पड़े हुए उत्तरीय की गाँठ पर टिका है। धोती घुटनों से ऊपर ही रह जाती है। निकले हुए दाएं घुटने के कारण मूर्ति गतिमान हो गयी है। प्रशस्त एवं पुष्ट अंग-प्रत्यंग गुप्तकालीन शिल्प के प्रतिनिधि हैं (७′–६″ ऊंची; मुख्य कक्ष)।

सं० २८४८ : लगभग **सं० २८५७** की प्रतिलिपि है। अन्तर केवल इतना है कि इस मूर्ति का बायाँ घुटना निकला है (८ फुट ऊँची; मुख्य कक्ष)।

पाँचवी शती ई०

सं० २७०१ : पद्मासन में बैठी और ध्यानमुद्रा का प्रदर्शन करती हुई यह बुद्ध-मूर्ति

है कि सांची-नालन्दा की नाग मूर्तियां मुचलिंद नाग का विकसित रूप प्रदर्शित करती हैं। दाक्षिणी तोरण-द्वार के पूर्वी स्तम्भ के सम्मुख भाग पर मुचलिंद अपनी कुण्डलियों पर बैठे हैं। उनके उठे हुए दायें हाथ में कमल है और बायां हाथ जंघा पर रखा है। राजगृह के मणियार मठ से प्राप्त १ ली-२री शती ई० की अभिलिखित मथुरा मूर्ति में मणिनाग का प्रदर्शन है। उसकी एक आकृति के बायें हाथ में कुण्डिका है और दायां हाथ अभय मुद्रा में है। (**ऐनुवल रिपोर्ट** १६३६-३७; चित्र १३ अ: पाटलि, **ऐन्टिक्वेरियन रिमेंस** पृ० ४४४) सांची पहाड़ी के दक्षिण लगी हुई नगौरी-पहाड़ी के कुषाण कालीन दीर्घकाय नाग का दायां हाथ में कमल है और कटि पर टिका हुआ बायां हाथ कुण्डिका पकड़े है। इससे यह स्पष्ट होता है कि अभयमुद्रा सांची के मुचलिंद की देन है। कुषाणकाल में इस मुद्रा के साथ-साथ कुण्डिका भी आ गयी। गुप्तकाल में अभयमुद्रा के साथ-साथ दायें हाथ से अक्षमाला पकड़ा दी गयी। नालन्दा के उत्तर गुप्तकालीन नाग को प्रथम बार बैठी मुद्रा में प्रदर्शित किया गया, किन्तु अभयमुद्रा, अक्षमाला तथा कुण्डिका अक्षण्ण रहे। ये ही लक्षण वहां के मध्यकालीन नाग में भी पाये गये हैं।

अपने ढंग की अनोखी है। ऊर्ध्वमुखी कमल मूर्ति के दिव्य जन्म का परिचायक है। चीवर सारे शरीर को ढके है। गहरी धारियों द्वारा चीवर का प्रदर्शन हुआ है (१'–२" ऊँचा; कक्ष ३)।

सं० २८०१ : शिलापट्ट पर प्रलम्बासन में बैठी हुई यह बुद्ध मूर्ति धर्मचक्र मुद्राप्रदर्शित करती है। चौकी पर पैर के दाएं-बाएं सिंह हैं। मूर्ति का दाहिना कन्धा खुला है और कान कन्धों को छूते हैं। शरीर में कड़ापन है और आँखें सामने देखती हैं (१'–७" ऊँची; मुख्य कक्ष)।

सं० २७९० : यह बुद्ध-मूर्ति गतिमान है (चित्र ४९)। गंधार की गुप्तशैली के आधार पर इसके चीवर का आयोजन हुआ है। चक्रांकित बाईं हथेली से बुद्ध चीवर का छोर पकड़े हैं। इसके प्रभामण्डल पर हस्तिनख दाईं ओर और चक्र बाईं ओर बने हैं (१'–७" ऊंची; मुख्य कक्ष)।

सं० २७२० : यह भव्यमूर्ति वज्रपाणि बोधिसत्व की है (चित्र ६)। इसके मुकुट में कीर्तिमुख लगे हैं। केश कुंचित हैं। दाएं हाथ में पकड़ा हुआ वज्र जंघा पर दृष्टिगत होता है। प्रभामण्डल पर किरणों का प्रदर्शन करने के लिये ताँबे की पिनें लगायी गयी थीं। स्तम्भ ३५ की चोटी पर पहले यही मूर्ति स्थापित थी (५'–१½" ऊंची; मुख्य कक्ष)।

छठी शती ई०

सं० २७७१ : मथुरा के लाल चित्तीदार पाषाण की यह विशाल मूर्ति (चित्र ५०) संग्रहालय की महत्वपूर्ण मूर्तियों में से है। सम्भवत: कानों के नीचे का भाग, जहाँ चौकोर छेद है, अलग से या बाद में लगाया गया था। प्रभामण्डल के चिन्ह शेष हैं। पूरा शरीर चीवर से ढ़का है। इसका आभास वक्ष, हाथ तथा पैरों पर उठी हुई मोटी धारियों से तथा पालथी के नीचे लहरियादार पंखें के आकार वाले वस्त्र से होता है। मूर्ति ध्यान मुद्रा में है। दाईं हथेली पर स्वस्तिक, शंख तथा दो मछलियाँ तथा बाईं हथेली पर स्वस्तिक, शंख तथा पैरों के तलुओं पर ऊर्णा, श्रीवत्स, चक्र, चामर एवं छत्र अंकित हैं। (५'–२" ऊंची; कक्ष १)।

सं० ८३२ : में बुद्ध-मूर्ति का ध्यानमग्न सिर अपने दक्षिणावर्त केशों के लिए उल्लेखनीय है (६" ऊंची; कक्ष २)।

सं० ८३१ : मथुरा के पाषाण की बनी अवलोकितेश्वर-मूर्ति का यह सिर ध्यानमग्न है (चित्र ५१)। इस पर वज्रमण्डल में अमिताभ की मूर्ति और प्रत्येक ओर तीन-तीन गरुड़ उपलब्ध हैं, जिससे मूर्ति का महत्व और अधिक बढ़ गया है। सरजॉन मार्शल तथा डॉ० फूशे ने वज्रावली एवं गरुणों का कहीं उल्लेख नहीं किया है[१] (९½" ऊँचा; कक्ष २)।

---

१. अमिताभ पद्मकुल के ध्यानी बुद्ध माने जाते हैं। वज्रमण्डल १ में बैठी उनकी मूर्ति सम्भवत: एक नये चरण का आरम्भ करती है। यदि पद्म और वज्र को मिला दिया जाय तो "ओमणिपद्मे हुँ" के प्रसिद्ध मंत्र का प्रदर्शन हो जाता है। यह सामग्री शोधकार्य के लिए उपयोगी जान पड़ती है, क्योंकि अमिताभ को और कहीं वज्र के सम्पर्क में अब तक नहीं देखा गया। **निष्पन्न योगावली** में "अथवज्रधातुमण्डलं" के अन्तर्गत "पश्चिमायां मयूरोपरिविश्व सरोजस्य परटके अमिताभो वज्रपर्यङ्कारक्तः उत्तानवामेतकरोत्सङ्गो परिस्थापनात्कृत समाधिमुद्रः दक्षिणपाणिमध्याङ्गुल्या वज्राङ्क पङ्कज धृत्वा" में सम्भवत: अमिताभ और वज्र के सम्बन्ध की ओर संकेत है। डॉ० अग्रवाल ने अपने ग्रन्थ "**स्टडीज इन इण्डियन आर्ट**, पृ० १४१–४४" में मथुरा की

सं० २५७२ : खड़ी और गोल उकेरी हुई चतुर्भुज विष्णु-मूर्ति (चित्र ५४) के वक्ष पर श्रीवत्स, अगले दाएं हाथ में पद्म और अगले बाएं हाथ में शंख, शरीर पर वैजयन्तीमाला, सिर पर किरीट-मुकुट और सिर के पीछे वृत्ताकार प्रभामण्डल है। टूटा हुआ पिछला दायाँ हाथ गदा पकड़े है। गदा को आयुधपुरुष की भाँति प्रदर्शित किया गया है। विष्णु-मूर्तियों में आयुध-पुरुषों की परम्परा उदयगिरि (जिला विदिशा) की पूर्वगुप्तकालीन मूर्तियों से आरम्भ होती है (१′–६½″ ऊँची; कक्ष २)।

सातवीं शती ई०

सं० २७९७ : शिलापट्ट पर खड़ी इस बुद्ध-मूर्ति का झूलता हुआ दायाँ हाथ वरद मुद्रा में है। भौंहें उठी हुई हैं। पैरों के अगल-बगल रेखाओं द्वारा चीवर दिखाया गया है। चीवर की किनारी में सलवटें पड़ी हैं। (५′–४½″ ऊँची; मुख्य कक्ष)।

सं० २७८६ : शिलापट्ट पर पद्मासन में बैठी बुद्ध-मूर्ति बाएं हाथ में चीवर का छोर पकड़े, दाएं हाथ में सम्भवतः अभयमुद्रा प्रदर्शित करती थी। किंतु दायाँ हाथ अब उपलब्ध नहीं है। इसके केश दक्षिणावर्त और भौंहें उठी हुई हैं। मुख पर शांतिमय मुस्कराहट है। पैर के तलुए चक्रांकित हैं। चौकी पर दो सिंह और उपासक-उपासिकायें बने हैं। सम्भवतः यह मूर्ति और सं० २७९९ एक ही शिल्पकार की बनायी हुई हैं (२′–८½″ ऊँची; मुख्य कक्ष)।

सं० २८५५ : इस शिलापट्ट पर नालागिरिनामक हाथी के दमन का दृश्य अंकित है (चित्र ५३)। बुद्ध के दाईं ओर चामरधारी मूर्ति के सामने नालागिरि खड़ा है। उसके सिर पर बुद्ध का दायां हाथ रखा है। हाथी शान्त मुद्रा में सूँड़ नीचे किये है। बाईं ओर बुद्ध के परिचारक-शिष्य आनन्द दण्ड लिए खड़े हैं। दृश्य राजगृह का है। बुद्ध भिक्षाटन के लिए निकले हैं और मगध के राजकुमार अजातशत्रु तथा देवदत्त के षडयन्त्र के फलस्वरूप हाथी बुद्ध पर आक्रमण करने दौड़ता है। किंतु सामने पहुंचकर वह शांत हो जाता है। बुद्ध उसके मस्तक को छूकर उसमें श्रद्धा और सद्भावना का सचार करते हैं। पालि साहित्य के अनुसार बुद्ध के साथ चलने वाले सभी भिक्षु हाथी को आते देखकर भाग खड़े हुए थे; किन्तु आनंद स्थल पर ही डटे रहे। कहा जाता है कि आनंद के गुणों को प्रकाश में लाने के लिए अन्य भिक्षुओं ने ऐसा किया था[१] (५′–१०″ ऊँची; बरामदा)।

अवलोकितेश्वर मूर्तियों के सिरों पर गरुड़ों का होना बताया है। सं० ८३१ भी इसी श्रेणी में आती है। इन गरुड़ों का बर्णन करने वाला साधन अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। इन अवलोकितेश्वर मूर्तियों में गरुड़ की उपस्थिति वैष्णव धर्म के प्रभाव की द्योतक हैं प्राचीन काल में खसंपर्ण अवलोकितेश्वर की पूजा विष्णु रूप में होती थी। (**दास-पैग सैम जोन जंग** (१), पृ० १४; **दास-इण्डियन पंण्डित्स इन दी लैंड आफ़ स्नो**, पृ० १८ और ७२)।

१. भगवत, **मिलिंदपञ्ह**, पृ० २०७, गद्यांश २९ (अनुवाद) :—"आज नरों में प्रमुख (**नरवरप्पवरे**), विजेताओं में अग्रणी (जिनवरवसभे) ने नगर में प्रवेश किया है। अब धनपालक (नालागिरि) पथ पर दौड़ेगा (नगरवर मनुप्पविट्ठे बीथिया धनपालको हत्थी आपतिस्सति)। किन्तु आनन्द उनका साथ नहीं छोड़ेंगे। (उपट्ठाको न परिच्चजिस्सति)। यदि हम सब हट न गये तो आनन्द के गुणों का प्रकाश नहीं होगा (यदि मयं सब्बे पि भगवन्तं न परिच्चजिस्साम, आनन्दस्स गुणों पाकटो न भविस्सति)। और न हाथी तथागत के पास जायेगा (न हेवं च तथागतं समुपगमिस्सति हत्थिनागो)।

आठवीं शती ई०

स २७७३ : शिलापट्ट पर खड़ी हुई इस बुद्धि-मूर्ति का दायां हाथ वरदमुद्रा में रहा होगा। बाईं ओर कार्तिकेय की भाँति तीन चोटियों वाले काकपक्ष केश रखें, वक्ष पर घटीवाला हार पहिने, बायें हाथ में कमल पकड़े और दाएं हाथ में चामर लिए सभवतः मंजुश्री की मूर्ति है। दूसरी ओर दाएं हाथ में कमल और बाएं हाथ में चामर लिए सम्भवतः अवलोकितेश्वर की मूर्ति है। सिर के पीछे प्रभामण्डल है (४′–१″ ऊँची; कक्ष १)।

नवीं शती ई०

सं० २७८० : खड़ी हुई गतिमान बुद्ध-मूर्ति दाएं हाथ से वरदमुद्रा प्रदर्शित करती है। चीवर का आकार-प्रकार सं० २७६२ की भाँति है। लेकिन सं २७८० में दोनों हाथ शरीर से पीछे हट जाते हैं। जबकि सं० २७९७ में हाथ काफी आगे हैं। दाएं हाथ के पीछे नवीं शती की लिपि में अंकित बौद्ध मंत्र है (४′–३½″ ऊँची; मुख्य कक्ष)।

सं० २७७४ : अर्द्धपर्यङ्कासन में बैठी हुई इस मूर्ति के पायलों में कीर्तिमुख लगे हैं दाईं ओर बैठा हुआ कुम्भोदर प्रेत दया-याचना कर रहा है। इसके हाथ-पैर लकड़ी जैसे हैं। बाईं ओर दाएं हाथ में परशु और बाएं हाथ में पाश लिए भृकुटि तारा का अकन है। बाईं ओर ऊपर दो योद्धा परस्पर भिड़ रहे हैं। पीछे एक महिलामूर्ति है। दृश्य के और ऊपर तक एक बैठी मूर्ति संभवतः पद्मपाणि अवलोकितेश्वर की है।[1] सर जॉन् मार्शल ने अपने कैटेलाग, पृ० ५, क्र० सं० ३३ में इस मूर्ति को तारा कहा है (१′–६″ ऊँची; कक्ष १)।

सं० २७७५ : शिलापट्ट पर बनी बुद्धि-मूर्ति बड़ी गहराई से उकेरी गई है। बाईं ओर पट्ट पर नवीं शती ई० की लिपि में बौद्ध-मंत्र उत्कीर्ण है। उपासक-उपासिका उपस्थित हैं। मूर्ति कमल की चौकी पर खड़ी है और इसका दायां पैर उठा हुआ है (३′–५½″ ऊँची; कक्ष ३)।

दसवीं शती ई०

स० २८०३ : शिलापट्ट पर अर्द्धपर्यङ्कासन में बैठी तारा के बाएं हाथ में कमल है। कमल के पीछे नागफण जैसा अलंकरण है। मूर्ति के बाईं ओर कमल पर एक देवी-मूर्ति खड़ी है। इसका बायां हाथ जंघा पर है। नीचे इसी ढ़ग से खड़ी देवी-मूर्ति और है। दाईं ओर ऐसी ही दो मूर्तियाँ हैं। नीचे की मूर्ति से स्पष्ट है कि दोनों मूर्तियों का दायाँ हाथ जंघा पर टिका रहा होगा। तारा की बगलों के नीचे दोनों ओर पट्ट आर-पार काट दिया गया है। इससे तारा के शरीर को गोलाई मिल गयी है। (१–६½″ ऊँची; मुख्य कक्ष)

सं० २७९९ ; शिलापट्ट पर पद्मसिन में बैठी हुई बुद्ध-मूर्ति धर्मचक्रमुद्रा प्रदर्शित करती है। बाएं हाथ के नीचे चीवर का सलवटदार किनारा पैर तक जाता है। दोनों पैर जहाँ मिलते हैं उसके नीचे चीवर का सलवटदार छोर है। चौकी पर दो गरजते हुए सिंह और बीच में उपासक-उपासिका विद्यमान हैं। मूर्ति के पीछे पट्ट पर प्रभामण्डल के चिन्ह हैं (२′–१½″ऊँची; मुख्य कक्ष)।

---

१. शुक्ल, वास्तुशास्त्र (२), पृ० २८०—प्रेत के लिए श्वसर्पण के साधन में—"…………समारोपितो-र्ध्वन्मुखं महा कुक्षिमति—कृशमतिर्शितिवर्ण सूचीमुखं तर्पयन्तं…… ।"

सं० २७९२ शिलाखण्ड में दो ताखें हैं। एक में नृत्यरत नर्तकी है। बाईं ओर मृदंगवादक हैं। दाईं ओर एक पुरुष हाथ उठाए नर्तकी की प्रशंसा कर रहा है। दूसरे ताखे में भी नर्तकी का नृत्य है। उसके बाईं ओर पुरुष-मूर्ति है (१'–४$\frac{१}{२}$" ऊँची; मुख्य कक्ष)।

सं० २७७९ (चित्र ५५) : शिलापट्ट पर पद्मासन में बैठी मूर्ति के नीचे और पीठ के पीछे पट्ट काट दिया गया है। इससे मूर्ति के शरीर को और कमल की नालों को गोलाई मिल गयी है। दाएं हाथ से मूर्ति वज्र को वक्ष तक उठाये है। वक्ष पर श्रीवत्स बना है। बायां हाथ सम्भवतः घण्टी पकड़े है। घण्टी की मुठिया वज्र की है। कमल की पंखुडियों पर बौद्ध मंत्र दो सतरों में दसवीं शती ई० की लिपि में उत्कीर्ण है। कमल के अगल-बगल सिंह हैं। बाईं ओर सिंह के कुछ पीछे, वक्ष तक वज्र उठाए और जघा पर रखे हाथ में घंटी पकड़े हुए पुरुष-मूर्ति बैठी है। इसके ऊपर एक और मूर्ति थी जिसके पैर शेष हैं। दायाँ पैर कमल पर टिका है। कमल के सामने कुण्डिका रखी है। बाएं पैर के पास कमल की नाल देख पड़ती है। सिंह के कुछ पीछे उपासक की मूर्ति है। जब मूर्ति सम्पूर्ण थी तब अन्य कई मूर्तियाँ दृष्टिगत थीं। ऊपर का भाग टूट जाने से अब बीच में मुख्य मूर्ति और अगल-बगल दो-दो मूर्तियाँ शेष रह गई हैं। संभवतः सम्पूर्ण मूर्ति घंटापाणि या वज्रसत्त्व के मण्डल का प्रदर्शन करती है।[१] मूर्ति सुंदर बन पड़ती है, किन्तु पीठ का भाग पीछे की ओर अधिक झुक गया है। मूर्ति के सिर के पीछे प्रभामण्डल के चिन्ह शेष हैं। मूर्ति के घुंघराले केशों की लटें तीन-तीन पक्तियों में विभक्त होकर दोनों कंधों पर छितरायी हैं। (३'–६" ऊँची; मु० कक्ष)

सं० २७७० : शिलापट्ट पर आले में मजुश्री की मूर्ति अर्द्धपर्यङ्कासन में बैठी है (चित्र ५६)। सिर के पीछे प्रभामण्डल है। कण्ठहार में व्याघ्रनख और धर्मचक्र लगे हैं। बाएं हाथ से कमल पकड़े हैं। कमल चौकी के नीचे मोर खड़ा है। व्याघ्रनख, धर्मचक्र तथा मोर कार्तिकेय-मूर्तियों का प्रभाव प्रदर्शित करते हैं। मूर्ति को सर जॉन मार्शल ने अपने कैटलाग, पृ० ६, क्रमाँक सं० ३६, पर "मयूरबिद्याराज" माना है (२'–३$\frac{३}{४}$" ऊँची; कक्ष १)।

सं० २७६४ : शिलापट्ट पर ध्यानमुद्रा में बैठी हुई बुद्ध-मूर्ति के प्रभामण्डल पर आकाशचारी विद्याधर टिके हैं। मूर्ति के दाएं-बाएं दसवीं शती की लिपि में बौद्धमंत्र उत्कीर्ण है। पैर के तलुए चक्रांकित हैं। चौकी पर दो सिंह और बीच में उपासक-उपासिका विद्यमान हैं। यह मूर्ति भी सं० २७८६ के शिल्पकार की ही कृति जान पड़ती है (३'–१" ऊँची; कक्ष १)।

सं० २६७४ : आले में दाढ़ी रखाए, दाएं हाथ में पुष्प और बाएं हाथ में कुण्डिका पकड़े अग्नि की मूर्ति है। इनका वाहन मेढ़ा दाएं पैर के पास खड़ा है[२] (२'–६$\frac{१}{२}$" ऊँची; कक्ष १)।

सं० ८३९ में देवी-मूर्ति का भरा हुआ मुख और सुगठित केशविन्यास आकर्षक है (१'–२$\frac{१}{२}$" ऊँची; कक्ष २)।

कक्ष २ में मिट्टी की सुराहियाँ, प्याले, दीपक, हंडियाँ, दावात, ढक्कन आदि प्रदर्शित हैं।

---

१. भट्टाचार्य बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी, पृ० ७५; अद्वयवज्रसंग्रह, पृ० ४१, का उद्धरण—"वज्रसत्वस्तु हुँकार जन्मा शुक्लो द्विभुज एकवक्त्रो वज्रघंटाधरो काषायरस शरीरः शरदृतु विशुद्धो यरलवाद्यात्मकः ......।"

२. शुक्ल, वास्तुशास्त्र (२), पृ० २५६ "मेषपृष्ठस्थितं देवं भुजद्वयसमन्विन्तं दक्षिणे चाक्षसूत्रं स्यात् करे नामे कमण्डलुः"

लोहे की वस्तुओं में कटार (सं० २१११), तीरों के फल (सं० २१२५), छुरे (सं० २०६४), छेनी (सं० २०६४, २०५२), निहाई (सं० २०५१), कन्नी (सं० १२३), सड़ंसी (सं० २०५०), ताले तथा चाभियाँ (सं० २०७२,२०७३), जंजीरें (सं० २०७८), हंसिया (सं० २१६१), हलों के फल (सं० २०४२) एवं मिट्टी बराबर करने के औजार (सं० २३६७) आदि मिले हैं। ताँबे-पीतल के कटोरे, देगची, घंटी, प्याला, लोटा, इन्डुरी आदि कक्ष ३ में प्रदर्शित हैं। ये सभी वस्तुएँ लगभग दसवीं शती ई० की हैं।

सं० २८७१ : चतुर्भुज शिव के पिछले दाएं हाथ में त्रिशूल, अगले दाएं हाथ में अभयमुद्रा का प्रदर्शन, पिछले बाएं हाथ में नाग और अगले बाएँ हाथ में कुण्डिका है। शिव के दाएँ-बाएँ चामर-धारिणी खड़ी हैं (२′–३″ ऊँची; कक्ष ३; ग्यारसपुर)।

सं० २८७० : अर्द्धपर्यङ्कासन में बैठी हुई गजलक्ष्मी के पिछले दाएं हाथ में कमल है। कमल पर हाथी खड़ा है।[1] अगला दायां हाथ वरदमुद्रा में है। पिछले बाएं हाथ में पकड़े कमल पर हाथी खड़ा है। अगले बाएँ हाथ में कुण्डिका है। दोनों हाथी कलसों से लक्ष्मी को स्नान करा रहे हैं। स्तूप १ के तोरण-द्वारों पर भी ऐसी ही कई मूर्तियाँ उपलब्ध हैं। किंतु उन्हें बौद्ध विषयों के बीच अंकित होने के कारण मायादेवी कहा गया है (२′–६½″ ऊँ०; कक्ष ३ ग्यारसपुर)।

सं० २८६९ : इस दृश्य में वसुदेव वस्त्र लेकर देवकी के पास कारागार में पहुँचते हैं। देवकी उसी वस्त्र पर बालक कृष्ण को लिटा देती हैं। वसुदेव शिशु को लिए हुए यमुना पार यशोदा के पास चले जाते हैं। यशोदा के बाईं ओर कृष्ण लेटे हुए हैं। परिचारिका यशोदा के पैरों के पास बैठी सेवाकार्य में रत है (१′–१०¾″ ऊँची; कक्ष ३; ग्यारसपुर)।

ग्यारहवीं शती ई०

सं० २८०५ : अर्द्धस्तम्भ पर दाएं हाथ में बीजपूरक और बाए हाथ में नकुली-थैली लिए कुबेर नर-वाहन पर खड़े हैं।[2] सर जॉन मार्शल ने अपने कैटेलाग, पृ० ६ (क्रमाँक संख्या ४२) में इसे लगभग आठवीं शती का माना है (२′–६″ ऊँची; कक्ष ३)।

सं० २८०४ : के अर्द्धस्तम्भ पर बाएं हाथ में पाश और दाएं हाथ में कमल लिए अपने वाहन मकर के साथ वरुण खड़े हैं[3] (३′–१″ ऊँची; कक्ष ३)।

सं० २७२३ : के अर्द्धस्तम्भ पर दाएं हाथ में खड्ग लिए और बायाँ हाथ जंघा पर टिकाए दिक्पाल निर्ऋति खड़े हैं। इनका वाहन सिंह है[4] (२′–३½″ ऊँचाई; कक्ष ३)।

सं० २८०२ : में खड़ी देवी-मूर्ति (तारा) षड्भुजी है। एक बाएं हाथ में देवी कमल पकड़े हैं। दाएं-बाएं चामर या पुष्पलिए दो-दो देवियाँ हैं (२′–४″ ऊँची; कक्ष ३)।

---

१. शुक्ल, वस्तुशास्त्र (२), पृ० २२२—"दक्षिणहस्तं वरदं चाथवा लम्बनम् भवेत्। पद्मस्था पद्महस्ता च गजोत्क्षिप्तघटप्लुता।"

२. वही, पृ० २५६—"मकुटी कुण्डली हारी केयूरो नरवाहनः। यक्षराज कुबेरोऽयं तप्तकाञ्चन सन्निभः।"

३. वही, पृ० २५८—"वरुणश्शुक्लवर्णस्तु द्विभुजः पाशहस्तकः।
यज्ञसूत्रोसमायुक्तो मकर स्थानकासनः।।"

४. वही (२), पृ० २५७—"खड्गखेटकसंयुक्तं निर्ऋतिश्यामवर्णकम्।
करालं विकृताकारं सिंहारूढं द्विनेत्रकम्।।"

सं० २७६५ : में गतिमान तारा-मूर्ति द्विरथ चौकी के कमल पर खड़ी है। बाएं हाथ के कमल की नाल बाईं ओर रखे कमल से निकलती है। यहाँ पट्ट दो भागों में विभाजित है। इसके आभूषणों में हीरकहार, मेखला, कड़े, पायल और कंकण उल्लेखनीय हैं। त्रिभंग में खड़ी यह मूर्ति-कला का सुंदर उदाहरण है (२'–३" ऊँची; मु० कक्ष)।

ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई०

सं० २७८०, २८७३, २८७४ : चामर धारी द्वारपालों की भव्य मूर्तियाँ ग्यारसपुर से आईं हैं। ये क्रमशः ५'–६½"; ४'–१½"; ५'–४¾" ऊँची हैं (बरामदा)।

बारहवीं शती ई०

सं० २६३८ : शिलापट्ट पर बनी यह देवी-मूर्ति चतुर्भुजी है। पिछले दाएं हाथ में कमल और अक्षमाला है। अगला दायाँ हाथ वरदमुद्रा में है। पिछले बाएं हाथ में पुस्तक सहित कमल है। अगले बाएं हाथ में दीपक या पात्र रखा है। प्रभामण्डल पर बीच में ध्यानीबुद्ध अमिताभ और उनके बाएं एक अन्य मूर्ति बैठी है। अमिताभ के दाईं ओर वाली मूर्ति अब नहीं है। सम्भवतः यह मूर्ति चुंदा तारा की है[1] (४' ऊँची; कक्ष ३)।

सं० २८८१ : उल्टे हुए धन-पात्र पर दाहिना पैर टिकाये और बाएं हाथ में नकुली-थैली पकड़े कुम्भोदर जम्भल बैठे हैं। चौकी के सामने पाँच धन-पात्र उल्टे पड़े हैं (चित्र ५७)।

साँची में मुलायम पाषाण की कई छोटी-छोटी चपटी मूर्तियाँ मिली हैं। इनमें विष्णु (३७३), अदितिमाता (३८७), गणेश (३८०) तथा महिषमर्दिनी दुर्गा (३९२, ३८१) उल्लेखनीय हैं (कक्ष २)।

(ब) संकलित कृतियाँ

सं० २८५० : घटे के आकार का यह कमल किसी **शुंगकालीन स्तम्भ का शीर्ष है**। इसके पेंदे में गोल छेद है। ऐसा ही छेद स्तम्भ के सिरे पर रहा होगा; अस्तु धातु या पाषाण की छड़ द्वारा दोनों जुड़ते होंगे। (२'–३" ऊँची)

सं० २७२८ : मैत्रेय बोधिसत्व की यह मूर्ति संग्रहालय की अन्यतम मूर्तियों में से एक है। बाएं हाथ में नागकेशरपुष्प के चिन्ह स्पष्ट हैं। नाभि के नीचे कटिबंध में पान के पत्ते के आकार वाले अलंकरण पर कीर्तिमुख प्रदर्शित हैं। इसके मुख से वस्त्र के दो छोर निकल रहे हैं। कटिबंध की झूलती हुई पट्टियों पर बैठे हुए मृग, गज और व्याल-प्रतीक, ईहामृग, मोर आदि के अलंकरण दृष्टिगत हैं। लगता है प्राचीन काल में यह किसी मूर्ति की पार्श्वमूर्ति थी (५'–३" ऊँची; ९वीं-१०वीं शती ई०)। इस मूर्ति की समकक्ष अवलोकितेश्वर मूर्ति इस समय लंदन के विक्टोरिया एण्ड ऐलबर्ट संग्रहालय में है।

सं० २७३८ : खड़ी बुद्ध-मूर्तियों में यह उत्तर गुप्तकालीन मूर्ति बेजोड़ है। मूर्ति को ऐसा तराशा गया है कि अंग-प्रत्यंग साँचे में ढ़ले लगते हैं। दायां हाथ अभयमुद्रा का प्रदर्शन करती है। बायां हाथ चीवर का छोर कंधे की ऊँचाई तक पकड़े है। पाद पीठ पर बाईं ओर उपासक बैठा

---

१. भट्टाचार्य बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी, पृ० २२१—"शरच्चन्द्राभां चतुर्भुजां दक्षिणेन वरदां, वामे पुस्तकाङ्कित पद्मधरां करद्वये पात्रधरां सर्वालंकार भूषिताम्।"

है। नाभि के नीचे लहरियादार दोहरा कटिबन्ध है। इसके दो छोर वाईं जंघा पर उभरे हुए हैं। दोनों कंधों पर चार-पांच उभरी हुई रेशम जैसी धारियों द्वारा कलाकार ने चीवर की उपस्थिति का आभास दिया है।

सं० २८७८ : इस शिलाखण्ड पर चतुर्भुज **वराह** का प्रदर्शन है। वे एक पैर पर खड़े हैं और दूसरा पैर एक आले पर टिकाए हैं। आले के अन्दर दो नागियों समेत नागमूर्ति उपस्थित हैं। वराह का मुख बाईं ओर है। पिछले दाएं हाथ में गदा और आगे के बाएं हाथ में सम्भवत: गोल ढ़ाल है (२′–७″ ऊँची; ११वीं–१२वीं शती ई०)।

सं० २८५६ : यह मूर्ति **सम्यकसंबुद्ध** की है। मूर्ति का अधिकांश भाग जा चुका है। केवल पालथी और सिंहासन बाकी है। पैरों के तलुओं पर चक्र, चामर, ध्वजा, शंख, श्रीवत्स, मत्स्य, छत्न तथा स्वस्तिक-चिन्ह अंकित हैं। दाएं हाथ की पाँचों अंगुलियाँ भूस्पर्शमुद्रा में शेष है। पालथी पर रखे बाएं हाथ में चीवर का छोर है। यह हाथ भी चक्रांकित है। पालथी के नीचे कमल की पंखुड़ियों पर बौद्ध मंत्न उत्कीर्ण है। सिंहासन के सिंहों के अयाल बड़े करीने से उभारे गये हैं। सिंहों के बीच और कमल के नीचे परशु के आकार का वस्त्नालंकरण प्रदर्शित है। सिंहासन की निचली पट्टी पर तीन पंक्तियों में उपासक दानकर्त्ता का अभिलेख है (२′–३″ ऊँची; नवीं-दसवीं शती ई०)।

सं० २८६३ : मन्दिर १८ से लाई गयी आठवीं शती की यह विशाल **द्वारशाखा** अपने ढंग की एक है। इसके ऊपरी भाग में चार पंक्तियों वाला अलंकरण है। दाईं ओर से पहली पंक्ति में दूर-दूर पर चौकोर अलकरण है। दूसरी पक्ति में छह मिथुन शेष हैं। तीसरी पंक्ति में आठ यक्ष शेष हैं। चौथी पंक्ति में कमल-बेल प्रस्फुटित है। इन पंक्तियों में नीचे दो बड़ी मिथुन-मूर्तियाँ हैं। दाईं ओर पुरुष-मूर्ति दाएं हाथ से वितर्क या अभयमुद्रा प्रदर्शित करती है और बायाँ हाथ जंघा पर टिकाए हैं। मूर्ति पर लाल रंग के चिह्न हैं। बाईं ओर सम्भवत: गंगा की मूर्ति अलंकृत मकर के ऊपर रखे कमल पर छत्न के नीचे खड़ी है। एक खड़ा हुआ यक्ष उसका दायाँ हाथ छू रहा है। गंगा के बाएं हाथ में अस्पष्ट पदार्थ है (१०′–७″ ऊँची)।

सं० २७१३ : इस मूर्ति में **बुद्ध** पर्यंकासन पर बैठे धर्मचक्र प्रवर्तन कर रहे हैं। वे यहाँ राजकुमार के रूप में प्रस्तुत हैं। गले में हार तथा भुजाओं पर पीपल के पत्ते के आकार वाले अलंकरण पर कीर्त्तिमुख बना है। कटिबन्ध के बीच अपने मुँह से वस्त्न के दो छोर निकालता हुआ कीर्तिमुख प्रस्तुत है। चीवर की किनारी अलंकृत है। पैरों में पायल पहिनाये गये हैं और तलुए चक्रांकित हैं (२′–३″ ऊँची; नवीं–दसवीं शती ई०)।

सं० २७२६ : मन्दिर ४० से प्राप्त **हाथी** का यह अग्रभाग अद्वितीय है। इसके सिर को बड़ी वास्तविकता के साथ गढ़ा गया है और ग्रीवा पर लचीले मांसल पर्त उभारे गये हैं (१′–११½″ ऊँची; तीसरी–दूसरी शती ई० पू०)

सं० २७६२ : नालागिरि-दमन में बुद्ध का दायाँ पैर और झुकता हुआ हाथी शेष हैं (२′–½″ ऊँची; सातवीं शती ई०)।

सं० २७७३ : चौकी पर-**जंभल या कुबेर** बैठे हैं।

सं० ४५५ : पट्ट पर छेनी से **आरेखन** किया गया है। ज्ञात होता है कि मूर्ति गढ़ने से पहले उसका आरेखन कर लिया जाता था। (ग्यारहवीं शती ई०)।

सं० २०७ : स्तूप ३ की वेदिका-स्तम्भ के फुल्ले पर गतिमान बकरे का सजीव चित्रण है। नीचे वसुमित्र की पत्नी प्रोष्ठिनी का दान उल्लिखित है (२'–७" ऊँची; १२वीं शती ई०)।

सं० ८४० : यह बोधिसत्व का सिर है। सिर के बालों का विन्यास मंजुश्री के बालों जैसा है। तीन काक पक्षों में बालों को विभक्त किया गया है। बायें कान में कुण्डल है (६¾" ऊंची; ग्यारहवीं शती ई०)।

सं० ८४२ : देवमूर्ति का ध्यानमग्न वक्ष है। प्रशस्त अंग है। दक्षिण भारतीय देवताओं की भांति ऊँचा कारण्ड मुकुट धारण किये हैं। प्रभामण्डल अण्डाकार है (१'–½" ऊंची; ग्यारहवीं शती ई०)।

सं० ७८७ : यह यक्षी का बायां पैर है। इसे दो कड़ पहिनाये गये हैं। पर कमनीय एवं कोमल हैं (८½" ऊँची; पहली शती ई० पू०)।

सं० ८०१ : मथुरा-पाषाण के पट्ट पर पद्मपाणि की खड़ी मूर्ति है। उठे हुए दाएं हाथ में कमल तथा बाएं हाथ में कुण्डिका है। शैली से कुषाणकालीन जान पड़ती है (७" ऊंची)।

सं० ८३४ : लाल पाषाण की देवी-मूर्ति का खण्डित सिर है। केश कुंचित हैं। बाएं कान में बड़ा सा कुण्डल है। दीर्घ नेत्र और भरा हुआ चेहरा, मुस्कराते हुए ओंठ सिर को दर्शनीय बनाते हैं (४¾" ऊँची; छठी शती ई०)।

सं० ६३६ : संभवत: द्वारशाखा का टुकड़ा है। नीचे के भाग में देवी कमल पर पालथी मारे बैठी है। दायाँ पैर बाएं पैर पर रखा है। दाएं हाथ में सम्भवत: वज्र था जिसे देवी अपने वक्ष से सटाकर पकड़े हैं। मूर्ति की भावभंगिमा से तत्परता का बोध होता है। ऊपरी भाग में एक अन्यदेवी कमल पर खड़ी थी जिसके अब पैर मात्र शेष हैं (१'–६½" ऊँची; नवीं शती ई०)।

सं० ९५० : मथुरा के लाल पाषाण की चौकी पर दो पैरों के चिन्ह हैं। बायाँ पैर चप्पल पहिने है। चौकी के सामने बैठे बोधिसत्व के बायें हाथ में कुण्डिका है। उनके लिए दो उपासिकायें दाहिने हाथ में लम्बी डण्डी वाला कमल लिए तथा बाएं हाथ से साड़ी समेटे खड़ी हैं। बोधिसत्व के सिर के पीछे प्रभामण्डल पर हस्तिनख कटे हैं। चौकी की ऊपरी और निचली पट्टी पर अभिलेख हैं। विषकुल की पुत्री के संबंधी ने बोधिसत्व मैत्रेय की यह प्रतिमा प्रतिष्ठापित की थी। यह स्तूप १२ से प्राप्त हुई है (८" ऊँची; कुषाणकालीन)।

सं० ११८३ : मथुरा पाषाण की इस कुषाणकालीन मैत्रेय-मूर्ति के दाएं पैर का चप्पल तथा अभिलेख के कुछ अक्षर शेष हैं। मथुरा की इन मूर्तियों में चप्पल पहिनने की पद्धति गंधार-कला के प्रभाव की द्योतक है (३" लम्बी)।

सं० ९६१ : चौकी के सामने गवाक्ष-वातायन में सिंह बैठा है। इसके नीचे किसी रौद्र देवता का भव्य सिर प्रस्तुत है। कुंचित केश लटों में विभक्त हैं। आंखें कठोर मुद्रा की हैं। विकराल दांत हैं। बड़ी-बड़ी मूछें तथा कनपटियों तक दाढ़ी उगी है। दांतों के नीचे जीभ दबी है। मार्शल के कैटालॉग, पृ० ३६ के अनुसार यह यक्ष का सिर है (१०" ऊँची; बारहवीं शती ई०)।

सं० ९६५ : दर्शनीय चतुर्भुज शिव का अगला दायाँ हाथ अभयमुद्रा में तथा अगला बायाँ हाथ कुण्डिका पकड़े है। पिछले हाथ टूटे हैं। चौकी के सामने नदी का दृश्य है (१'–३½" ऊँची; ग्यारहवीं शती ई०)।

सं० १११४ : यह हारीती-मूर्ति का भाग है। बाईं जंघा पर बैठे बालक के चिन्ह शेष हैं। बाईं ओर की पार्श्व-मूर्ति दाएं हाथ में खड्ग लिए खड़ी है (५½" ऊँची; दसवीं शती ई०)।

सं० २५६८ : पगड़ी धारण किये पुरुष-मूर्ति का यह भरापूरा चेहरा आकर्षक है (४½" ऊँची; पहली शती ई० पू०)।

सं० ११० और ६५ : ये दोनों पाषाण-खण्ड स्तूप ३ से प्राप्त एक चौकोर बड़ी मंजूषा के ढक्कन के रूप में हैं। सं० ६५ पर "सारिपुतस" उत्कीर्ण है। इस मजूषा में छोटी अस्थि-मंजूषाएँ मिली थीं। (क्रमशः १'–११½" × १'–२" तथा १'–८" × ११¼"; दूसरी शती ई० पू०)।

सं० २७३२ : "सारिपुतस" वाले ढक्कन के समान यह ढक्कन भी एक चौकोर बड़ी मंजूषा का अंग है। इस पर "महामोगलानस" उत्कीर्ण है। 63 × 60 am. (.......... × ....; दूसरी शती ई० पू०)।

सं० २३७० : चक्के पर घुमाकर बनायी गयी लाल मुलायम पत्थर की अस्थिमंजूषा का यह निचला भाग है। इसमें अस्थियाँ रखी जाती थीं (ऊँचाई १⅝", व्यास २⅞"; गुप्तकालीन)।

सं० २३६९ : यह हल्के हरे पत्थर का साँचा है। ऊपरी भाग में कमलों से आच्छादित धर्मचक्र और उसके दायें-बायें हिरण प्रस्तुत हैं। निचले भाग में अस्पष्ट लेख है (२¼" × १¾" उत्तर मध्यकालीन)।

क्षत्रप सिक्कों के साँचे : "देवी-विहार" से पकाई मिट्टी के ४ साँचे प्राप्त हुए थे। डॉ० अग्रवाल ने उनका अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला था कि पश्चिमी क्षत्रप राजाओं के सिक्के ढालने के लिए ये साँचे बनाये गये थे। इनमें एक ओर राजा का वक्ष है; दूसरी ओर चैत्य तथा लेख है। इनमें से एक साँचे के ठप्पे पर "राज्ञो महा......क्षत्रपस विश्वसेनस" तथा दूसरे ठप्पे "पुत्रस राज्ञो" लिखा मिला है।[१]

कला सम्बन्धी विशेषताएँ

स्मारकों के अंग-प्रत्यंग का वणन ऊपर हो चुका है। अब यहाँ उनके कलापक्ष का संक्षिप्त अनुशीलन किया जाता है।

मौर्यकाल : अभी तक १० मौर्यकालीन स्तम्भ उपलब्ध हुए हैं। इनमें से दो पर एक सिंह वाला शीर्ष है। इनके प्राप्ति-स्थान हैं, बखरा और लौरिया नन्दनगढ़, चम्पारन जिला, बिहार। अशोक जिन-जिन महामार्गों से होकर बौद्धस्थलों की यात्रा करने गये थे, उन मार्गों पर उन्होंने स्तम्भ खड़े करवाये थे। बखरा और लौरिया नन्दनगढ़ के स्तम्भ इसी श्रेणी में आते हैं। साँची का स्तम्भ विदिशा और उज्जयिनी के महामार्ग पर स्थापित किया गया था। सभी स्तम्भों की ऊँचाई ३० से ४० फुट के अन्दर थी। साँची का स्तम्भ सिंह-शीर्ष को छोड़कर लगभग ३५ फुट का था। स्तम्भों की चोटी का व्यास २ फुट था। स्तम्भों की भावना, कलाकार को ताड़वृक्ष से मिली थी। अस्तु वृक्षों की भाँति इन स्तम्भों की पूजा भी आरम्भ हो गयी। स्तम्भों पर पशुओं, पक्षियों और पुष्पों को स्थान मिला। उनमें सारी प्रकृति ही सम्मिलित हो गयी और स्तम्भ

१. साहनी, दि टेकनीक आफ कास्टिंग, पृ० ४८।

प्रकृति के प्रतीक बन गए ।[१] साँची-स्थित अशोक-स्तम्भ का सिंह-शीर्ष (चित्र ४), भिक्षापात्र और ईंटों वाले स्तूप के छत्र के टुकड़े, जो संग्रहालय में प्रदर्शित हैं, चुनार के भूरे बलुये पत्थर के बने हैं। उनका रूप सुघर है। उन पर शीशे जैसे ओप है, जो गोमेद से इनको रगड़ने से पैदा हुआ था ।[२] सभी ओपदार वस्तुएँ मौर्यकालीन नहीं मानी जा सकतीं ; लेकिन चुनार की शिलाओं पर जो ओप पैदा हुआ, वह अन्य शिलाओं पर नहीं चढ़ा। साँची के सिंह-शीर्ष को सारनाथ के अशोक स्तम्भशीर्ष (चित्र ५८) से मिलाने पर समानताओं के साथ कुछ भिन्नताएं भी दृष्टिगत होती हैं । साँची-शीर्ष का कमल कुछ लम्बा है । इसलिए यह स्तम्भ पर ठीक बैठता है । साँची-शीर्ष का कण्ठा बटी हुई रस्सी के समान है । सारनाथ-शीर्ष का कण्ठा सादा है । साँची-शीर्ष का फलक अधिक पतला है । इस पर हंसों के चार युग्म और उनके बीच-बीच में मधुमालती या मुचकुंद-लता प्रदर्शित हैं । हंस अपने नीर-क्षीर विवेक के लिए प्रसिद्ध हैं । बौद्ध-संघ के भिक्षु भी सत्य-असत्य के पारखी थे । इसीलिए ये हंस भिक्षुओं के प्रतीक बन गये । सारनाथ-शीर्ष के फलके पर चार धर्मचक्र और चार महाजनेय पशु अश्व, हाथी, सिंह और बलीवर्द हैं । ये पशु चारों दिशाओं के रक्षक माने जाते हैं और बुद्ध के जीवन से उनका गहरा संबन्ध हैं । दोनों शीर्षकों के फलकों पर चार सिंह पीठ-से-पीठ सटाए उकडूं बैठे हैं । सारनाथ-शीर्ष में सिंहों की पीठ के मिलने के स्थान पर धर्मचक्र रखा गया था । साँची-शीर्ष में सारनाथ-शीर्ष की अपेक्षा आकर्षण कम है । यह अधिक टूट गई है । सारनाथ-शीर्ष अपनी गठन, गरिमा और सौष्ठव में बहुत आगे है ।

दोनों शीर्षों की गढ़न एक ही कलाकार की बनायी हुई लगती है । किंतु इस विषय में विद्वानों की राय एक नहीं हैं । प्रो० फूशे के अनुसार इन शीर्षों को गढ़ने वाला शिल्पी भारतीय नहीं था ।

ई० पू० तीसरी शती भारत में पाषाण कला समुन्नत नहीं हो पाई थी । प्रायः लकड़ी का प्रयोग वास्तु तथा मूर्तिकला में होता था । उनका अब कोई अवशेष बाकी नहीं रहा । एशिया के किसी यूनानी कलाकार ने अपने दीर्घ अनुभव और प्रयास से शीर्षों का रूप निश्चित किया था । संभवतः यह कलाकार बाह्लीक (बैक्ट्रिया) से भारत आया था । इसको ईरानी कला का अनुभव भी था । शीर्षों के कमलों का ईरानी उद्गम जान पड़ता है । अशोक के अभिलेखों पर भी ईरानी प्रभाव है । इसीलिए यह कहना उचित होगा कि इन शीर्षों को बनाने की प्रेरणा वाह्लीक से मिली होगी । संभवतः विदेशी कलाकारों की सहायता के लिए भारतीय कलाकार जुटाए गए होंगे । हो सकता है कि साँची-शीर्ष किसी ऐसे भारतीय कलाकार की रचना हो जिसे पाषाण तराशने का सम्पूर्ण ज्ञान नहीं था । डॉ० बैकोफर ने बताया है कि साँची और सारनाथ के सिंह यूनानी कला के सिंहों से मिलते-जुलते हैं; लेकिन भारतीय सिंहों के गालों की हड्डियाँ, मूछें तथा धंसी हुई आँखें भिन्न लगती हैं । भारतीय सिंहों की आँखें निकली हुई सी लगती हैं । अस्तु वे मानते हैं कि भारतीय शीर्षों को बनाने वाला भारतीय ही था । यदि अशोक ने वाह्लीक या

---

१. ब्राउन, वही, पृ० ८९ ।

२. वही, पृ० ९० ।

और कहीं से यूनानी कलाकारों को पाटलिपुत्र में अपने प्रासाद और स्तम्भों को बनाने में लगाया था तो उसने सूसा के महल बनाने वाले डिरायस की पद्धति का अनुकरण किया होगा। उनके विचार से भारतीय कलाकारों ने भारत में उपलब्ध यूनानी कला-कृतियों को देखकर अपनी कृतियाँ बनाई होंगी। यदि ऐसा है तो कहना पड़ेगा कि यूनानी कलाकार अशोक के स्तम्भों के निर्माण के पहले भारत आ गए होंगे; क्योंकि विदेश से भारी-भरकम पाषाण की कला-कृतियों को भारत लाना आसान नहीं था। तब तो यह मानना होगा कि विदेशी कलाकारों ने ही अशोक की कृतियों को बनाया। यदि यह मान लिया जाय कि ये शीर्ष भारतीय कलाकारों ने बनाए थे तो ऐसा क्यों हुआ कि एक शताब्दी बाद जब यूनानी लोगों का उत्तर-पश्चिमी भारत में आधिपत्य हो गया और उनकी बहुत सी कला-कृतियाँ भारतीय कलाकारों के सामने सीखने और समझने के लिए उपलब्ध हुईं तो भी उन्होंने स्तूप २ की भूवेदिका पर कुछ ही दृश्यों के उत्कीर्णन से संतोष कर लिया। यदि डॉ० बैकोफर की युक्ति मान ली जाय तो यह कहना पड़ेगा कि भारतीय कला आरम्भ से ही बड़ी परिपक्व थी। बाद में उसमें भद्दापन आ गया और अंत में फिर उसमें सुघरता आई; लेकिन कला के इतिहास को जानने वाले यह मत स्वीकार नहीं करते। डॉ० स्मिथ ने भी कहा है कि सारनाथ के शीर्ष के सिंहों की गढ़न विदेशी कलाकार के बूते की नहीं थी। उनका यह कहना सर्वमान्य नहीं मालूम पड़ता। क्योंकि सारनाथ-शीर्ष पर हाथी और बलीवर्द ही दो भारतीय पशु हैं और ये दोनों कोई विशेष गठन लिए हुए नहीं हैं। हाथी की आँख बहुत बड़ी हो गई है और साँची तोरण-द्वारों के हाथियों के मुकाबले यह नहीं ठहरता। बलीवर्द भी सिंधुघाटी की मुद्राओं के बलीवर्द से मेल नहीं खाता।

अस्तु, अधिकाँश विद्वान साँची की मौर्यकालीन कला-कृतियों पर ईरानी कला का प्रभाव मानते हैं। सिंह-शीर्ष अपनी गढ़न के लिए ईरानी कला का आभारी है। मुर्रीदार कण्ठा, मुचकुंदलता, तथा कमल आदि पश्चिमेशियाई प्रतीकों का स्मरण दिलाते हैं। भारतीय-शीर्षों के सिंहों की आँखों में सम्भवतः पहले धातु की पुतलियाँ लगी थीं। उनके अयाल रोम और यूनान की इमारतों के प्रणालों में लगे सिंहमुखों के अयालों के समान हैं।[१] किंतु मौर्य और ईरानी स्तम्भों की गढ़न में भिन्नता भी है।[२] यथा —

मौर्य	ईरानी
१. स्तम्भ गोल हैं।	१. स्तम्भ पहलदार हैं।
२. स्तम्भ एकाश्म हैं।	२. स्तम्भ कई खण्ड वाले हैं।
३. स्तम्भ बढ़ई के बनाए लगते हैं।	३. स्तम्भ किसी राजाद्वारा बनाये गए वैभवपूर्ण स्तम्भ जैसे लगते हैं।
४. स्तंम्भ स्वतंत्र कलाकृति है।	४. स्तंभ भवन का अंग है।
५. शीर्ष का आधार नहीं है।	५. शीर्ष का आधार उलटा कमल है।

---

१. ब्राउन—वही, पृ० ६।

२. मजूमदार और पुसलकर—दि एज आफ दि इम्पीरियल यूनिटी, बम्बई (द्वितीय संस्करण), १९५३, पृ० ५०८—०९;

सम्भवत: शीर्षों का शरीर विदेशीपन का पुट लिए हैं; किंतु उनकी आत्मा, कल्पना और ओप भारतीय हैं ।[१] उनमें कलाकार ने प्रवल धार्मिक भावना का समावेश किया है । अपने आप में वे अद्वितीय हैं । उनकी समता करने वाली कृतियाँ भारत में फिर नहीं बन पाईं । यह कला मौर्य सम्राटों की छत्र-छाया में खूब फली-फूली । इसने भारतीय कला में क्रांति मचा दी और उसे एक सुव्यवस्थित, उन्नत रूप में ला खड़ा किया । भारतीय कला का प्रथम जाज्वल्यमान स्वरूप यहीं देखने को मिलता है । इसी से भारतीय कला का क्रमबद्ध इतिहास आरम्भ होता है । इसकी परिपक्वता देखकर यह उचित ही लगता है कि इसकी नींव अतीत में एक या दो शताब्दियों तक अवश्य रही होगी । इस कला ने पूर्व और पश्चिम को मिलाया है, उसी प्रकार जैसे बौद्ध-धर्म और संस्कृति भारतीय सीमाएँ पार कर पश्चिम के जन-जीवन पर छा गए थे । वस्तुत: इस कला को अन्तर्राष्ट्रीय कला का उच्च स्थान प्राप्त हुआ है ।

शुंगकाल : स्तूप १ की मेधी और सोपानों की वेदिकाएँ प्राचीनतम हैं । इनके बाहरी भाग पर ही दृश्य या अलंकरण उकेरे गए हैं । ये अलंकरण स्तूप १ के अण्ड का सूनापन दूर करते हैं। इनमें कमल की बहुलता है । महिष, हिरण, बलीवर्द, शार्दूल, हाथी, मकर, अश्व, चोंच में मालाएं लिए पक्षी, कमलों से भरे कलश, भालू, पिछले खुर से मुंह खुजलाता हुआ मृगशावक, मानवमूर्तियाँ, यक्ष-यक्षी आदि का प्रदर्शन भी इन पर है । अधिकाँश दृश्य भद्दे और साधारण हैं । उनमें उभार नहीं है । संभवत: शिल्पियों ने पहले यहीं पर कार्यारम्भ किया था ।

इसके कुछ वर्षों बाद स्तूप २ की कृतियाँ बनीं, जो कला के विकास का अध्ययन करने के लिए महत्त्वपूर्ण हैं । इस समय भी शिल्पकला अपनी आरम्भिक अवस्था में थी । भारतीय कलाकार लकड़ी और हाथीदाँत के काम में निपुण थे । स्तूप २ की भूवेदिका भी लकड़ी के नमूनों पर बनायी गयीं । ये नमूने अशोक के समय से काम में आ रहे थे । शुंगकाल में दन्तकारों ने वेदिकाएं अलंकृत कीं । उनके सामने यह समस्या थी कि वेदिकाओं पर किस प्रकार के विषय उकेरे जायें । अशोक ने अपनी कला-कृतियों में स्तूप, चक्र, कमल, मधुमालती लता, हंस, हाथी, अश्व, सिंह, बलीवर्द आदि का प्रयोग सीमित ढंग पर किया था । स्तूप २ की कला में उनका प्रचुरता से प्रयोग हुआ । इसी प्रकार बोधिवृक्ष, त्रिरत्न और श्रीवत्स भी कला में स्थान पा गये। अन्य प्रकार के पेड़-पौधे एव पुष्पमालाएँ अपनाई गयीं । मालाओं और हारों से सुसज्जित कल्पवृक्षों पर सिंह, हिरण, तोते, मयूर एव हंस क्रीड़ा करते दिखाए गये । चौपायों के प्रदर्शन में कलाकारों ने विशेष अभिरुचि दिखायी । इनमें हाथी की आकृति सर्वश्रेष्ठ उभरी; किंतु ऊँट और सिंह की आकृतियाँ ठीक नहीं बन पाईं । संभवत: दरियाई घोड़ा, शूकर, रीछ, कुत्ते बहुत कम प्रयुक्त हुए । कल्पित जन्तुओं (ईहामृगों)[२] में मृगमत्स्य, मानवसिर वाले सिंह, तोते की चोंच वाले शार्दूल, मानवसिर वाले घोड़े, घोड़े के सिर वाली यक्षियाँ, हाथी के सिर वाला हिरण, फण वाले मानवी नाग एवं खूंखार समुद्री जन्तु यत्र-तत्र खाली स्थानों में भरे गये । इनमें से नाग भारतीय प्रतीक हैं । देश के सभी प्रमुख धर्मों में उनका स्थान है । शार्दूल तथा सवारियाँ

---

१. ब्राउन—वही, पृ० ९ ।

२. शिवराममूर्ति, वही, पृ० २ ।

लिए मेढ़ें, ऊँट, बकरियाँ सम्भवत: असीरिया एवं पश्चिमी देशों से लिए गये । पशुओं और प्राकृतिक दृश्यों से अधिक कठिनाई शिल्पकारों को मानवीय आकृतियाँ बनाने में हुई । यक्षों-यक्षियों के अंग-प्रत्यंग रूखे, उखड़े, भद्दे पैरों वाले और अप्राकृतिक ढंग से खड़े दिखाए गये । जब कई मूर्तियों को एक जगह लाना पड़ा तो कलाकार ने उन्हें एक के पीछे एक या पहले अगल-बगल फिर एक के पीछे एक दिखाने लगे । बुद्ध के जीवन दृश्यों एवं जातक-कथाओं के अंकन में कलाकारों ने संक्षेपीकरण का आश्रय लिया । बुद्ध जन्म दिखाने के लिए हाथी को कमल पकड़ा दिया या केवल कमल दिखा दिया; हिरण की उपस्थिति द्वारा मृगदाव का प्रदर्शन कर दिया और चक्र द्वारा धर्मचक्र प्रवर्तन प्रस्तुत कर दिया । इसी प्रकार उन्होंने अश्वमुखी यक्षी से जातक कथा का संकेत कर दिया । (चित्र ६५)

भूवेदिका के अलंकरणों में समता नहीं है । इसके बिखरे दृश्यों में कोई तारतम्य भी नहीं है । यह समता और तारतम्य आगे चलकर अमरावती, नागार्जुनकोण्डा, गंधार आदि कलाकेन्द्रों में विकसित होते हैं । कुछ अच्छी हैं तो कुछ बेढंगी । कुछेक इतनी कलात्मक और विकसित हैं कि गुप्तकला के वैभव का स्मरण दिलाती हैं । कारण यह है कि अलग-अलग खण्ड विभिन्न श्रद्धालु व्यक्तियों के दान हैं और वे विभिन्न युगों की कृतियाँ हैं ।

स्तूप २ की भूवेदिका में ८५ स्तम्भ हैं । इन पर १५२ सम्पूर्ण फुल्ले, ३०३ अर्द्धफुल्ले तथा ५१ दृश्य उकेरे गये हैं । वेदिका के प्राचीनतम अंगों पर कमल का अलंकरण है । इसके केवल १० स्तम्भों पर दृश्य हैं । बाद में स्तम्भों के बाहरी भाग पर कमल आया । अपने विकास के तीसरे चरण में यह स्तम्भों के बाहरी भाग पर ही बनता रहा । लगभग ३०० फुल्लों में कमल विद्यमान है । १२६ अन्य फुल्लों में यह किसी-न-किसी रूप में प्रयुक्त है । केवल ३६ फुल्लों में इसका स्थान नए अलंकरण ने लिया है । फुल्लों वाले स्तम्भ पहले बने हैं और दृश्यों वाले स्तम्भ बाद में । ये दृश्य स्तम्भों के क्रम से इस प्रकार हैं—(१) यक्षी या वृक्षिका (२) बुद्ध-जन्म के बाद माया का स्नान, राजा शुद्धोदन और रानी महाप्रजापति, हाथी द्वारा अपराधी की मृत्यु (३) धर्मचक्र प्रवर्तन, दानपति अथवा उपासकगण (४) सम्बोधि (५) श्रावस्ती-चमत्कार, बोधिवृक्ष की पूजा, जल-क्रीड़ा (६) धर्मचक्र प्रवर्तन (७) सम्बोधि, उपासक, हंसों के जोड़े (८) एक जोद्धा ढाल और तलवार लिए सिंह पर आक्रमण कर रहा है (चि० ६३) । (९) अश्वमुखी यक्षी बोधिसत्त्व को लिए आम तोड़ कर लौट रही है[1] (चित्र ६५) । (१०) शिकारी शेरनी को मारकर उसका बच्चा लिए जा रहा है (चित्र ६२) ।

धार्मिक पक्ष में धर्मचक्र पहले आता है । यह त्रिरत्न पर टिका है । त्रिरत्न चौकी पर टिका है । चौकी को दो यक्ष थामें हैं । स्तम्भ के सिंह-शीर्ष या गजशीर्ष पर भी चक्र टिका है । यह कहीं-कहीं फुल्लों के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है । एक स्थान में यह चार चक्रों या पाँच त्रिरत्नों वाला है । कहीं-कहीं इसका आकार दोहरा है ।

कमल तो अनेक प्रकार से सामने आता है । इसकी नाभि से मूर्ति का चेहरा झाँकता है ।[2]

---

१. राउज, दि जातक, (भाग २), पृ० २६८—३०६ ।

२. देखिए, शिवराममूर्ति वही; पृ० ४ ।

कहीं इस पर चलता हुआ हाथी अंकित है। कहीं यह कलश में से प्रस्फुटित होता या इसकी जड़ों को हाथी सूँड़ से जकड़ता है। कहीं कलियाँ खिली हैं। दोने के समान पत्ते लहराते हैं। कहीं आमों पर पक्षी चोंच मारते हैं। हंस कलियों पर बैठे हैं। कहीं-कहीं कमल घूमता हुआ चक्र या गोल नाभि वाला बड़ा थाल बन जाता है।

पशुओं में हाथी का अधिक प्रयोग हुआ है। एक स्थान पर यह अपनी सूँड़ में पानी भरकर पीठ पर उंड़ेलता है। सूँड़ से पहले तेज धाराएं निकलती हैं, तत्पश्चात् ये धाराएं कण-बिन्दुओं में बिखर कर बरसती हैं (चित्र ५६)। अन्यत्र सिंह अपने झोंके से हाथी को बैठा देता है। एक दृश्य में हाथी का शरीर लकड़ी के खिलौने जैसा कमजोर लगता है। अन्यत्र यह फुर्तीला-बलशाली है। इस पर हौदा कसा है और सवारियां बैठी हैं। एक दृश्य में महावत ऐसे हाथी पर बैठा है, जिसके एक सिर, चार पैर किन्तु तीन शरीर हैं (चित्र ६०)। अन्य एक दृश्य में महावत हाथी को खपरैलों वाले द्वार से निकाल रहा है (चिन ६१)।

सिंह भी कलाकार का प्रिय विषय रहा है। कई स्थानों पर सिंह-शीर्ष का प्रदर्शन है। एक स्थान पर शेरनी के पीछे उसका बच्चा लिए हुए शिकारी खड़ा है (चित्र ६२)। अनेक स्थानों में सपक्ष शार्दूल हैं। एक दृश्य में जूते, मोजे, ऊँचा घांघरा और नोकदार टोपी पहने, बाएं हाथ में ढ़ाल और दाएं हाथ में कटार लिए एक योद्धा सिंह से भिड़ रहा है (चित्र ६३)। यह दृश्य परसी पोलिस के लोक प्रिय दृश्यों का स्मरण दिलाता है। सिंह हिरण को मुँह में दबाए है या इसका शरीर घोड़े का है और गर्दन और मुँह के स्थान पर यक्ष रूपी मानव है।

घोड़े की पीठ पर महिला बैठी है, या घोड़े पर जीन और कलंगी कसी है तथा सवार बैठा है या इसका शरीर घोड़े का है। लेकिन गर्दन और मुंह के स्थान पर पक्षी और पीठ पर आदमी बैठा है। कई अश्वारोही अपने पैर रकाबों पर टिकाए हैं। सर जॉन मार्शल का कहना है कि रकाबों के ये उदाहरण विश्व में सबसे प्राचीन हैं[1]।

अन्य पशुओं में हिरण, दरियाई घोड़ा, बैल, महिष, हाथी के सिरवाला हिरण आदि उपलब्ध हैं।

पक्षियों में नाचते मोर और मोरनी (चित्र ६७), हंस, सारस आदि प्रमुख हैं।

अन्य दृश्यों में मानव रूपी नाग के दोनों ओर कुण्डलियों की दो-दो श्रेणियाँ हैं। (चित्र ६४) या कुण्डली मारे या लहरिया लेता हुआ पांच फणों वाला नाग है।

कई फुल्लों में मछली की पूंछ वाला ईहामृग है। जैसे मृगमत्स्य, शार्दूलमत्स्य, गजमत्स्य, मकरमत्स्य आदि।

वृक्ष का आलिंगन करती शालभंजिका, डलियानुमा मोढ़े (**वेत्रासन**)[2] पर बैठा मानव, दम्पत्ति तथा बोधिसत्त्व को लिए अश्वमुखी यक्षी के दृश्य भी उल्लेखनीय हैं।

वेदिका के अन्दर खड़ा हुआ छत्रयुक्त बोधिवृक्ष है। एक दृश्य (चित्र ६६) में महामाया चैत्य-द्वार के भीतर और नीचे कमल पर खड़ी हैं। चैत्य-द्वार की शैली और महामाया की सुघर

---

१. मार्शल—"ए गाइड टू साँची"; पृ० १५२, फुटनोट ३; अग्रवाल, हर्षचरित, १९५३, पटना, पृ० २३, फुटनोट १ में मथुरा से प्राप्त शुंगकालीन सूची पट्ट पर रकाब में पैर डाले घुड़सवार महिला का उल्लेख है।

२. त्रिवेदि, दी जर्नल आफ दि न्यूमिस्मैटिक सोसायटी, खण्ड २३, पृ० २७८।

मांसल देह दर्शनीय है। लगता है, ये उभारदार समुन्नत दृश्य कभी बाद में उकेरे गए हैं। दो पत्नियों समेत राजा दृश्य में हैं। रथ एवं हाथी का समारोह इसके नीचे प्रदर्शित है। एक स्थान पर स्तूप के सम्मुख भाग में श्रीवत्सों का प्रदर्शन है।

भूवेदिका के अधिकांश अलंकरणों में मूर्तियाँ, बेल-बूटे, पौधे आदि सभी एक दूसरे के अगल-बगल प्रस्तुत किये गये हैं। बहुधा एक अलंकरण दूसरे अलंकण के पीछे नहीं दिखाया गया; किन्तु कुछ ऐसे उदाहरण हैं जो अग्रभूमि, भूमि, पृष्ठभूमि तथा क्षितिज के सिद्धान्त पर बने हैं। एक दृश्य जहाँ मनुष्य शेरनी के पीछे खड़ा है, अग्रभूमि और भूमिका का परिचायक है। अन्य दृश्य में अग्रभूमि में रथ का पहला घोड़ा, भूमि में दूसरा घोड़ा तथा पृष्ठभूमि में हाथी प्रस्तुत है। एक और दृश्य (चित्र ६७) में कलाकार ने नृश्यरत मोर का दायां पंख अग्रभूमि में, शरीर भूमि में, बायां पख पृष्ठभूमि में और नाचते हुए पंख क्षितिज में दिखाये हैं, किन्तु इस प्रकार के दृश्य बहुत कम हैं। स्तूप १ के तोरण-द्वारों में यह पद्धति अपनी चरम सीमा पर पहुँचती है। स्पष्ट है कि कलाकार ने निरन्तर प्रयास करने के उपरान्त अग्रभूमि, भूमि, पृष्ठ-भूमि एवं क्षितिज की पद्धति प्रतिपादित किया होगा।

सातवाहन काल

स्तूप १ के तोरण-द्वार एक-दूसरे से सुसम्बद्ध हैं। उन्हें ऐसे अनूठे ढंग से उकेरा गया है कि अंधेरे-उजाले के समन्वय में उनका सम्पूर्ण सौंदर्य झलक जाता है।

उनकी कला में सृष्टि का यथार्थ रूप सामने आता है। लगता है कि कलाकारों ने प्रकृति और पुरुष के रूप को बारीकी से जाँचा-परखा है और छेनी में उतार लिया है। पेंड़-पौधों एवं पत्र लताओं के अलंकरणों का प्रयोग इन तोरणों में अधिक किया गया है। साथ ही मनुष्य और पशु-पक्षी भी इस अलंकरण के अंग वन गये हैं। सारा प्रकृति-जगत् मानव और पशु-पक्षियों का क्रीड़ा-स्थल बन बन गया है। अपनी भाव भंगिमा में वे प्रकृति के साथ एकाकार हो गये हैं और घोषित कर रहे हैं कि प्रकृति के बिना मानव-पशु-पक्षी अपूर्ण हैं, एवं मानव और पशु-पक्षियों के बिना प्रकृति एकांगी है। दोनों वस्तुतः एक दूसरे के पूरक हैं, पर्याय हैं।

अलंकरणों को सतह से ऊपर उभारा गया है। उनके मूल में कल्प-वृक्ष की भावना है। यह वृक्ष मालाओं, वस्त्रों, रत्नों, ध्वजाओं से सजा होता है। कभी यह यक्ष की नाभि से निकलता है; तो कभी मकर या हाथी के मुख से। कल्प-वृक्ष अभिप्राय की कल्पना बुद्ध के पहले से ही विद्यमान थी। सिन्धु-सभ्यता में अश्वत्स्थ अपने वृक्ष देवताओं के साथ उपस्थित हैं। बुद्ध के समय में इसकी महिमा और बढ़ गयी कमल अमरता और जीवन-तत्त्व का प्रतीक माना गया। बुद्ध के लिए यह दिव्य जन्म और अलौकिक तत्त्व का स्रोत बना।[1] इसमें गंभीरता एवं विकसित जीवन का सुन्दर समन्वय है, तारतम्य है। सभी दृश्यों के मूल में मानवता के कल्याण की सतत एवं शांति-भावना का सम्पुट है। यही तत्त्व सम्पूर्ण शिल्प को एक धारा में पिरोये हैं और दर्शक के मन में एक सूत्रता का भाव जागृत करता है।

---

१. मार्शल-फूशे, वही, भाग १, पृ० १४२—४३।

साँची, अमरावती और नागार्जुनकोण्डा के शिल्प में कल्पना, अलंकरण और जीवन-तत्व के गुण समान रूप से विद्यमान हैं। यह कहना उचित ही है कि साँची के शिल्प के बाद अमरावती में शिल्प का उदय हुआ। उसका स्रोत इन तोरणद्वारों के शिल्प में निहित है (फर्गुसन, वही पृ० ७७)। कलाकारों ने अपनी सूझ-बूझ से उसे नया रूप दिया। अमरावती के शिल्प पर गंधार और मथुरा का भी प्रभाव है। किन्तु साँची के शिल्प के शांत वातावरण का नागार्जुनकोण्डा—अमरावती के शिल्प में प्रायः अभाव है। अमरावती का शिल्प राजाओं के दरबारी जीवन और नागरिक जीवन का समन्वय है। अनेक मूर्तियों को यह भावुक अवस्था में प्रस्तुत करता है। एक ओर बुद्ध के त्याग, तप, करुणा और अहिंसा का संदेश मिलता है तो दूसरी ओर मिथुनों के हाव-भाव दर्शक को खींचते हैं। यद्यपि अमरावती का शिल्प चित्रण और तारतम्य में साँची के शिल्प से आगे बढ़ गया है। किन्तु उसमें मूल उद्वेग की भावना की कमी है। इक्ष्वाकु, राजाओं के समय में अमरावती—नागार्जुनकोण्डा के मिथुनों में सौंदर्य और लालित्य का इतना उभार आ गया कि उससे घबराकर जनता को गुप्तकाल में फिर अध्यात्मतत्त्व की शरण लेनी पड़ी।

अजंता के चित्रों और साँची के शिल्प में काफी सामंजस्य है। अजंता के चित्रों में सौंदर्य भरपूर है, किन्तु अमरावती के शिल्प की भाँति उनमें शरीर का उभार और प्रदर्शन नहीं है। साँची में बुद्ध के यथार्थ जीवन को प्रतीकों द्वारा प्रस्तुत किया गया है; किन्तु अजंता ने मूर्तरूप देकर उन्हें अलौकिक धर्मशास्त्र मान लिया। अस्तु, बोधिसत्त्व-भावना को नया जन्म मिला, जिसने करुणा का अजस्र स्रोत बहाया। अजंता ने शरीर और आत्मा को मिलाने का प्रयत्न किया। आध्यात्मिक प्राण फूंके एवं सौंदर्य और आध्यात्मिक तत्त्वों को परस्पर समन्वित किया।

तोरणों पर आमोद-प्रमोद के कुछ दृश्य बुद्ध-दर्शन, धर्म और परम्परा के प्रतिकूल लगते हैं (चित्र २८)। वस्तुतः इनमें क्षणभंगुर संसार का दिग्दर्शन है। सांसारिक सुख को क्षणिक और अन्ततः दुःखपूर्ण समझ लेने पर ही अन्तर की आँख खुलेगी, ज्ञान का उदय होगा, ऐसा बुद्ध का दृढ़मत था। भव (असत्य) को पार कर निर्वाण (सत्य) के दर्शन के लिए मानव को प्रयत्नशील रहना है; अनित्य को त्यागकर नित्य की शरण लेनी है। इसलिए ये आमोद-प्रमोद के दृश्य तोरणों पर यदा-कदा अंकित किये गये। जो व्यक्ति नश्वर जगत् को पहचान गया, वही श्रद्धा और लगन से निर्वाण-मुक्ति की ओर अग्रसर हो गया।

अशोक के दो सौ वर्ष बाद बौद्ध धर्म में कई परिवर्तन हुए। आरम्भिक बौद्ध दर्शन में दुःख, कष्ट तथा अज्ञान के निवारण का जो सात्त्विक मार्ग दिखाया गया था उसमें अधिकांशतः शिक्षित वर्ग की ही पैठ थी। विश्व के कोने-कोने तक बुद्ध का संदेश पहुंचाने के लिए यह आवश्यक था कि सात्त्विक विचारों के साथ-साथ, भक्तिभाव, अलौकिकता और जनविश्वास का भी धर्म में समावेश हो।

साँची की कला सर्वग्राही सिद्ध हुई। इसमें हिन्दू देवी-देवता, यक्ष-यक्षी, वृक्ष-देवता, लक्ष्मी, इन्द्र, ब्रह्मा, नाग-नागी, किन्नर, गन्धर्व, ब्राह्मण आदि सभी सम्मिलित किये गये। काल्पनिक जीव-जन्तुओं का प्रयोग भी खूब हुआ। इस कला ने अपने धार्मिक तत्त्व में लोकतत्त्व को अपना कर एक नया मोड़ ले लिया। इसके निर्माण में विदिशा और उज्जियिनी के धनिक वर्गों, राजाओं, भिक्षु-भिक्षुणियों, दन्तकारों, रथकारों, शिल्पियों एवं उपासकों ने अपना योगदान समय-समय पर दिया। शिल्पियों ने प्रचलित सिद्धान्तों, मान्यताओं तथा परम्परागत शिक्षाओं के आधार पर

सम्पूर्ण शिल्प का निर्माण किया । उन्होंने धर्मगत सीमाओं और बन्धनों की अधिक परवाह नहीं की। अपनी लगन, श्रद्धा एवं उत्साह के बल पर सच्ची आस्था के साथ विश्व को बुद्ध का संदेश पहुंचाया । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए धर्म को ही बलि देनी पड़ी और जनता तक पहुंचाने एवं लोकप्रिय होने के लिए शिल्प और लोक परम्परा में समन्वय लाना पड़ा । शिल्प के माध्यम से धर्म का प्रचार जितना सम्भव था, वह उस समय शिक्षा या दूसरे माध्यम से उतना सुगम न था ।

बुद्ध के समय से अस्थियों के लिए स्तूप का निर्माण प्रारम्भ हो गया था और पूजा-अर्चना के साथ-साथ जनता ने स्तूप को सर्वांग सुन्दर बनाना चाहा; क्योंकि स्तूप साक्षात् बुद्ध का प्रतीक था ।

स्तूप-निर्माण की वृद्धि के साथ-साथ लोग धीरे-धीरे मूल धर्म की अवहेलना करने लगे । जैन-धर्म में भी वही क्रम चल रहा था । तब जनता को धर्म की ओर उन्मुख कराने के लिये मूल धर्म की पुनीत गाथाओं को स्तूप के शरीर पर उकेरा गया । इस प्रकार धर्म जानने वाले शिक्षित वर्ग और भक्ति एवं श्रद्धा का सहारा लेने वाले उपासक-उपासिकाओं के बीच समझौता हो गया ।

स्तूप २ की कला में पाश्चात्य कला का प्रभाव अधिक नहीं मिला । कुछ उदाहरण जैसे शार्दूल, मनुष्यों के सिर वाले सिंह आदि पश्चिमेशियाई प्रतीक उपलब्ध हैं । तोरण-द्वारों की कला अधिकांशत: भारतीय है । यत्र-तत्र पश्चिमेशियाई प्रतीकों और मान्यताओं की उपलब्धि होती है और उन्हें देखकर पूर्व-पश्चिम के आदान-प्रदान का स्पष्ट संकेत मिलता है । पूर्वी तोरण-द्वार के उत्तरी स्तम्भ की यक्षी, पश्चिमी तोरण-द्वार के दक्षिणी स्तम्भ का यवन सैनिक वेशी द्वारपाल-यक्ष, उत्तरी तोरण-द्वार के पश्चिमी स्तम्भ के मल्लगण इस तथ्य के सर्वोपरि उदाहरण हैं ।

लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि इन थोड़े से प्रतीकों और अभिप्रायों से यवन या अन्य विदेशी कलाकारों का दूसरी या पहली शती ई०पू० में बड़ी संख्या में आगमन सिद्ध होता है । वास्तव में विदेशी कलाकारों का प्रभाव विशेषकर कमल-शीर्ष सपक्ष शार्दूल आदि अशोक के समय से ही भारतीय कला में स्थान पाते आ रहे थे । हाँ, यह अवश्य है कि ई०पू० दूसरी शती में शुंगराजा भागभद्र की राजधानी विदिशा में तक्षशिला के यवन राजा अन्तलिखित का राजदूत हेलियोदोर आया था । उसके साथ कुछ शिल्पी एवं कलाकार साँची अवश्य आये होंगे और कला का आदान-प्रदान यवनों और भारतीयों के बीच हुआ होगा । उदाहरणार्थ, तोरणों पर बने पशुओं पर सवार व्यक्ति अपनी विशेष वेश-भूषा के कारण विदेशी लगते हैं । चीन-चोलक, कूर्पासक, मोजे (संस्थान = सुथना), कुलह-टोपी, कप्फुस जूते, चोगे आदि पहने हुए बहुत-सी मूर्तियाँ भी भारतीय हैं ।

विदिशा के दन्तकारों ने दक्षिणी तोरण-द्वार के पश्चिमी स्तम्भ का निर्माण किया था । इसका अर्थ यह नहीं कि ये केवल बौद्ध स्थलों के लिए ही कार्य करते थे । वे अन्य धर्मावलम्बियों के लिए भी कार्य करते थे । उदाहरणार्थ, एलोरा के ब्राह्मण, बौद्ध, और जैन विहारों एवं मूर्तियों के शिल्पी सम्भवत: एक ही शिल्प-संस्थान के थे ।

कुषाण काल : स्तूप ३ की हर्मिका तथा भूवेदिका पर फुल्ले और अर्द्धफुल्ले बने हैं । समकालीन तोरण-द्वार (चित्र २९) के सम्मुख भाग के मध्यवर्ती सिरदल पर केवल पाँच मानुषी बुद्धों के वृक्ष हैं । इस काल के बाद मानुषी बुद्धों का शिल्प में प्रदर्शन प्राय: बन्द हो गया ।

निचले सिरदल पर इन्द्र का स्वर्ग और किनारों पर दो नागराज प्रदर्शित हैं । स्तम्भों के यक्षों से ऊपर योद्धा एक ऐसे मकर से लड़ रहा है जिसका शरीर नागों के शरीर से उलझा है । ऊपरी सिरदल के सम्मुख भाग (चित्र ११) का अलंकरण कुछ-कुछ दक्षिणी तोरण-द्वार के ऊपरी सिरदल (चित्र ३६) के अलंकरण जैसा है । इसमें कुम्भाण्ड-यक्ष हाथों में कमल पकड़े है । बिचले सिरदल के मध्य में स्तूप और अगल-बगल बोधिवृक्ष प्रदर्शित हैं, जो मानुषी बुद्धों की उपस्थिति के परिचायक हैं । इन वृक्षों में से एक आम का है । एक कोने में खजूर का बड़ा सा पंख लिए परिचारिका खड़ी है । बीच के स्तूप के अगल-बगल मालायें लिये दो आकाशचारी विद्याधर हैं । बोधिवृक्ष के पास रखी हुई डलिया से उपासक माला उठा रहा है । नीचे के सिरदल पर इन्द्र दायें हाथ में वज्र लिए अपने भवन वैजंयत प्रासाद में विद्यमान हैं । प्रासाद के दोनों ओर वृक्षों, गुफाओं, सिंहों, मोरों और यक्षियों समेत चट्टाने दिखायी गयी हैं । मेरु पर्वत पर नन्दनवन का यह दृश्य है । प्रासाद के दाईं ओर बैठी अश्वमुखी यक्षी एक भागते हुए पुरुष को जबरन रोक रही है ।[१] इस दृश्य के ऊपर धनुष और बाण लिये एक वनवासी है । बाईं ओर हारीती और पांचिक विद्यमान हैं ।[२] नागराजों के प्रदर्शन से दृश्य में संतुलन आ गया है । नागी नागराज के दायें बैठी है । परिचारिका उनके बाएं खड़ी है । झील में मछलियाँ शंख, कच्छप और मकर दिखाई देते हैं ।

स्तूप ३ के तोरण के सिरदलों के छोरों पर स्तूप १ के दक्षिणी एवं उत्तरी तोरण-द्वारों के दृश्य लिए गये हैं । सिरदलों के बीच का अलंकरण उनके छोरों तक कहीं पहुँचता है, कहीं नहीं पहुँचता है । यह पद्धति नई है । स्तूप १ के पूर्वी और पश्चिमी तोरण-द्वारों के शार्दूल, दक्षिणी और पश्चिमी तोरण-द्वारों के हाथी और उत्तरी तथा पूर्वी तोरण-द्वारों के सवारियों वाले सिंह भी यहाँ उतारे गये हैं । लगता है कि कुषाणकाल में शिल्पियों ने नए-नए विषय एवं अलंकरण प्रस्तुत करना छोड़ दिया था और प्रतिकृतियाँ तैयार करने लगे थे । पश्चिमी स्तम्भ के पृष्ठ भाग के निचले दृश्य में हारीती और पांचिक का परिवार है (चित्र ६९) । पांचिक के बाएं हाथ में धन की थैली है । हारीती यक्षी अपने एक बालक को दूध पिला रही है । एक अन्य बालक चलना सीख रहा है और पिता के घुटने पर चढ़ने का प्रयत्न कर रहा है । परिवार के पीछे अन्य सदस्य, परिचारिका, चार संगीतज्ञ और नर्तकी विद्यमान हैं । पांचिक की तीन मूर्तियाँ विहार-मन्दिर ४५ में भी हैं । लम्बोदर एवं दीर्घकाय आसीनस्थ पांचिक के दाएं हाथ में थैली और बायें हाथ में नींबू है । इसीलिए उन्हें जंभल कहा गया है । संग्रहालय में भी जंभल (चित्र ५७) की दो मूर्तियाँ हैं । कुबेर की मूर्ति-परम्परा में महायक्ष सेनापति पांचिक का नाम आता है ।

तोरण-द्वार के सम्मुख भाग के दोनों स्तम्भों पर कई मूर्तियाँ हाथ जोड़े खड़ी हैं । संभवत: ऊपर से शुद्धावास देवताओं का लोक, तृष्णा में फँसे कामावचर देवताओं और कामधातु के छ: तले स्वर्ग प्रदर्शित हैं ।[३]

---

१. राउज, दि जातक (भाग २), पृ २९८—३०६ (पदकुशल माणव जातक) ।

२. हारीती को प्रमुख यक्षियों और पांचिक को प्रमुख यक्षों में माना गया है । वैद्य, दिव्यावदान, पृ० २९० में पांचिक महायक्ष-सेनापति का उल्लेख है ।

३. मार्शल-फूशे, वही, भाग १, पृ० २२७—२८ ।

साँची के शिल्प में नाग-नागी मूर्तियों का समावेश ई० पू० दूसरी शती से हुआ है । उनकी उपस्थिति मुचलिंद, मणिनाग एरापत्र या रामग्राम के रक्षक नागराजाओं के रूप में है । कुषाण-काल से गुप्तकाल तक नागों की पाँच विशाल मूर्तियाँ मिली हैं । तीन नागमूर्तियाँ फणों वाली हैं । इनमें से दो संग्रहालय में हैं तथा तीसरी मूर्ति नागौरी पहाड़ी पर स्थापित है । (मार्शल-फूशे, वही, भाग २, फलक १२४ सी) इसके पास ही खण्डित नागी-मूर्ति है । पाँच फण वाली गुप्तकालीन नागी-मूर्ति मंदिर ३१ के सामने दाईं ओर चबूतरे के सहारे खड़ी है । अधिकांश मूर्तियां शिलापट्टों पर बनी हैं । खड़ी बुद्ध-मूर्ति के चरणों समेत एक चौकी मिली है (सं० २७८५) । इस पर ई० दूसरी शती का अभिलेख है । चौकी पर बनी हुई मूर्तियाँ विदेशी आक्रमण-कारियों का पहिनावा लिए हैं, जैसे :—बूट, मोजे, पेटीदार चीन-चोलक और चोगें आदि । मथुरा के एक अन्य मूर्ति-खण्ड पर खड़े हुए बोधिसत्त्व मैत्रेय के चरण बने हैं । इन चरणों को गंधार की मूर्तियों की तरह चप्पल पहिनाये गये हैं । (मार्शल-फूशे, वही, भाग ३, फलक १२४ डी) । मैत्रेय के बाएं हाथ में जल-कुण्डिका है ।

गुप्तकाल

चौथी शती में गुप्त-साम्राज्य मालव में स्थापित था । यही समय था जब शकों-हूणों ने मालव और आस-पास के इलाके अपने अधिकार में कर लिया था । किंतु उन्हें गुप्त राजाओं ने भगा दिया । इसलिए उस प्रदेश में शांति थी तथा कला एवं संस्कृति उन्नति पर थीं । इसी शती में स्तूप १ के चारों प्रवेश-द्वारों के सामने मेधी की नींव से सटाकर चार बुद्ध-मूर्तियाँ (चित्र ७०) प्रदक्षिणापथ में स्थापित की गयीं । पहले इनमें से प्रत्येक मूर्ति चार स्तम्भों पर टिकी छतों के नीचे बैठी थी । मालव के गुप्त मंदिरों के विकास में यह व्यवस्था प्रथम चरण है । इसलिए इन मूर्तियों में मथुरा और सारनाथ की तत्कालीन समुन्नत गुप्त शैली का अभाव है । इन मूर्तियों का प्रभामण्डल वेदिकाओं के कमल-फुल्लों का विकसित रूप है । शिल्पकार ने इनके मुख पर योगाभ्यास की झलक लाने का प्रयास किया है, जैसा कि पूर्वी मूर्ति के मुख से स्पष्ट है । इनको ध्यानी बुद्ध माना गया है (मार्शल-फूशे, वही, भाग १, पृ० ३८) । चारों मूर्तियाँ ध्यानमुद्रा में बैठी हैं । उनके दाएं-बाएं चामरधारी बोधिसत्व खड़े हैं । पूर्वी मूर्ति (चित्र ७०) के बाईं ओर वाले चामरधारी के बाएं हाथ में वज्र देख पड़ता है और दक्षिणी मूर्ति के बाईं ओर खड़ी मूर्ति का मुकुट इन्द्र के मुकुट जैसा लगता है । प्रभामण्डल के दोनों ओर आकाशचारी विद्याधर हैं । प्रभामण्डल के अलंकरण में कुछ-कुछ भिन्नता है । उदाहरणार्थ, पश्चिमी मूर्ति के प्रभामण्डल पर हस्तिनख कढ़े हैं । पूर्वी मूर्ति के प्रभामण्डल पर सिंघाड़े तथा उत्तरी मूर्ति के प्रभामण्डल पर त्रिरत्न तथा दक्षिणी मूर्ति के प्रभामण्डल पर कमल की पंखुड़ियाँ बनी हुई हैं । पूर्वी, उत्तरी तथा दक्षिणी प्रभामण्डलों पर कमल-पत्रावली के तीन वृत्त हैं; किंतु पश्चिमी मूर्ति के प्रभामण्डल पर हस्तिनखों के बाद कमल की एकहरी पंखुड़िया लगी हैं । बुद्ध-मूर्तियों के शरीरों में भी अंतर है । पूर्वी मूर्ति के कंधे अन्य तीनों मूर्तियों की अपेक्षा अधिक उठे हुए और पुष्ट हैं । उत्तरी मूर्ति में ध्यानमुद्रा वाले हाथ नाभि तक उठ आये हैं । दक्षिणी मूर्ति की चौकी के नीचे एकहरी पंक्ति वाला कमल बुद्ध को अलौकिक पद प्रदान करता है । उत्तरी मूर्ति के प्रभामण्डल से ऊपर एक-एक फुल्लावली है । पश्चिमी मूर्ति में आकाशचारी विद्याधर प्रभामण्डल से अलग है; किंतु उत्तरी-पूर्वी दिशावाली मूर्तियों में विद्याधर प्रभामंडल के बाहरी भाग पर आ गये हैं । बुद्ध-मूर्ति के वक्ष और

गले पर गहरी सतरों द्वारा चीवर का आभास दिया गया है। मूर्ति की कलाइयों पर भी चीवर की चूड़ीदार धारी है। पूर्वी मूर्ति के पैरों के नीचे चीवर की सलवटें देख पड़ती हैं। अन्य मूर्तियों में इसका अभाव है। चारों मूर्तियाँ शिलापट्टों पर बनीं हैं। उत्तरी मूर्ति की चौकी पर उपासकों की तीन मूर्तियाँ भी हैं। पाँचवी शती के शूरकुल के अभिलेख में जालांगुलि से युक्त बुद्ध प्रतिमा का उल्लेख है। (मार्शल-फूशे, वही, भाग १, पृ० ३८७)।

गुप्तकालीन साँची में पहली बार बोधिसत्व अवलोकितेश्वर की मूर्तियाँ (चित्र ४८) सामने आयीं। ये विशालकाय मूर्तियाँ अपने त्रिभंग के कारण किसी अन्य मूर्ति के अगल-बगल खड़ी होने वाली लगती हैं। दोनों मूर्तियों में ध्यानी बुद्ध का अभाव है। उनके हाथ में कमल होने के कारण उन्हें पद्मपाणि कहा गया है। इस काल की मूर्तियों में चतुर्भुज विष्णु (सं० २५७२) का विशिष्ट स्थान है। विदिशा के पास की उदयगिरि की गुफाओं के शिल्प की यह मूर्ति सजीव प्रतिनिधि है। इसके चेहरे की जागरूकता, शरीर के प्रशस्त अंग, और शंख को बाएं हाथ की अंगुलियों से पकड़ने का ढंग अद्वितीय है। साँची में पायी गयी हिन्दू प्रतिमाओं में यह प्राचीनतम है।

कुषाणकाल में वज्रपाणि का आविर्भाव हुआ था। यक्ष वज्रपाणि को बोधिसत्व की संज्ञा दे दी गयी थी। साँची संग्रहालय के बोधिसत्व वज्रपाणि की मूर्ति (चित्र ६) गुप्तकालीन है। इसके दाएं हाथ में वज्र तथा बायाँ हाथ कटि प्रदेश पर टिका है। प्रभामण्डल के बहुत से छेदों में पहले धातु के प्रभामण्डल की सुनहरी पिनें लगी थीं। गुप्तकाल में वज्रयान के प्रादुर्भाव का यह प्रथम चरण है। अवलोकितेश्वर-मूर्ति का एक सिर (सं० ८३१) कुषाण और गुप्तकाल के बीच संधि का द्योतक है। इस पर ध्यानी बुद्ध अमिताभ वज्रावली के बीच में बैठे हैं। यह भी वज्रयान की उपस्थिति का दूसरा प्रमाण है।

सातवीं शती ई० में हर्ष तथा अन्य राजाओं ने मालव अपने अधिकार में रखा। इस समय की कई मूर्तियाँ बुद्ध की हैं। इन पर गुप्तकाल की छाप अवश्य है। लेकिन शिल्प की दृष्टि से ये निम्नस्तर की हैं। इन मूर्तियों की बनावट में भारीपन और भोंडापन है। साथ ही इनकी संघाटी की सलवटें भी मोटी और भोंडी हैं, जिसके कारण ये उत्तर गुप्तकाल में आती है। मन्दिर ३१ की बुद्ध मूर्ति अपने ढंग की अनोखी है।

इसमें संघाटी दाएं कंधे को छोड़ देती है और चौकी पर दो सिंह प्रगट होते हैं। इस प्रकार बुद्ध का सिंहासन प्रस्तुत होता है। विष्णु-मूर्ति (स० २५७२, चित्र ५४) में गुप्तकालीन कृतियों की लगभग सभी विशेषताएं दृष्टिगत हैं।

मध्यकाल

विहार-मंदिर ४५ की बुद्ध-मूर्ति (चित्र ४५) में भूस्पर्श मुद्रा प्रदर्शित हुई है। इसका प्रभामण्डल अण्डाकार है और बाएं वक्ष पर सघाटी में सलवटे पड़ी हैं। मकरमुख द्वारा प्रतीक प्रभामण्डल को पृष्ठ भाग से जोड़ा गया है।

मध्ययुग में भी साँची वज्रयान का केंद्र रहा होगा। इसका प्रमाण घण्टापाणि की मूर्ति (सं० २७७९, चित्र ५५) तथा अभिलेख ८४२ की वज्रपाणि-प्रतिमा से मिलता है। बोधिसत्व मंजुश्री (सं० २७७०, चित्र ५६) का आविर्भाव भी इसी युग में हुआ। साथ ही जम्भल, पांचिक,

हारीती आदि यक्ष-यक्षियों की मूर्तियाँ भी गढ़ी गयीं। पांचिक और हारीती स्तूप ३ के तोरण-द्वार पर पहले ही प्रस्तुत कर दिये गये थे।

बौद्ध-शक्तियाँ

ये लगभग दसवीं शती से साँची में आरम्भ हो गयी थीं—जैसे तारा-मण्डल (स० २८०२-२८०३) या चुंदातारा (सं० २६३८) तेरहवीं शती तक उनका प्रचलन रहा।

हिंदू देवी-देवताओं की मूर्तियों की सख्या भी मध्ययुग में ही बढ़ी यद्यपि इनका आविर्भाव बहुत पहले हो चुका था। शिव, इन्द्र, अग्नि, कुबेर, निॠति, वरुण, महिषमर्दिनी दुर्गा एवं गणेश की पूजा प्रचुर रूप में होने लगी। गुप्तकाल में हिंदू-धर्म का पुनरुत्थान हो गया था। उदयगिरि जैसे प्रसिद्धकला-केंद्र (चित्र ७१) के सामने साँची की समकालीन कला नहीं ठहर सकी। शंकराचार्य ने जब अपनी धर्म-दिग्विजय प्राप्त की तब बौद्ध-धर्म की नींव हिल गयी। दसवीं शती में तो बुद्ध को विष्णु का अवतार ही मान लिया गया और बौद्ध धर्म के लिए सिवाय इसके और कोई चारा न रहा कि वह हिंदू धर्म के विशाल समुद्र में समा कर अपना अस्तित्व खो बैठे।

सतीस्तम्भ : संग्रहालय के प्रांगण में दक्षिण की ओर चार उत्तरमध्यकालीन सती-स्मारक स्तम्भ खड़े हैं। इनका आकार चौकोर तथा खुरदरा है। उनका स्थिति में कोई तारतम्य नहीं है। उन पर चार आलों में बने दृश्य इस प्रकार हैं:—

१. शिवलिंग की पूजा करते हुए दम्पति।
२. लेटे हुए पति के पैर दबाती पत्नी।
३. प्रतिद्वंदी से लड़ता हुआ पति।
४. सूर्य और चन्द्र की उपस्थिति तक पत्नी के त्याग और लगन अक्षुण्ण रहेंगे।

एक स्तम्भ पर १२६४–६५ ई० का अभिलेख है। आलों के ऊपर कमल की कली के समान गुम्बद बने हैं।

साँची के आस-पास के स्तूप समूह[१]

(चित्र ७२) साँची से लगभग ८½ किलो मीटर दक्षिण-पश्चिम बेतवा और वैशाली नदियों के बीच एक पहाड़ी पर सोनारी के स्तूप, लगभग १० किलोमीटर पश्चिम बेसाली नदी के बाएं किनारे पर सतधारा के स्तूप, लगभग ११ किलोमीटर दक्षिण-पूर्व पिपलिया (भोजपुर) के स्तूप तथा भोजपुर से लगभग ६⅙ किलोमीटर दक्षिण आंधेर के स्तूप स्थित हैं (कनिंघम—**भिलसा टोप्स**, पृ० ५ चित्र सहित)। आजकल साँची के स्तूप समूह को छोड़कर अन्य स्तूप समूहों के दर्शन दुर्लभ हो गये हैं। ये स्तूप समूह जंगलों से फिर ढ़क गये हैं। अस्तु उन तक पहुँचना आसान नहीं है।

सोनारी के स्तूप : सोनारी का प्राचीन नाम सुवर्नगिरि, स्वर्णचक्र या धर्मचक्र था, जिसे बुद्ध ने लोक कल्याण के लिए प्रवर्तित किया था। ये स्तूप सोनारी गाँव से लगभग १½ किलोमीटर दक्षिण में एक पहाड़ी पर स्थित हैं।

---

१. इन स्तूपों का सम्पूर्ण वर्णन कनिंघम के ग्रन्थ "भिलसा टोप्स", पृ० १९९—२२६ से लिया गया है।

यहाँ का महास्तूप सोपानवाला है। इसका व्यास ४८ फुट है। इस पर उदयगिरि के सफेद पत्थर की हर्मिका थी। इसकी भूवेदिका लगभग समाप्त हो चुकी है। इसे दातओं ने बनवाया था। स्तूप में एक बड़ी पटिया के नीचे अस्थि-पात्रों का स्थान था, उसमें पाषाण की स्तूपाकार मंजूषा मिली। उसके भीतर एक कलश के आकार की डिबिया थी, जिसके अन्दर कलश के आकार की स्फटिक की एक खाली डिबिया मिली (चित्र २३)।

दोहरे सोपान वाले दूसरे स्तूप से पाषाण का अलंकृत कलश मिला। इसका ढक्कन लाख से जुड़ा था। कलश के अन्दर पाँच मजूषाएँ मिलीं। (चित्र २४) प्रत्येक मंजूषा पर आचार्य का नाम उत्कीर्ण था और उसमें उनकी अस्थियों के टुकड़े थे। आचार्यों के नाम इस प्रकार हैं:—गोतीपुत्र, कोडिनीपुत्र, मज्झिम, कोतीपुत्र काश्यपगोत्र, कोसिकीपुत्र तथा आलबगीर। इनमें से चार आचार्यों की अस्थियाँ साँची के स्तूप २ से भी प्राप्त हुई हैं।

सतधारा के स्तूप : वैशाला नदी के किनारे एक पहाड़ी पर प्राकृतिक सौंदर्य के बीच ये स्तूप खड़े हैं।

यहाँ महास्तूप ईंटों का बना था। इस पर बाहर से पाषाण लगे थे। इसकी हर्मिका के बीच में छत्रयष्टि थी।

दूसरे स्तूप से पाषाण की दो मंजूषायें मिली थीं; किन्तु उनमें अस्थियाँ नहीं थीं। एक के ढक्कन के भीतरी भाग पर "सारिपुतस" और दूसरे के ढक्कन पर "महामोगलानस" उत्कीर्ण था (चित्र २५), साँची के स्तूप ३ से ऐसी ही मंजूषाएँ मिली हैं।

सातवें स्तूप से मिट्टी के पात्र, उसके अन्दर मिट्टी का अन्य पात्र और उसके अन्दर दो छोटी मजूषाएं प्राप्त हुई थीं।

सतधारा के ग्रामीण लोग स्तूपों को "बुद्ध-बीठा" कहते हैं।

पिपलिया (भोजपुर) के स्तूप

यहाँ पहाड़ी के सबसे ऊँचे भाग पर कुछ स्तूप उत्तर-दक्षिण एक श्रेणी में खड़े हैं।

दूसरे स्तूप से मिट्टी का पात्र मिला था। उसके नीचे मिट्टी का छोटा स्तूपाकार पात्र मिला, जिसके ढक्कन की सफेद चूने की पर्त पर स्याही से अस्पष्ट अक्षर लिखे थे। इसमें से हड्डियों के टुकड़े, सोने के चार गोल पत्र तथा स्फटिक की सफेद-हरी गुरियाँ आदि प्राप्त हुई थीं।

चौथे स्तूप से मिट्टी के एक पात्र में ढक्कन समेत मिट्टी का कटोरा मिला। इस पर "मुनि" शब्द उत्कीर्ण था, जिसका अर्थ है शाक्यमुनि बुद्ध। कटोरे में स्फटिक की मंजूषा थी (चित्र २६)।

दूसरे भाग के स्तूपों में सातवें स्तूप से मिट्टी के पात्र में मिट्टी के दो अन्य पात्र मिले। बड़े पात्र पर "पतितो" अर्थात् किसी दण्डित भिक्षु की अस्थियाँ रहीं होंगीं। ऐसा अभिलेख और कहीं नहीं पाया गया। छोटी मंजूषाओं में से एक पर "उपहितकस" लिखा है (चित्र २७)। सम्भवत: यह स्तूप अशोककालीन है।

आठवें स्तूप के पास स्थित एक स्तूप से पाषाण का एक दोहरा कलश मिला, जिसमें मानव अस्थियाँ थीं।

दसवें स्तूप से मिट्टी के एक पात्र में अस्थि-खण्ड मिले।

ग्यारहवें स्तूप से मिट्टी के गोल घड़े में भी ऐसे ही अस्थिखण्ड प्राप्त हुए थे।

सत्रहवें स्तूप से मिट्टी के पात्रों में अस्थिखण्ड मिले।

आंधेर के स्तूप

ये स्तूप आंधेर गाँव से ३½ किलोमीटर दूर पहाड़ी पर स्थित हैं। यहाँ से विदिशा की लोहांगी पहाडी, सांची के स्तूप, उदयगिरि की पहाड़ी और ग्यारसपुर के आगे तक की पहाड़ियाँ देख पड़ती हैं।

पहले स्तूप की भूवेदिका ७ फुट ऊँची है। इसमें पश्चिम दिशा में एक तोरण-द्वार है। इसके एक स्तम्भ पर धर्मशिव की माता का दान अभिलिखित है। इसके एक भाग से पाषाण की गोल मंजूषा तथा दूसरे भाग से मिट्टी का कलश मिला था। इस कलश में एक और कलश था, जिसमें मिट्टी का कटोरा था। कटोरे के अन्दर मिट्टी का एक छोटा खाली कलश था।

आंधेर के दूसरे स्तूप से मिट्टी का बड़ा पात्र निकला था। इसमें मिट्टी की मंजूषा, पाषाण की ऊँची मंजूषा और मिट्टी का बड़ा कलश रखा मिला। मिट्टी की मंजूषा में गोतीपुत्र के शिष्य और वाच्छीपुत्र की अस्थियाँ मिलीं। वाच्छी की अस्थियाँ साँची के स्तूप २ से भी प्राप्त हुई हैं। ऊँची मंजूषा अलंकृत है। इसके ढक्कन पर कोडिनीवंश के काकनव प्रभासन के गोतीपुत्र का उल्लेख है। काकनव प्रभासन किसी आचार्य का नाम जान पड़ता है। किन्तु शुंगकालीन साँची का नाम भी काकनव था। मिट्टी के कलश के अभिलेख में गोतीपुत्र के अंतेवासी (शिष्य) मोगलिपुत्र का उल्लेख है। (चित्र २६)।

यहाँ के तीसरे स्तूप के अस्थि-स्थान में पाषाण का बना स्वस्तिक चिन्ह दृष्टिगत हुआ था। नागार्जुनकोण्डा के स्तूपों के नीचे ईंटों के बने बड़े आकार के स्वस्तिक-चिन्ह प्रकाश में आये हैं।[१] अस्थि-स्थान में मिट्टी के एक बड़े पात्र में भी पाषाण की ऊँची मंजूषा मिली जो स्तूप २ वाली मंजूषा के समान है। इसमें जले हुए अस्थि-खण्ड भरे पड़े थे, जो इसके अभिलेख के अनुसार हारीतीपुत्र के रहे होंगे। ढक्कन के भीतर "असदेवस दानं" स्याही से लिखा है (चित्र ३०)। स्पष्ट है कि अश्वदेव ने हारीतीपुत्र की अस्थियाँ आंधेर के भिक्षुओं को दान किया था। साँची के स्तूप २ से भी हारीतीपुत्र की अस्थियाँ प्राप्त हुई हैं। यहस्तूप भी अशोककालीन रहा होगा।

ऊपर की अस्थि-मंजूषाओं के अभिलेखों से विदित होता है कि मौर्य-शुंगकाल में कुछ ऐसे बौद्ध आचार्य हो गये हैं, जिनकी अस्थियाँ साँची और आस-पास के स्तूपों में सुरक्षित रखी गयीं। एक ही प्रकार के स्तूपों का ऐसा विस्तृत समूह और आचार्यों की इतनी अधिक संख्या में अस्थि-मंजूषाएँ भारतीय इतिहास में अत्यन्त महत्व की हैं। नागार्जुनकोण्डा और तक्षशिला जैसे बड़े बौद्ध केंद्रों ने भी बड़ी संख्या में अस्थि-मंजूषाएँ दी हैं; किंतु त्रिपिटकाचार्यों की ऐसी विशद आचार्य-परम्परा कहीं से भी प्राप्त नहीं हुई। और इस महान धार्मिक एवं सांस्कृतिक धरोहर के लिए मालव जनपद के पूर्वज कोटिशः धन्यवाद के पात्र हैं।

---

१. ऐश्यन्ट इण्डिया (१६), चित्र ४५, पृ० ७७—७८।

धार्मिक अवस्था

पालि-साहित्य से ज्ञात होता है कि जब बुद्ध कुशीनारा में महापरिनिर्वाण प्राप्त करने जा रहे थे तो आनन्द ने महापरिनिर्वाण के बाद उनके शरीर-धातुओं (**भगवती सरीरानि**) की पूजा-अर्चना करने का निश्चय किया। बुद्ध ने उनके निश्चय का दृढ़ता से खंडन किया[१] और समझाया कि तथागत का पार्थिव शरीर भी अनित्य और नाशवान् है।[२] केवल "**धम्म**" ही चिरंतन सत्य है। किन्तु जब कुशीनारा में दो महाशाल वृक्षों के बीच बुद्ध अपनी निर्वाण-शय्या पर लेटे तब उनकी अलौकिक विशेषताओं और दैवी व्यक्तित्व के कारण उनके शरीर पर चन्दन की लकड़ी का चूर्ण और मन्दार पुष्पों की वर्षा होने लगी तथा संगीत-वाद्य की ध्वनियाँ प्रसारित होने लगीं।[३] जब बुद्ध कालगत हो गये तो कुशीनारा के मल्लों ने उनके पार्थिव शरीर को गंध, पुष्प आदि से भलीभाँति पूजा।[४] दाह-क्रिया के पश्चात् शरीर-धातुओं के दस भाग किये गये (**विभक्तानि भगवतो सरीरानि**) और मगध के राजा अजातशत्रु, वैशाली के लिच्छवी, कपिलवस्तु के शाक्य, अल्लकप्प के बुली, रामग्राम के कोलिय, वेट्ठदीपक के ब्राह्मण, पेवय्यक के मल्ल कुशीनारा के मल्ल, ब्राह्मण द्रोण तथा पिप्पलिवन के मोरियों को क्रम से दिये गये।[५] कुशीनारा में बुद्ध पहले बता चुके थे कि उनके समान "**चक्कवत्ति**" के लिए किस प्रकार शरीर-स्तूपों का निर्माण और सत्कार किया जाय। शरीर-स्तूपों का निर्माण और सत्कार करने से श्रद्धालु व्यक्तियों को अतुल सुख-कल्याण एवं आध्यात्मिक उपलब्धियाँ मिलने की पूरी सम्भावना थी।[६] अस्तु छठीं शती ई० पू० में बुद्ध के शरीर-धातुओं के सत्कार[७] ने भविष्य के लिए परिपाटी स्थापित कर दी।

बौद्धस्तूप सर्वप्रथम राजगृह, वैशाली, कपिलवस्तु, रामग्राम, पावा, कुशीनारा, गंधारपुर तथा कलिंग आदि महत्वपूर्ण स्थानों में निर्मित हुए।[८]

---

१. काश्यप, **दीघनिकाय** (२), पृ० १०६, ३/२३/७७—"अब्यावटा तुम्हे, आनन्द, होथ तथागतस्स सरीरपूजाय।"

२. वही, पृ० १११, ३/२३/८०—"यं तं जातं भूतं संखतं पलोकधम्मं तं वत तथागतस्स पि सरीरं मा पलुज्जि ति नेतं ठानं विज्जति।"

३. वही, पृ० १०७, ३/२३/७१—"दिब्बानि पि मन्दारवपुप्फानि अंतलिक्खा पपतंति। दिब्बानि पि चन्दनचूण्णानि अंतलिक्खा पपतंति·········दिब्बानि पि तूरियानि अंतलिक्खे वज्जन्ति तथागतस्स पूजाय, दिब्बानि पि संगीतानि अंतलिक्खे वत्तन्ति तथागतस्स पूजाय।"

४. वही, पृ० १२२, ३/२४/१००—"अथ खो कोसिनारका मल्ला गंधमालं च सब्बं च·········भगवतो सरीरं नच्चेहि गीतेहि वादितेहि मालेहि गंधेहि सक्करोन्ता गरुं करोन्ता मानेन्ता पूजेन्ता चेलवितानानि करोन्ता मण्डलमाले पटियादेन्ता एकदिवसं वीतिनामेसुम्।"

५. वही, पृ० १२८, ३/२६/११५।

६. काश्यप, **दीघनिकाय** (२), पृ० १२४, ३/२४/१०३—"चातुमहापथे तथागतस्स थूपो कतब्बो। एत्थ ये मालं व गन्धं व चुण्णकं व आरोपेस्सन्ति व अभिवादेसन्ति व चित्तं व पसादेस्सन्ति तेसं तं भविस्सन्ति दीघरत्तं हिताय सुखायाति।"; वही, पृ० १२८, ३/२६/११२—"वित्थारिका होन्तु दिसासु थूप, बहुजन चक्खुमतो पसन्नाति।";

७. वही, पृ० १२८, ३/२६/११५—"भगवतो सरीरानानि थूपं च महं च अकंसु।"

८. वही, पृ० १२८—२९, ३/२६/११५—१६।

१८६८ में उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले में स्थित पिपरहवा-स्तूप[१] से एक बड़ी पाषाण-मंजूषा निकली। इसमें से धनुषाकार स्फटिक, मुलायम पाषाण-कलश, स्वर्णपुष्प तथा भस्मित अस्थियाँ प्राप्त हुई। पूर्णघट के आकार वाले एक कलश पर पाँचवीं शती ई० पू० की लिपि में बुद्ध के शरीर-धातुओं का उल्लेख करने वाला प्राचीनतम अभिलेख उत्कीर्ण मिला—"**सुकिति-भतिन सभगिनिकमं सपुतदलनमं। इयं सलिल-निधन बुधस भगवते सकियनम्।**[२] (अर्थात्, शाक्यजाति के भगवान् बुद्ध का यह शरीर-निधान सुकृति के भाइयों, बहिनों, पुत्रों और पत्नियों का दान है।) दूसरी शती ई० पू० के भट्टिप्रोलू वाले मंजूषा-अभिलेख[३] में पाषाण और स्फटिक की मंजूषा तथा समुद्गक में रखे बुद्ध के शरीर-धातुओं का उल्लेख है—"**कर पितुनो च कुर मातु च कुरष सिवष च मजुसं पणति फालिग षमुगं च बुध सरिराणां निखेतु॥ बनन गुलष कुरष षषीतुकष मजुष॥ उतरो पिगह पुतो काणीठो॥**" पहली शती ई० के रंजुवुल के राज्यकाल वाले मथुरा सिंह-शीर्षक-अभिलेख में भी बुद्ध के शरीर-धातुओं की प्रतिष्ठा का उल्लेख है।[४] महावंश में अस्थि-मंजूषाओं को धातुचंगोटक[५] धातुकरण्डक,[६] सुवर्णचंगोटक,[७] महाधातुनिधान[८] आदि कहा गया है। अमरकोश में अनेक नाम हैं : पिटक, पटेक, पेट, मंजूषा, समुद्गरु, और सम्पुटक।[९]

इन्डियन म्यूज़ियम, कलकत्ता में सुरक्षित भरहुत की वेदिकाओं के एक स्तम्भ पर "**वेदिसा-चापदेवाया खेतिमित-भारियाय पठमथमो दानम्**"[१०] उत्कीर्ण है। इसी पर भरहुत के स्तूप में प्रतिष्ठापित अस्थियों का दृष्य (सं० १०८) भी प्रदर्शित है। इसी स्तम्भ के दृश्य (सं० १८२) में बुद्ध के केश सिंहासन पर रखे हैं। चार श्रद्धालु उपासिकाएं नृत्य-संगीत द्वारा केशों का सत्कार करती हैं। दृश्य के नीचे "**भगवतो चूड़ामटो**" उत्कीर्ण है, जिसका तात्पर्य बुद्ध के परम पावन केशों की प्रतिष्ठा के उत्सव से है।[११]

सांची के स्तूर १ के तोरणद्वारों पर भी ऐसे ही दृश्य अंकित हैं। पश्चिमी तोरणद्वार के बिचले सिरदल के पृश्ठभाग पर सात छत्र हैं। ये छत्र उन राजाओं के हैं जो बुद्ध के शरीर-धातुओं में से अपना-अपना भाग लेने आए थे। कुशीनारा में मल्लों और आगन्तुक राजाओं के बीच होने

---

१. शिवराममूर्ति, **ए गाइड टू दि आर्केओलॉजिकल गैलरीज् आफ् दि इण्डियन म्यूज़ियम**, कलकत्ता १९५४, पृ० २७।
२. पाण्डेय, वही, पृ० १।
३. वही, पृ० ४५; **एपि० इन्डि० खण्ड** २, कलकत्ता, १८९४, पृ० ३२५—२९।
४. पाण्डेय, वही, पृ० ६८।
५. भगवत्, **महावंश**, द्वितीय संस्करण, बंबई, १९५७, पृ० ११८, १७/१२३१/२५।
६. वही, पृ० २०८, ३१/२१९४/२५।
७. वही; पृ० २०९, ३१/२२०८/३९।
८. वही, पृ० २०८, ३१/२१९०/२१।
९. शास्त्री, **अमरकोश**, द्वितीय संस्करण, बनारस, १९५७; पृ० २३६ पद २/६/१३९. पृ० ३६०, पद, २/१०/२९।
१०. मजूमदार, **ए गाइड टु दि स्कल्प्चर्स इन दि इंडियन म्यूज़ियम**, भाग १, पृ० २७—२८।
११. वही, पृ० ४४।

वाले युद्ध का दृश्य दक्षिणी द्वार के निचले सिरदल के पृष्ठभाग पर प्रस्तुत है, जहाँ हाथियों के सिरों पर अस्थि-मंजूषाएं रखी हैं। पश्चिमी तोरणद्वार के ऊपरी सिरदल के पृष्ठभाग में हाथी पर सवार कुशीनारा के मल्लों का मुखिया अपने सिर पर अस्थि-मंजूषा रखे लिए जा रहा है। दक्षिणी तोरणद्वार के पश्चिमी स्तम्भ के भीतरी भाग पर त्रायस्त्रिंश स्वर्ग में बोधिसत्व के चूड़ा-धातु के सत्कार का मनोरम दृश्य है।

मंजूषाओं का प्रयोग विभिन्न कार्यों के लिए होता था। नागार्जुनकोण्डा की मंजूषाएं अस्थियों, भस्मों या भदन्ताचार्यों की निजी वस्तुओं को सुरक्षित रखने के लिए थीं। ऐसी मंजूषाएं तक्षशिला, बामियान, चारसड, शाहजी की ढेरी, मीरपुरखास, कसिया, सारनाथ, वैशाली, सहेत-महेत, साँची, अमरावती, शालिहुंडम, भट्टिप्रोलू, घण्टशाला आदि बौद्धस्मारकों से बड़ी संख्या में उपलब्ध हुई हैं। भीटा और त्रिपुरी से प्राप्त मंजूषाएँ सम्भवतः प्रसाधन-सामग्री (काजल, चूर्ण, इत्र आदि) रखने के लिए थीं।

अपने १३वें राज्यवर्ष में सम्राट अशोक ने कलिंग-युद्ध किया। इस युद्ध में २,५०,००० व्यक्तियों के प्राण गये; १,५०,००० व्यक्ति पकड़े गये; १,००,००० मारे गये और उसका कई गुना मर गये।[१] जब ये आँकड़े उसके समक्ष रखे गये तो वह सहम गया (**अनुसोचनम्**)[२]। परिणामस्वरूप, तोसाली और समापा के धर्ममहामात्रों को सम्बोधित करके उसने अनेक धर्म-लिपियाँ लिखवायीं, जिनमें उसने सब मनुष्यों को अपनी प्रजा कहा (**सवे मुनिसे पजा ममा**)[३] और (दिग्विजय) के स्थान पर धम्मविजय की स्थापना की। (**भेरीघोसो अहो धंमघोसो**)।[४] धर्म-विजय की नीति से कालान्तर में साम्राज्य शिथिल तो होता गया; लेकिन जनलोक-कल्याण के भगीरथ प्रयास ने साम्राज्य की सीमाएं विदेशों तक पहुंचा दीं और उन देशों ने भारत के सर्व-हितकारी धर्म-संदेश को ग्रहण किया।

अशोक ने लोक-कल्याण का वृहत् संकल्प ले लिया और धर्म का सतत् अनुशीलन, प्रचार और धर्मशासन करने लगा (ततो पच अधुन लधेषु कलिगेषु तिव्रे ध्रमशिलन ध्रमकमत ध्रमनुशस्ति च देवनप्रियस)[५] शीघ्र ही वह बौद्ध बन गया और बौद्धधर्म के अधिष्ठाता के रूप में कार्य करने लगा। (विदिते वेभंते आवतके हमा वुधसि धमसि संघसी ति गालवे चं प्रसादे च)।[६] लेकिन वैदिक देवताओं-ब्राह्मणों का पक्ष उसने नहीं छोड़ा। अपने अधिकांश अभिलेखों में अपने-आपको उसने "देवानांपिय" कहा है। आजीविकों के लिए उसने बराबर की गुफाएं भी निर्मित करवायीं।

अपनी इसी विचारधारा के फलस्वरूप और अपनी रानी शाक्यकुमारी देवी के सतत आग्रह पर विदिशा के आसपास मनोरम प्राकृतिक स्थलों, वेदिसगिरि (साँची), भोजपुर-पिपरिया, आंधेर,

---

१. पाण्डेय, वही, पृ० १५—"………रमो कलिग विजित। दिअढमत्रे प्रणशतसहस्त्रे ये ततो अपवुढे शतसहस्रमत्रे तत्र हते बहुतवतके व मुटे।"

२. वही,

३. वही, पृ० १८।

४. वही, पृ० ८।

५. पाण्डेय, वही, पृ० १५।

६. वही, पृ० २३।

सोनारी तथा सतधारा में स्तूप, विहार स्तम्भ, चैत्य आदि खड़े करवा दिये और चातुर्दिशार्यभिक्षु-संघ का खुलकर पोषण किया। ऊपर कहा जा चुका है कि सांची में उसने ईंटों का एक स्तूप, शिलास्तम्भ तथा विहार निर्मित कराया। इस विहार का अभी तक समुचित अभिज्ञान नहीं हो सका है।

अशोक ने अपने समय के बिखरे हुए भिक्षुसंघ को एक सूत्र में लाने का महाप्रयास किया। महासांघिकों का प्रादुर्भाव हो चुका था। बुद्ध के महापरिनिर्वाण को लगभग ३०० वर्षों से ऊपर हो गए थे। भिक्षुगण बुद्धवचनों का मनमाना अर्थ लगाने लगे थे। चारों ओर धर्म के नाम पर भ्रमात्मक वातावरण फैला हुआ था। पाटलिपुत्र की तृतीय बौद्धसंगीति ने इस दूषित वातावरण को परिष्कृत किया और "धम्म" के समुज्ज्वल एवं प्रांजल रूप को विश्व के समक्ष रखा। "धम्म" एवं "स्थविरवाद" के साहित्य को एकत्र करके संपादित किया गया और "कथावत्थु" नामक अभिधर्मग्रंथ की रचना की गयी। इस ग्रंथ में बौद्धधर्म की अन्य शाखाओं के मत-मतान्तरों का विधिवत् खण्डन किया गया। संघभेद करने वाले मिथ्या भिक्षु-भिक्षुणियों को संघ से अलग कर दिया गया। अशोक ने सारनाथ, कोशाम्बी और सांची में संघभेद के बीजांकुर प्रबल होते देखकर इन स्थलों पर चेतावनी-भरे स्तम्भ-अभिलेख स्थापित किये। सांची के अभिलेख में उसने कहा कि जो भिक्षु-भिक्षुणी बौद्धसंघ में शाखाएं-प्रशाखाएं बनाने का प्रयास करेगा उसे श्वेत वस्त्र धारण करके संघ के बाहर (अनावास) रहने को बाध्य किया जायेगा। अर्थात् उसे फिर गृहस्थ बन जाना पड़ेगा। टूटे हुए संघ का पुनर्गठन किया गया है। जबतक अशोक के पुत्र-प्रपौत्र राज्य करते रहेंगे और चन्द्र-सूर्य प्रकाश देते रहेंगे तबतक संघ को संगठित रहते देखने की अशोक की प्रबल इच्छा है।

अशोक सभी धर्मों का समान रूप से दान-पूजा-अर्चना से परिपालन करता था (देवानंपिये पियदसि राजा सवयासंडानि च पवजितानि च घरस्तानि च पूजयति दानेन च विवाधाय च पूजाय पूजयति ने)।[१] उसके सामने बौद्धधर्म का महान् उद्देश्य था जन-जन का कल्याण—"चरथ भिक्खवे चारिक बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं दिसेथ भिक्खवे, धम्मं आदि कल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ"।[२]

अशोक के बहुत वर्षों पहले से मूक पशु-पक्षियों की बलि होती थी। स्वयं अशोक के परिवार में प्रतिदिन लाखों जीवों का प्रयोग "सूप" बनाने में होता था। उसने केवल दो मोर और मृग "सूप" के लिए रखा[३] और वचन दिया कि भविष्य में इनका उपयोग भी बन्द हो जायगा। पहले लोग जीवों की बड़ी हत्या करते थे तथा अपने सम्बन्धियों के प्रति उदासीनता, अवहेलना और कटुता का व्यवहार करते थे। श्रमणों और ब्राह्मणों की उपेक्षा और अनादर होता था (अतिकांतं अन्तरं वाससतानि वढ़ितो एव प्राणारम्भो विहिंसा च भूतानं जातीसु असम्प्रतिपती

---

१. पाण्डेय, वही, पृ० १४।

२. काश्यप, महावग्ग, पृ० २३, १/१०/३२।

३. पाण्डेय, वही, पृ० ५—"······सूपाथाय द्वो मोरा एको मगो सो पि मगो न धुवो। एते पि त्री प्राणा पदा न आरभिसरे।"

ब्राह्मणस्रमणानं अंसप्रतिपती) ।[१] अशोक ने माता-पिता, श्रमण-ब्राह्मणों का आदर करने और परस्पर मेलजोल से रहने की शिक्षा दी। पहले राजा लोग विहार यात्राएं करते थे, जिनमें खाना-पीना, आमोद-प्रमोद, आखेट आदि दुर्व्यसनों का बड़ा प्रचलन था (अतिकांतं अन्तरं राजानो विहार यातां जयासु। एत मगव्या अजानि च एतारिसानि अभीरमकानि अहुसु) ।[२]

अशोक ने इन विहार यात्राओं को "धर्मयात्राओं में परिवर्तित कर दिया (सो देवानंप्रियो पियदसि राजा दसवर्साभिसितो संतो अयाय सम्बोधि। तेनेसा धम्मयाता)" ।[३] जनता में बहुत दिनों से "मंगल" मनाने की कुप्रथा चल रही थी। जब कभी कोई रोग से अधिक पीड़ित होता, बच्चों का जन्म होता, पुत्र-पुत्रियों का विवाह सम्पन्न होता या दूर जाने के लिए यात्राएं आरम्भ होने लगतीं तो "मंगल" मनाया जाता था। महिलाएं भाँति-भाँति के आवश्यक-अनावश्यक तिथि-त्योहार मनाने लगतीं। इन सब कुप्रथाओं पर रोक लगा दी गई और "धर्ममंगल" मनाने का नियम लगा दिया गया (अस्ति जनो उचावचं मंगलं करोते आबाधेसु वा आवाहवीवाहेसु वा पुत्रलाभेसु वा प्रवासम्हि वा एतम्ही च अजम्हि च जनो उचावचं मंगलं करोते। .... । अयं तु महाफले मंगले य धम्ममंगले) ।[४] ये कुप्रथाएँ उनमें से कुछ हैं जो अशोक ने समाज में देखे थे। (**बड़कं हि दोसं समाजम्हि**)[५]

स्तूपों में बुद्ध के शरीर-धातुओं की प्रतिष्ठा पहले हुई या उनके शिष्यों, सारिपुत्र और मौदगल्यायन के शरीर-धातुओं की, यह कहना कठिन है; क्योंकि दोनों शिष्य बुद्ध के जीवनकाल में ही निर्वाण प्राप्त कर चुके थे। ऊपर कहा जा चुका है कि इन शिष्यों के अस्थि-अवशेष साँची के स्तूप ३ से प्राप्त हुए हैं। जिन मजूषाओं में ये अवशेष रखे मिले, उन पर दूसरी शती ई० पू० की लिपि में शिष्यों के नाम उत्कीर्ण हैं। दूसरी शती ई० पू० में ये अवशेष स्तूप ३ में कहीं से लाकर रखे गए थे। साँची के स्तूप २ से दस आचार्यों के अस्थि-अवशेषों का पता लगा है। इन अवशेषों की मंजूषाओं पर भी दूसरी शती ई० पू० के अभिलेख हैं। दीपवंश के अनुसार इनमें से चार आचार्य (मदयम, दुदुभिसर, सहदेव, मूलकदेव) काश्यपगोत्र के साथ हिमवन्त के यक्षों को धर्मदीक्षा देने तथा पाटलिपुत्र की तृतीय संगीति का "धम्म" समझाने गये थे।

अस्तु बुद्ध की अस्थियों की पूजा-अर्चना के साथ-साथ उनके शिष्यों के अस्थि-अवशेषों की अर्चना और बाद में बौद्धाचार्यों की अस्थियों का सत्कार छठी शती ई० पू० से दूसरी शती ई० पू० तक आते-आते आरम्भ हो गया। साँची में बुद्ध और उनके शिष्यों के अस्थि-स्तूप ऊपरी तल पर और बौद्धाचार्यों का अस्थि-स्तूप (स्तूप २) निचले तल पर बने; क्योंकि बुद्ध और उनके परम शिष्यों की अस्थियों को अधिक गौरव दिया गया।

तीसरी शती ई० पू० में साँची का स्वर्णयुग आरम्भ हो गया था और दूसरी-पहली शती ई० पू० (लगभग ३०० वर्ष) तक वह युग अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया। इस लम्बी अवधि

१. वही, पृ० ७
२. वही, पृ० ११—१२।
३. पाण्डेय, वही, पृ० ११—१२।
४. वही, पृ० १२।
५. वही, पृ० ५।

में बौद्ध धर्म, कला, संस्कृति, साहित्य मालव के घर-घर में व्याप्त हो गये। अपने कुल और सब जीवों के कल्याण तथा धर्म-पुण्यार्जन करने के लिए, भिक्षु-भिक्षुणियों, कर्मचारीगणों, श्रेष्ठियों, राजाओं, ग्राम-परिवारों, गोष्ठियों एवं समितियों में परस्पर होड़-सी लग गयी अद्वितीय धर्मोद्वेग में कला की अनूठी कृतियाँ प्रस्तुत हुईं। साँची की सर्वोपरि कृतियाँ पाँच "तोरण-द्वार" हैं जो इसी युग की देन हैं। विश्व में अन्यत्र उनकी झलक नहीं मिलती। अत्यन्त समृद्ध गुप्तयुग में भी इन द्वारों जैसा कुछ भी नहीं बन पाया।

प्राचीन काल में सभी देशों के लोग प्रकृति के पुजारी रहे हैं। और साँची भी इस विषय में अपवाद नहीं रही। पाषाणयुग से मानव प्रकृति पर निर्भर होता चला आया है। अस्तु स्वाभाविक था कि सब कुछ देने वाली प्रकृति मां की बहुविध पूजा हो। साँची के शिल्प (दूसरी शती ई० पू० से पहली शती ई० पू० तक) में पेड़-पौधे, पशु, मनुष्य, पक्षी, ईहामृग सभी मिले जुले प्रस्तुत किये गये हैं। प्रकृति मनुष्य की और मनुष्य प्रकृति का पूरक है। इसीलिए जन-जीवन में सबका सहयोग और साहचर्य अपनाया गया है। बुद्ध, उनके शिष्यों और अन्य बौद्धाचार्यों के अस्थि-अवशेष साँची के स्तूपों में प्रतिष्ठित किये गये। उन्हें श्रद्धांजलि देने के लिए जड़-चेतन दोनों जुटाये गये। उदुम्बर, न्यग्रोध, अश्वत्थ, पाटलि, पुण्डरीक और शाल वृक्षों को भारतीय साहित्य में शुभ और मंगलमय माना गया है। इनको साहित्यकारों ने मानुषी बुद्धों के साथ जोड़ दिया। साथ ही ताड़ वृक्ष से कलाकार को स्तम्भों का भाव मिला। कदली और आम के वृक्ष अपने फलों के लिए समृद्धिसूचक माने गये और उनका समावेश धार्मिक अनुष्ठानों में सर्वत्र दिखायी देने लगा। जातक कथाएँ तो बहुधा पर्वतश्रृंखलाओं, नदियों, नालों, वृक्षों और वन्य पशु-पक्षियों के साथ ही प्रस्तुत हुईं।

दूसरी ओर हिन्दू देवता, ब्रह्मा, इन्द्र, अष्टदिक्पाल, नाग, यक्ष, किन्नर, गंधर्व, मार किसी न किसी प्रसंग में दृश्यों में प्रस्तुत हैं। ब्रह्मा और इन्द्र बुद्ध के व्यक्तित्व के समक्ष उनके अनुगामी बने हैं। अष्ट दिक्पाल उनके अस्थि-अवशेषों की रक्षा करते हैं और विघ्न-बाधाओं को पास नहीं आने देते। नाग चिरकाल से बुद्ध-धर्म-संघ के पोषक और रक्षक समझे जाते रहे हैं। चाहे जातक-कथाएं हों, चाहे बुद्ध का जीवन, नागों का समावेश पग-पग पर मिलता है। यक्ष तो सारे शिल्प पर छाये-से हैं। कहीं सर्पाकार लताएं मुँह से निकालते हुए, कहीं बोझ सम्भालते हुए, कहीं लताओं के कुंजों में छिपे हुए, कहीं पर्वतों, नदियों और वृक्षों में बैठे हुए, वे सर्वत्र देख पड़ते हैं। बिना गायन-वादन-पूजन के किसी भी धर्म का काम पूरा नहीं होता। अस्तु किन्नरों और गंधर्वों की उपस्थिति भी शिल्प में आवश्यक समझी गई। कई दृश्यों में यक्ष-किन्नर-गंधर्व पुष्पमालाएँ लिए या विमानों पर चढ़े बुद्ध के पास पहुँचते हैं। मार कामदेव या मृत्युलोक के प्रलोभन और आकर्षण बोधिसत्त्व एवं बुद्ध के यदा-कदा डिगाने और धमकाने- डराने के लिए प्रयुक्त हुए हैं। मार के गण साक्षात् यक्ष लगते हैं। उनके रूप-विरूप कलाकार की सूझबूझ के अनूठे उदाहरण हैं। इन सब बातों से स्पष्ट है कि साँची के आसपास वैदिक एवं ब्राह्मण धर्म घर-घर में व्याप्त था। जनता उसी धर्म और कला में सहयोग दे सकती थी, जिसमें इन सभी देवताओं-गणों-रक्षकों का प्रचुर समावेश हो। बिना इनकी उपस्थिति के कोई धर्म जनता में लोकप्रिय होने वाला नहीं था। यही नहीं, यक्षियों और अप्सराओं की प्रबल मान्यताएँ भी जनता के ही आग्रह पर धर्म में प्रविष्ट की गयीं। बौद्ध भिक्षुओं ने अपने धर्म को प्रतीकों और अभिप्रायों तक ही सीमित

रखना चाहा था; लेकिन यक्षियों से वे धर्म को अलग नहीं रख पाये और यह कहकर कि यक्षियों-अप्सराओं की उपस्थिति से मार-सेना या सांसारिक आकर्षणों का आभास होता है, उन्होंने उनको भी सहन किया। जब लोक-धर्म के प्रमुख अंग बौद्धधर्म में प्रविष्ट हो गये तब जनता ने अपने सारे साधन जुटाकर बुद्ध और उनके निर्माणकार्यों पर न्यौछावर कर दी।

साँची के अभिलेखों से भिक्षुओं के जीवन पर भी कुछ प्रकाश पड़ता है। स्तूप २ की अस्थि-मजूषाओं के अभिलेखों में हैमवत, वात्सीपुत्र, अरहत्, आचरिय, उपादय, विनायक आदि शब्द आए हैं। हैमवत स्थविरवाद की एक शाखा का नाम था। काश्यपगोत्र ने इस शाखा को हिमालय क्षेत्र में जन्म दिया; इसीलिए उन्हें सभी हैमवतों का आचरिय=आचार्य कहा गया। उपादय=उपाध्याय शब्द भी उनके लिए प्रयुक्त हुआ है। भिक्षु ऋषिक वात्सीपुत्र-भिक्षु था (८०९/३८२)। वात्सीपुत्र-भिक्षु स्थविरवाद की एक शाखा थे। विनायक शब्द भी आचार्य का पर्याय है। "अरहत् पद" को भिक्षुओं के लिए सबसे ऊँचा पद बताया गया है। काश्यपगोत्र और वात्सी-सुविजयित अरहत् थे। अभिलेखों में भी कई उपासकों और भिक्षुओं के लिए अरहत् शब्द आया है। स्तूप २ की अस्थि-मंजूषाओं के अभिलेखों में बौद्धाचार्यों के लिए "सपुरिस"=सत्पुरुष =संत शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। युगपज का भरड़िय भी सत्पुरुष था (२८८/३८८)। प्रतिष्ठित उपासकों और गण्यमान्य भिक्षुओं के नामों के पहले "आर्य" शब्द लगाया गया है। कहीं-कहीं दानपतियों का पूरा नाम ही आर्य है। शिष्य-शिष्याओं के लिए 'अतेवासी', 'अतेवासिनी' तथा 'सेज्झा शब्द आए हैं। भिक्षु-भिक्षुणियों में आचार्य-शिष्य परम्परा दीर्घकाल से चली आ रही थी। कुछ भिक्षु "भाणक" (६९१/३६९) और "धर्मकथिक" अर्थात् धर्मव्याख्याता कहलाते थे। मड़लाचिकट का उपासक अविसिना (५४०/३५४) और अरपान का बुद्धरक्षित (६३१/३६३) "सौत्तांत्रिक" अर्थात् बौद्धसूत्रों के पण्डित थे। "पंचनिकायिक" अर्थात् पांच बौद्ध निकाय-ग्रन्थों के पण्डित देवगिरि ने अपने शिष्यों समेत साँची में दान दिया था (२४२/३२४)। आर्य फल्गुन के साथ रहने वाले क्षेमक को "साधिविहारिक" कहा गया है (३३८/३३४)। अबा के श्रेष्ठी को 'श्रमण" से संबोधित किया गया है (२११/३२०)। उज्जयिनी का आर्यनाग "थेर" =स्थविर =भिक्षु था (३०३/३३०)। भंदत नागिल का उल्लेख अभिलेख १०२/३०९ में आया है। छठी शती ई० के अभिलेख ८३७/३९२ में रेखागुप्त को भी भंदत कहा गया है। भिक्षुओं के लिए यह शब्द आदरसूचक था। अचवट का धर्मरक्षित "माठर" भिक्षु था (२७९/३२७)। उपासक गोनन्दक "तापस" था (११३/३११)। धर्मवर्द्धन के नागरिकों ने "बौद्धगोष्ठी" बनायी थी (९६, ९७, ९८/३०९) विदिशा के "बरुलमिसों" (१७८/३१७) तथा अर्बुद (आबू) के "बरायसिखो" (७९३/३८०) ने "गोष्ठियों" बनायी थीं। सम्भव है, इनका काम निर्माण-कार्यों का प्रबन्ध करना था या जनता को इन कार्यों में अधिकाधिक योगदान देने के लिए उत्साहित करना था। उज्जयिनी के ककड़कनगर के मगलकटियों (१०३/३१०), उज्जयिनी के वकिलियों (११५/३११) तथा उज्जयिनी के तापसियों ने अपनी-अपनी समितियां बनायी थीं। उज्जयिनी के तापसियों की उपासिका धर्मदत्ता (७१/३०६), उनकी वधुएं नंजा (७४/३०७), मित्रा (२८५/३२८), उनकी उपासिका / सिंहदत्ता (८७/३०८), उनका उपासक / ऋषिमित्र (७२/३०६), उनकी उपासिका पुष्यिणी (७२५/३७४) आदि इस बात के साक्षी हैं कि वे परिवार वाले व्यक्ति थे। ऐसी ही एक समिति साफिनेयिकों की थी। साफिनेय कुल के आर्य रहिल की उपासिका माता

(३५२/३३५) और उज्जयिनी के साफिनेयिकों के उपासक ऋषिक (६२/३०८) का उल्लेख आया है। अधिकांश समितियाँ उज्जयिनी-निवासियों की ही हैं। इससे पता लगता है कि साँची और उज्जयिनी का कितना घनिष्ट सम्बन्ध था।

अभिलेख ३९६/३४१ में दानपति द्वारा चेतावनी दी गयी है कि काकणाव का तोरण या वेदिका यदि कोई उखाड़ता (**उपाड़ेया**) है या दूसरों से उखड़वाता (**उपाड़ापेया**) है या दूसरे आचार्यकुल को सौंप देता है तो उसे मतुघातु, अरहंतखातु, लोहितुप्यादो तथा संघभेद के दोष लगेंगे और वह पतित हो जाएगा। काकणाव के ये निर्माण-कार्य स्थविरवादियों के थे। पहली शती ई० पू० तक उनका वहाँ बहुमत रहा। फिर वहाँ महासांघिक सम्प्रदाय का प्राबल्य हुआ। तीसरी शती ई० पू० में ही अशोक ने सारनाथ, कौशाम्बी, तथा साँची के क्षेत्रों में संघभेद के बिरुद्ध भिक्षु-भिक्षुणियों को चेतावनी दी थी। लगता है कि पहली शती ई० पू० तक आते-आते नए आचार्यकुलों का प्रभाव अधिक बढ़ गया और स्थविरवादियों को काकणाव की सुरक्षा के लिए चेतावनी देनी पड़ी। उन्हें डर लगा कि विरोधी दल सम्भवतः उनके निर्माण-कार्यों को ही ध्वस्त कर दें या हस्तगत कर लें। जैसा कि सर्वविदित है, पहली शती ई० से बुद्ध-बोधिसत्वों की मूर्तियाँ बनने लगी थीं और महायान का दीर्घकालिक प्रयास पल्लवित होने लगा था। स्थविरवादी बुद्ध को प्रतीकात्मक ढंग से प्रस्तुत करते थे, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है।

दानपतियों के नामों से ऐसा लगता है कि विभिन्न मत-मतान्तरों के व्यक्तियों ने साँची के निर्माण-कार्यों में भाग लिया था।

अरहद्गुप्त (३१०/३११), अरहा (६२३/३६१), अरहद्रक्षित (१५/३०१), गोतमी (७००/३७०), तिष्य (५०४/३५०), धर्मरक्षित (२४६/३२४), बुद्धरक्षित (६३१/३६३), बोधि (३७२/३३८), भिक्षुणिका (६४१/३६४), संघदेव (३०६/३३०), संघरक्षित (५८५/३५७), आदिनाम बौद्धानुयायियों के हैं। बुद्ध, धर्म, संघ से युक्त उनके अनेक नाम हैं।

अग्निसीमा (२४५/३२४), आत्रेयी (१२५/३१२), आषाढ़ (२५०/३२५), इन्द्राग्निदत्त (६९२/३६९), इन्द्रदेव (१५२/३१४), उत्तरा (५२६/३५२), कपिल (६९५/३६९), कात्यायनीपुत्र (२६४/३२६), गंगदत्त (६२८/३६१), चण्डीप्रिय (२०४/३२०), देवदासी (५०१/३५०), दिशारक्षित (३३/३०३), देवदत्ता (३७०/३३७), धर्मशिव (२८६/३२८), पुष्यिणी (६६१/३६६), पुष्या (६११/३६०), फल्गुन (३३८/३३४), भगवती (२५६/३२५), मूला (६७३/३६७), यक्षिल (६५७/३६५), यक्षी (१३७/३१३), रोहिणी (६६/३०६), रेवा (६०५/३५९), रेवतीमित्रा (४९८/३५०), विष्णुका (६७६/३६७), वैश्रवणदत्ता (१७/३०१), वायुदत्ता (७३, ७५, ७७/३०६–०७), विश्वदेवा (२५४/३२५), सूर्या (५०६/३५१), स्वातिगुप्त (१११–११२/३११), शक्रदत्त (५००/३५०), शिवनन्दि (१६२, १६३/३१६), ऋषिदासी ६७४/३६७), ऋषिदत्ता (२५५/३२५), पुराण (४४६/३४६), वरुण (४१२/३४३), विष्णुमित्र (७४९/३७६), वसुमित्रा (१२/३६२), आदि नाम वैदिक-ब्राह्मण धर्मानुयायियों के हैं।

बहुत-से नामों के साथ "नाग" शब्द आया है, जो नाग-जाति से सम्बन्धित हो सकता है: नागदत्त (३२८/३३३), नागपालिता (६६५/३६६), नागप्रिय (६६०/३६६)।

कुछ नाम जैसे, गंधार (७०२/३७०), काम्बोज (६०१/३५९), केकटेयक (३०/३०२; ३६१/३३६), किराती (५६७/३५६), प्रतिष्ठान (७१७/३७२) भारतीय देशों-उपनिवेशों के

नामों पर आधारित हैं।

स्पष्ट है कि बौद्धधर्म का तो प्रावल्य था ही; साथ-साथ वैष्णव, शैव, नाग, महासांघिक, सौर्य सम्प्रदाय भी उन दिनों प्रचलित थे।

कुषाणकाल में मथुरा-पाषाण की बनी बुद्ध की दो प्रतिमाएँ (अभिलेख ८२८, ८२९) तथा बोधिसत्त्व मैत्रेय की एक प्रतिमा (अभिलेख ८३०) साँची लायी गयीं और स्तूपों में प्रतिष्ठित की गयीं। बोधिसत्त्व पद्मपाणि (स० ८०१) तथा बोधिसत्त्व मैत्रेय (सं० ६५०, सं० ११८६) की प्रतिमाएँ भी इसी काल की हैं। अस्तु, इस समय से महायान का प्रादुर्भाव हो चुका था और साँची का बौद्धसंघ नए धर्म के प्रति उदासीन नहीं था। इन प्रतिमाओं के दान का उद्देश्य था अपने कुल तथा सब जीवों की शुभ कल्याण-भावना। बोधिसत्त्व प्रतिज्ञाबद्ध होते थे कि सब जीवों के उद्धार के बाद उनका उद्धार होगा।

गुप्तकाल में शूरकुल के आत्मज ने जालांगुलि से युक्त बुद्ध-प्रतिमा की प्रतिष्ठा साँची में की (अभिलेख ८३२)। नागराज (सं० २८५६, सं० २८५८), बुद्ध-मूर्ति (सं० २७७१), ध्यानीबुद्ध से युक्त बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर का सिर (सं० ८३१) तथा विष्णुमूर्ति (सं० २५७२) की प्रतिमाएं साँची में प्रतिष्ठित हुईं। इस प्रकार महायान का विकास क्रमशः होता जा रहा था।

महाराजाधिराज-देवराज-चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में काकनादबोट श्रीमहाविहार के चातुर्दिशार्य भिक्षुओं में शील, समाधि, प्रज्ञा का पूर्ण समन्वय पाया जाता था। उनका धार्मिक आचार-विचार उच्च श्रेणी का और पुनीत था। चन्द्रगुप्त के वीर सेनानी आम्रकार्दव ने इनमें से पाँच भिक्षुओं की भोजन-व्यवस्था तथा बुद्ध के रत्नगृह में एक दीपक जलवाने के लिए २५ स्वर्णदीनार दान कर दिये और चेतावनी दी कि कोई इस व्यवस्था को भंग करेगा वह पाँच दोषों तथा गो-ब्राह्मण-हत्या का भागी होगा (अभिलेख सं० ८३३)।

इसी प्रकार उपासिका हरिस्वामिनी ने अपने माता-पिता के कल्याण के लिए काकनादबोट श्रीमहाविहार के चातुर्दिशार्य भिक्षुसंघ को १२ स्वर्णदीनार भेंट किये, जिससे नित्यप्रति एक भिक्षु के भोजन की व्यवस्था हुई। बुद्ध के रत्नगृह के लिए उसने ३ स्वर्णदीनार दिये, जिससे वहाँ तीन दीपक नित्यप्रति जल सकें। प्रदक्षिणापथ में रखी चार बुद्ध-प्रतिमाओं के स्थान में एक दीपक जलाने के लिए भी उसने १ स्वर्णदीनार दिया। हरिस्वामिनी की इच्छा थी कि यह प्रबन्ध तबतक अक्षुण्ण रहे जबतक चन्द्र-सूर्य प्रकाश देते रहें (अभिलेख स० ८३४)।

आर्य-विहार स्वामी गोशूर सिंहबल के पुत्र रुद्रसिंह ने वज्रपाणि-स्तम्भ स्थापित किया। स्तम्भ पर बोधिसत्त्व वज्रपाणि की प्रतिमा प्रतिष्ठित थी। यह प्रतिमा (सं० २७२०) भारत में वज्रयान के आरम्भ और विकास के अध्ययन के लिए अद्वितीय है (अभिलेख सं० ८३५)।

सांची-कानाखेड़ा में कुआं खोदवाने वाले सेनापति महादण्डनायक शक-शत्रप श्रीधरवर्म्मन विदेशी होते हुए भी स्वामी कार्त्तिकेय (स्वामी महासेन महातेजः) के भक्त थे (अभिलेख सं० ८३६); जैसे दूसरी शती ई० पू० का यवन-राजदूत हेलियोदोर परमभागवत था।

सातवीं शती की बुद्धमूर्तियाँ (सं० २७६७, सं० २७८६) और नालागिरि-दमन (सं० २८५५) तथा आठवीं शती की बुद्ध-मूर्ति (सं० २७७६) साँची में प्राप्त हुई हैं।

नवीं शती की मूर्तियों में बुद्ध-मूर्ति (सं० २७८०), बोधिसत्त्व पद्मपाणि (सं० २७७४) तथा बुद्ध-मूर्ति (सं० २७७५) उल्लेखनीय हैं। इसी काल के अभिलेख सं० ८४२ में बोटश्रीपर्वत

अर्थात् साँची, में एक विहार के निर्माण का तथा उसमें ध्यानीबुद्ध अभिताभ से युक्त सिर वाले बोधिसत्त्व लोकनाथ तथा बोधिसत्त्व वज्रपाणि की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा का उल्लेख है। यह महत्त्व का विषय है कि गुप्तकालीन वज्रयान साँची में नवीं शती तक पल्लवित होता रहा।

दसवीं-ग्यारहवीं शती की तारा (सं० २८०३), बुद्ध-मूर्ति (सं० २७६६), घण्टापाणि या वज्रसत्त्व (सं० २७७६), मंजुश्री (सं० २७७०), बुद्धमूर्ति (सं० २७६४), अग्नि (सं० २६७४), कुबेर (सं० २८०५), निर्ऋति (स० २७२३), तारा (सं० २८०२), तारा (सं० २७६५) चुंदा तारा (सं०२६३८), जम्भल (सं० २७८१), विष्णु स० (३७३), अदितिमाता (सं० ३८७), गणेश (सं० ३८०), महिषमर्दिनी दुर्गा (सं० ३६२, ३८१), बोधिसत्त्व मैत्रेय (सं० २७२८), वराह (सं० २८७८,) कुबेर (सं० २७७३), शिव (सं० ६५६), हारीती (सं० ६५६) आदि से पता लगता है कि ब्राह्मण मूर्तियों का समावेश बौद्धधर्म में अब अधिक होने लगा था। बुद्ध को विष्णु के दशावतारों में स्थान देने के कारण दोनों महान् धर्म पास आ गए और परस्पर मिलजुल कर रहने की भावना पनप गयी।

उपसंहार

यह है साँची और उसके आसपास के बौद्ध-स्थलों का संक्षिप्त इतिहास और सांस्कृतिक विवेचन। १८१८ से १९३६ के बीच इन स्थलों का पता लगा और क्रमशः इनका उद्धार होता गया। पाषाणयुग में साँची—कानाखेड़ा की पहाड़ियों में आदिमानव रहता था। उसका जीवन उत्तरोत्तर उन्नति करता गया और गुफाओं-कन्दराओं को छोड़कर एक दिन वह ग्रामों और फिर नगरों में बस गया। कालांतर में हिंसा, अस्पृश्यता, अनाचरण, जातिगत भेदभाव, धार्मिक पाखण्ड के विरुद्ध अनात्म-अनीश्वरवादी बौद्धधर्म का प्रादुर्भाव हुआ, जिसका राजा तथा प्रजा दोनों ने खुले हृदय से स्वागत किया और अपनी श्रद्धा और अभिव्यंजना के प्रतीक स्तूपों, स्तम्भों, मण्डपों, मन्दिरों और विहारों का निर्माण किया। इन कृतियों में तत्कालीन जन-जीवन का प्रदर्शन है। उनमें राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक सभी विषयों का सम्मेलन है।

पहले साँची-विदिशा समेत आकरावंति का प्रदेश मौर्य-साम्राज्य में था और उज्जयिनी इसकी राजधानी थी, जहाँ महाकुमार प्रियवर्द्धन (अशोक) मगध-सम्राट बिन्दुसार की ओर से शासन करता था। अशोक के बाद उज्जयिनी कुणाल, सम्प्रति, दशरथ और बृहद्रथ मौर्य के अधिकार में रही। बृहद्रथ अपने सेनापति पुष्यमित्र द्वारा मारा गया। पुष्यमित्र ने अपने राज्य को नर्मदा तक बढ़ाया। इसमें पाटलिपुत्र, अयोध्या, विदिशा, जालन्धर, साकल आदि प्रसिद्ध नगर सम्मिलित थे। पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र ने प्रादेशिक शासक (गोप्ती) के रूप में विदिशा को पूर्वी मालवा की राजधानी बनाया। अग्निमित्र के पश्चात् वसुज्जेष्ठ, वसुमित्र, काशीपुत्र भागभद्र, महाराज, भागवत, रेवतीमित्र आदि ने राज्य किया। काशीपुत्र भागभद्र के १४वें राज्यवर्ष में तक्षशिला से यवन हेलियोदोर विदिशा-दरबार में राजपूत बनकर आया और भागवत-धर्म स्वीकार कर लिया। महाराज भागवत नवाँ शुंगराजा था। उसने लगभग ३२ वर्ष राज्य किया। उसके पश्चात् देवभूति या देवभूमि शासक हुआ। देवभूति से आंध्र के राजा सिमुक (पहली शती ई० पू०) ने विदिशा छीन लिया। उसके उत्तराधिकारी सातकर्णि प्रथम, गौतमीपुत्र

प्रथम वासिष्ठीपुत्र पुलुमावी, गौतमीपुत्र श्री यज्ञ सातकर्णि आदि आंध्र-सातवाहन राजाओं ने आकरावन्ति अपने अधिकार में रखा। कुषाण राजाओं का प्रभाव साँची तक अवश्य पहुँचा होगा जसाकि वहाँ से प्राप्त अनेक मूर्तियों से प्रगट होता है। इसी काल में विषकुल-नागबंशियों ने भी विदिशा-क्षेत्र में अपना आधिपत्य जमाया। उनका प्राबल्य वहाँ गुप्तकाल तक रहा। कुषाणों से अधिक प्रभावशाली अधिकार साँची पर शक-क्षत्रप राजाओं का था। महाक्षत्रप चष्टन के ये वंशज चौथी शती तक मालव-प्रदेश पर छाये रहे।

गुप्तकाल में नागराजा गणपतिनाग ने पद्मावती, विदिशा और मथुरा में अपना राज्य स्थापित कर लिया था। किन्तु समुद्रगुप्त ने उस पर विजय प्राप्त की। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने शकों-हूणों और नागों को परास्त कर विशालमालव की नींव डाली। रामगुप्त ने इस साम्राज्य को दीर्घकाल तक अक्षुण्ण रखा। इसी काल में "शूरकुल" का उदय भी हुआ।

पुष्यभूति—बंशीय प्रभाकरवर्द्धन और हर्षवर्धन के समय में मालव कन्नौज—साम्राज्य का अंग था।

गुर्जर प्रतिहार वत्सराज, नागभट्ट द्वितीय, भोज महेन्द्रपाल प्रथम, तथा महिपाल ने मालव पर वर्षों तक अपना प्रभुत्व बनाये रखा; किन्तु राष्ट्रकूटों, चाहमानों, कलचुरियों और परमारों ने भी अपनी-अपनी विजयपताकाऐं फहरायी। परमारों में मुंज का नाम विशिष्ट है। मुंज के यश को भोज ने और सुविस्तृत किया। परमार उदयादित्य ने उदयपुर का विशाल नीलकण्ठेश्वर मन्दिर बनवाया। तेरहवीं शती ई० में परमार देवपाल ने म्लेच्छों को विदिशा-क्षेत्र से दूर रखा; किन्तु चौदहवीं शती में म्लेच्छ-राज्य विदिशा और रायसेन में स्थापित हो गया।

अन्य सांस्कृतिक केन्द्रों की भाँति साँची में प्रजा के सभी वर्गों ने मिलकर शुंग-सातवाहन-काल में जो कृतियाँ प्रस्तुत कीं उनकी तुलना भरहुत के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं मिलती। आर्थिक सहयोग की यह अनूठी परम्परा बारहवींशती तक अबाधगति से चलती रही। अशोक के समय से लेकर परमार देवपाल के समय तक प्रजा सुखी-सम्पन्न थी। शासन करवटें लेते रहे। शासकों की पीढ़ियाँ आती-जाती रहीं। किन्तु मालव के प्रांगण में गगनचुम्बी स्तूप, मण्डप, विहार, मन्दिर, शालाएँ निर्मित होती रहीं।

साँची, सतधारा, सोनारी, भोजपुर पिपरिया और आँधेर के स्तूपों में बुद्ध, सारिपुत्र और मौदगल्यायन तथा मौर्य-शुंगकालीन बौद्धाचार्यों के पुनीत अस्थि-अवशेष सुरक्षित रखे गये थे। श्रद्धालु जनता उनकी पूजा-अर्चना करती और उनसे प्रेरणा लेती रहती थी। आर्य सत्य और पंच-शील मालव के घर-घर में व्याप्त हो गये थे। मौर्य-शुंग-सातवाहनकाल तक बुद्ध को प्रतीकात्मक ढंग से स्तूपों की वेदिकाओं और तोरणद्वारों पर प्रस्तुत किया गया। यह हीनयान-शाखा की प्रणाली थी। किन्तु शक-क्षत्रप एवं कुषाणकाल से महायान प्रबल हो उठा। दया-करुणा का अजस्र स्रोत बहने लगा और संसार के सभी जीवों को बुद्ध-बोधिसत्त्वों का कल्याणमय आश्वासन मिलने लगा। जन-जन तक यह आश्वासन पहुँचाने के लिए बुद्ध-बोधिसत्त्वों की मूर्तियाँ बनने लगीं। मध्यकाल तक आते-आते मूर्तियों की संख्या बहुत बढ़ गयी। उनमें ज्ञान, विद्या, यश, कीर्ति, सम्पदा, विमुक्ति प्रदान करने की क्षमता देखी गयी। श्रद्धालु उपासक-उपासिकाएं भिक्षु-भिक्षुणी उनका आह्वान-अनुष्ठान धीरे-धीरे मंत्रयान-वज्रयान-कालचक्रयान की पद्धतियों से करने लगे। तांत्रिक क्रियाओं में हठयोग की साधना प्रमुख थी। आरम्भ में कुछ सिद्ध-योगी सामने आए; किन्तु बाद में पंचमकारों

(मत्स्य, मदिरा, मांस आदि) ने बौद्धों को पतन के गर्त में गिरा दिया और जब आर्यसत्यों और पंचशीलों की खुलकर अवहेलना और उपेक्षा होने लगी तब विशाल हिन्दूधर्म ने बौद्धधर्म को धीरे-धीरे आत्मसात कर लिया।

साँची तथा आसपास के स्तूपों और विहारों का मूलाधार धर्म ही रहा है। लेकिन उनके निर्माण में जिस शैली और लोकपरम्परा का अनुसरण किया गया, वह वन्दनीय है। प्रचीनतम स्तूपों के आठों अगों का यहाँ एक साथ प्रदर्शन हुआ है :—भूवेदिका, तोरणद्वार, प्रदक्षिणापथ, सोपान, मेधी, अंड, हर्मिका तथा छत्रयष्टि। इन अंगों को वास्तुकला का प्रथम-चरण मानकर कलामर्मज्ञों ने स्तूपों के विकास पर अनेक ग्रंथ लिखे हैं। प्राचीन अर्द्धवृत्ताकर मन्दिर और स्तम्भों पर टिके मण्डप भी साँची की प्रमुख देन हैं। गुप्तकाल का प्रतिनिधि मन्दिर और उत्तर गुप्तकाल के विहार भी साँची में हैं। मध्यकालीन विहार-मन्दिर ४५ अपनी शैली की एक ही वास्तुकला-कृति है।

साँची के सैकड़ों अभिलेख भारतीय इतिहास, भूगोल, व्यापार, व्यवसाय, धर्म, कला, संस्कृति के लिए अमूल्य स्रोत हैं। साँची का अधिकांश इतिहास और वर्णन इन्हीं अभिलेखों पर आधारित है।

साँची की शिल्पकला में ताड़वृक्ष की भावना लिए विशाल अशोक-स्तम्भ और काष्ठवेदिका का रूप लिये स्तूप १ की भूवेदिका प्राचीनतम हैं। दूसरे चरण में अलकृत वेदिकाएँ आती हैं। तीसरे चरण में तोरणद्वार आते हैं। इन पर उभरे हुए चित्रों के रूप में बुद्ध के जीवन-दृश्य प्रस्तुत है। इन चित्रों में जड़ और चेतन एक साथ प्रदर्शित हैं। मानों वे एक-दूसरे के पूरक हों, पर्याय हों। बुद्ध का प्रदर्शन चरण, छत्र, बिना सवार का घोड़ा, खाली रथ, कमल, बोधिवृक्ष, खाली सिंहासन, पादपीठ आदि प्रतीकों द्वारा हुआ है। कुषाणकाल से चित्र-कला में कमी आ जाती है और मानवी मूर्तियों को स्वतन्त्र रूप दिया जाता है। ये मूर्तियाँ शरीर में भारी-भरकम थीं। गुप्तकाल में इनमें सौष्ठव और संतुलन लाया गया, जिससे उनका आध्यामिक महत्त्व बढ़ गया। किन्तु मध्यकाल तक आते-आते उनमें अलंकरण बढ़ जाता है और संख्या कई गुनी हो जाती है। फलस्वरूप उनके आध्यात्मिक और कलात्मक गौरव में बाधा पड़ जाती है और गुप्तकाल का सौष्ठव ओर संतुलन फिर उनमें नहीं आ पाता। शिल्पकला का यह क्रमिक विकास स्थानीय पुरातत्व सग्रहालय में भलीभाँति देखा जा सकता है।

तोरण-द्वारों के दृश्यों की तालिकाएँ

तोरण-द्वारों पर प्रदर्शित बुद्ध की जीवनी और जातक कथाएँ:

स्तूप १ का दक्षिणी तोरण-द्वार, सम्मुख भाग

कमल बेल	अश्वारोही	बुद्ध का जन्म (मूलतः यह पृष्ठभाग था)	अश्वारोही	कमल बेल
	विपश्यी की सम्बोधि		शाक्यमुनि की सम्बोधि	
रामग्राम	अश्वारोही	के स्तूप की पूजा		
	महापरिनिर्वाण		बुद्ध जन्म	
	मृगारोही	कुम्भाण्ड और बेल	मृगारोही	मयूर
	सिंह-शीर्ष प्रथम उपदेश		सिंह-शीर्ष मुचलिंद	
	अशोक की यात्रा		बुद्ध के चार भिक्षापात्र	(नया स्तम्भ; प्राचीन स्तम्भ अब संग्रहालय में हैं।
	इन्द्र-इन्द्राणी की यात्रा		बुद्ध का प्रथम भोजन	
	नया भाग			

स्तूप १ का दक्षिणी तोरण-द्वार, पृष्ठ भाग

महाभिनिष्क्रमण	वृषारोही	सप्त मानुषी बुद्ध (मूलतः यह सम्मुख भाग था)	वृषारोही	महाभि-निष्क्रमण
	कमल वृक्ष		विपश्यी की संबोधि	

		षड्दन्त	वृषारोही	जातक
	विपश्यी की संबोधि		मैत्रेय की सम्बोधि	
कुशीनारा	अस्थि-वाहक गजारोही	बुद्ध की अस्थियों के लिए	अस्थि-वाहक गजारोही	युद्ध
	सिंह शीर्ष		सिंह-शीर्ष	
		भीतरी भाग		
	शाक्यमुनि की संबोधि		विपश्यी की सम्बोधि	
	अशोक की बोधिवृक्ष-यात्रा		मन्दिर स्वस्तिक का तृण-दान	यह स्तम्भ अब संग्रहालय में है।
	बोधिसत्व के केश और मुकुट की पूजा		शाक्यमुनि की संबोधि और चंक्रम	

स्तूप १ का उत्तरी-तोरण-द्वार, सम्मुख भाग

सप्त	अजारोही	मानुषी	अजारोही	बुद्ध
	बुद्ध का जन्म		प्रथम उपदेश	
सप्त	सिंहारोही	मानुषी	सिंहारोही	बुद्ध
	बुद्ध का जन्म		प्रथम उपदेश	
विश्वंतर	वृषारोही	जातक	वृषारोही	ऋष्य शृंग, एक शृंग या अलंबुसजातक
	श्रावस्ती- चमत्कार		सांकाश्य- चमत्कार	
	जेतवन विहार		महाभिनि- ष्क्रमण	

श्रावस्ती- चमत्कार	कपिलवस्तु में शाक्यों को बुद्ध का उपदेश
प्रसेनजित् का आगमन	खण्डित
आमोद-प्रमोद का दृश्य	

स्तूप १ का उत्तरी तोरण-द्वार, पृष्ठ भाग

षड्दन्त	अजारोही	षड्दन्त	अजारोही	जातक
	कमल या बुद्ध-जन्म	अश्वारोही	कमल या बुद्ध-जन्म	
मोर	अजारोही	सुजाता की वोधिवृक्ष पूजा तथा मार- विजय	अजारोही	मोर
	बुद्ध का जन्म	गजारोही	महापरि- निर्वाण	
विश्वन्तर	अश्वारोही	विश्वन्तर	अश्वारोही	जातक
	महापरि- निवार्ण		शाक्यमुनि की सबोधि	

भीतरी भाग

इन्द्रशैलगुहा	कुशीनारा में मल्लों का महापरि- निर्वाण उत्सव
बुद्ध के पास बिंबिसार/ अजातशत्रु का आगमन	वैशाली- चमत्कार
यष्टिवन में बुद्ध कुबेर (वैश्रवण)	कपिलवस्तु में बुद्ध यक्ष

स्तूप १ का पूर्वी तोरण-द्वार, सम्मुख भाग

सप्त	वृषारोही	मानुषी	वृषारोही	बुद्ध
	बुद्ध का जन्म		मैत्रेय	
वृक्ष और हाथी	शार्दूल	महाभिनिष्क्रमण	शार्दूल	वृक्ष और हाथी
	प्रथम उपदेश		बुद्ध का जन्म	
मोर	शार्दूल	अशोक द्वारा बोधिवृक्ष की पूजा	शार्दूल	मोर
	गज-शीर्ष		गज-शीर्ष	
	बुद्ध का चंक्रम		स्वर्ग के प्रथम छह खण्ड	
	सम्बोधि		१	
			२	
	काश्यपों की दीक्षा		३	
			४	
			५	
	बुद्ध के पास बिंबिसार/ अजातशत्रु का आगमन		६	

स्तूप १ का पूर्वी तोरण-द्वार, पृष्ठ भाग

सप्त	सिंहारोही	मानुषी	सिंहारोही	बुद्ध
यक्षी	महापरिनिर्वाण		महापरिनिर्वाण	यक्षी
पशुओं	ऊँट-सवार	द्वारा वन में बुद्ध की	ऊँट-सवार	पूजा
यक्षी	कमल या बुद्ध जन्म		कमल या बुद्ध-जन्म	यक्षी

रामग्राम	अजारोही	के स्तूप को	अजारोही	पूजा
		भीतरी भाग		
(दक्षिणी-स्तम्भ)			(उत्तरी-स्तम्भ)	
काश्यपों की दीक्षा			अध्येषणा	
१				
२			मायादेवी का स्वप्न, लुम्बिनी वन से बोधिसत्व की कपिलवस्तु यात्रा।	
३			कपिलवस्तु के न्यग्रोधाराम में बुद्ध का चंक्रम और चमत्कार-प्रदर्शन	
यक्ष			धृतराष्ट्र	

स्तूप १ का पश्चिमी तोरण-द्वार, सम्मुख भाग

सप्त	शार्दूल	मानुषी	शार्दूल	बुद्ध
	विपश्यी की सम्बोधि		विपश्यी की सम्बोधि	
विपश्यी की सम्बोधि	अश्वारोही	मृगदाव में प्रथम उपदेश या धर्मचक्र-प्रवर्तन (मूलतः यह पृष्ठभाग था)	अश्वारोही	काश्यप की सम्बोधि
	बुद्ध का जन्म		शाक्यमुनि की सम्बोधि	

महापरि-निवार्ण	गजारोही	षड्दन्त जातक (मूलतः यह पृष्ठ भाग था)	गजारोही	महापरि-निर्वाण
	यक्ष-शीर्ष स्वर्ग के विभिन्न दृश्य		यक्ष-शीर्ष महाकपि जातक	
			अध्येषणा	
			इन्द्र का आगमन	

स्तूप १ का पश्चिमी तोरण-द्वार, पृष्ठ भाग

अस्थियों	शार्दूल	की	शार्दूल	यात्रा
	महापरि-निर्वाण		महापरि-निर्वाण	
आसवपायी राजा	सिंहारोही	अस्थियों का (मूलतः यह सम्मुख भाग था)	सिंहारोही	विभाजन
	प्रथम उपदेश		महापरि-निर्वाण	
देवगण	शार्दूल	देव गण, बोधिमण्ड और (मूलतः यह सम्मुख भाग था)	शार्दूल	मार-विजय

भीतरी भाग

	श्याम जातक		बुद्ध की ६ वर्ष की तपस्या, संबोधि एवं मार-विजय	
	मत्स्य शार्दूल-नौका में बुद्ध के अस्थि-अवशेष		कपिलवस्तु के	

	नया भाग		न्यग्रोधाराम में बुद्ध का आगमन	
			शाक्यों की दीक्षा	
			विरूपाक्ष	

स्तूप ३ : सम्मुख भाग

कुम्भाण्ड	वृषारोही	कुम्भाण्ड (मूलतः यह पृष्ठ भाग था)	वृषरोही	कुम्भाण्ड
			बुद्ध का जन्म	
पंच	अश्वारोही	मानुषी	अश्वारोही	बुद्ध
	प्रथम उपदेश		विपश्यी की संबोधि	
	मकर और योद्धा	मेरुपर्वत पर इन्द्र का स्वर्ग नन्दन वन, वैजयंत प्रासाद और मंदाकिनी नदी या अनवतप्त सरोवर, पांचिक और हारीती तथा नाग-नागी	मकर और योद्धा	
	महापरि-निर्वाण		प्रथम उपदेश	
	स्वर्ग के दृश्य		स्वर्ग के दृश्य	
	स्वर्ग के दृश्य		स्वर्ग के दृश्य	

स्तूप ३ : पृष्ठ भाग

शार्दूल	दो मानुषी बुद्ध (खण्डित) (मूलत: यह सम्मुख भाग था)		शार्दूल
प्रथम उपदेश			
गजारोही	योद्धा, शार्दूल, कमल-बेल		गजारोही
महापरि- निर्वाण			महापरि- निर्वाण
सिंहारोही		कुम्भाण्ड	सिंहारोही
१. विपश्यी की संबोधि	१. शिखी की संबोधि	कमल के फुल्ले (पूर्वी स्तम्भ का पूर्वी मुख)	१. प्रथम उपदेश
२. स्वर्ग के दृश्य	२. स्वर्ग के दृश्य		२. शाक्यमुनि की सम्बोधि
३. द्वारपाल (पश्चिमी स्तम्भ का पूर्वमुख)	३. द्वारपाल (पूर्वी स्तम्भ का पश्चिम मुख)		३. पांचिक और हारीती (पश्चिमी स्तम्भ का उत्तर मुख)

चित्र-सूची

२६. पूर्वी तोरण-द्वार, दक्षिणी स्तम्भ, उरुवेलाग्राम

२७. पश्चिमी तोरण-द्वार, दक्षिणी स्तम्भ, सम्बोधि, मार-विजय तथा कपिलवस्तु एवं न्यग्रोधाराम में बुद्ध का आगमन

२८. उत्तरी तोरण-द्वार, पूर्वी स्तम्भ, श्रावस्ती-चमत्कार एवं आमोद-प्रमोद के दृश्य।

२९. स्तूप ३ का तोरण-द्वार, सम्मुख भाग, कुम्भाण्ड और कमल की बेल, पंच बुद्ध, पांचिक और हारीती, इन्द्र का वैजयंत प्रासाद और नंदनवन, स्वर्ग के दृश्य

३०. उत्तरी तोरण-द्वार पश्चिमी स्तम्भ, सांकाश्य-चमत्कार

३१. उत्तरी तोरण-द्वार, पश्चिमी स्तम्भ, वैशाली-चमत्कार

३२. पूर्वी तोरण-द्वार, दक्षिणी स्तम्भ, जटिल ब्राह्मणों की दीक्षा

३३. पूर्वी तोरण द्वार, दक्षिणी स्तम्भ, इन्द्रशैलगुहा में बुद्ध; इन्द्र और पंचशिख

३४. पूर्वी तोरण-द्वार, दक्षिणी स्तम्भ, जटिल ब्राह्मणों की दीक्षा

३५. उत्तरी तोरण-द्वार, पश्चिमी स्तम्भ, मल्लों की चैत्यवंदना

३६. दक्षिणी तोरण-द्वार, सम्मुख भाग, जन्म, रामग्राम का स्तूप तथा कुम्भाण्ड और कमल की बेल

३७. पूर्वी तोरण-द्वार, पृष्ठभागः सात बुद्ध, वन्य एवं पालतू पशुओं के बीच बुद्ध; रामग्राम का स्तूप

३८. उत्तरी तोरण-द्वार, ऋष्यश्रृंग, एकश्रृग या अलंबुस जातक

३९. पश्चिमी तोरण-द्वार, महाकपि जातक, अध्येषणा

४०. पूर्वी तोरण-द्वार, गृद्धकूट में बुद्ध के पास सम्राट बिंबिसार या अजातशत्रु का आगमन

४१. उत्तरी तोरण-द्वार, पूर्वी स्तम्भ, द्वारपाल यक्ष कुबेर

४२. पश्चिमी तोरण-द्वार, दक्षिणी स्तम्भ, द्वारपाल यक्ष विरूपाक्ष

४३. पूर्वी तोरण-द्वार, शालभंजिका

४४. उत्तरी तोरण-द्वार, पूर्वी स्तंभ, बुद्ध-पाद, त्रिरत्न एवं प्रमाण-लट्ठि

४५. विहार-मंदिर ४५, बुद्ध-मूर्ति

४६. नागराज

४७, बुद्ध

४८. पद्मपाणि

४९. बुद्ध

५०. बुद्ध

५१. अवलोकितेश्वर-मूर्ति का सिर

५२. बुद्ध

५३. नालागिरि-दमन

५४. विष्णु

५५. घंटापाणि या वज्रसत्व

५६. मंजुश्री

५७. जम्भल
५८. सिंह-शीर्ष (सारनाथ)
५९. स्तूप २ : हाथी
६०. स्तूप २ : हाथी और महावत
६१. स्तूप २ : खपरैल सहित द्वार
६२. स्तूप २ : सिंहनी का बच्चा लिये शिकारी
६३. स्तूप २ : सिंह से लड़ता हुआ योद्धा
६४. स्तूप २ : कुण्डलियों वाला नरनाग
६५. स्तूप २ : अश्वमुखी जातक
६६. स्तूप २ : जन्म
६७. स्तूप २ : नृत्यमयूर
६८. भरहुत-स्तूप का तोरण और भू-वेदिका
६९. स्तूप ३ : तोरण-द्वार : पृष्ठभाग : पश्चिमी स्तम्भ . पांचिक हारीती का परिवार
७०. स्तूप १ : पूर्वी तोरण-द्वार के पीछे स्थापित गुप्तकालीन बुद्ध
७१. उदयगिरि, सातवीं गुफा, विष्णु और कार्तिकेय
७२. साँची और आस-पास के स्तूप समूह
७३. साँची के स्मारक, पुराने मार्ग तथा सरोवर
७४. अशोक कालीन ईंटों का स्तूप १.
७५. मध्यप्रदेश के प्राचीन स्थल-मार्ग
७६. साँची के अभिलेखों में वर्णित कुछ नगरों और ग्रामों के वर्तमान नाम (मध्यप्रदेश)
७७. नागौरी की नाग-मूर्ति
७८. दीपङ्कर जातक

संग्रहालय की मूर्तियों की सूची

क्रमांक-संख्या	नाम
२८६८	अशोक-स्तम्भ का सिंह-शीर्ष
२७४६—४९	अशोक-स्तूप के छत्र-खण्ड
२८०९	अशोककालीन कटोरा
२७५५ अ—२८४५	स्तूप २ की वेदिका
२७८३—८४	शालभंजिका यक्षी
२८६७—२७९८	शालभंजिका यक्षी
२६७८	तोरणद्वार का छोटा स्तम्भ
२६७९	चामरधारी का सिर
२७७७	गजारोही

२७१२	वेदिका-उष्णीष
२७८५	बोधिसत्त्व
२७१५	बोधिसत्व
२८५९	नागराज
२८५८	नागराज
२७०१	बुद्ध
२७६१	बुद्ध
२८०८	शीर्षक
२८५७	पद्मपाणि बोधिसत्त्व
२८४८	पद्मपाणि बोधिसत्त्व
२७०१	बुद्ध
२८०१	बुद्ध
२७६०	बुद्ध
२७२०	वज्रपाणि बोधिसत्त्व
२७७१	बुद्ध
८३२	बुद्ध
८३१	अवलोकितेश्वर बोधिसत्त्व
२७६७	बुद्ध
२७८६	बुद्ध
२८५५	नालागिरि-दमन
२७७६	बुद्ध
२७८०	बुद्ध
२७७४	पद्मपाणि बोधिसत्त्व
२५७२	विष्णु
२७७५	बुद्ध
२८०३	तारा
२७६६	बुद्ध
२७६२	अलंकृत शिलाखण्ड
२७७६	घंटापाणि या वज्रसत्त्व
२७७०	मञ्जुश्री
२७६४	बुद्ध
२६७४	अग्नि
८३९	देवी-मूर्ति
२१११	कटार
२१२५	तीरों के फल
२०६४	छुरे

२०६४—२०५२	छेनियाँ
२०५१	निहाई
१२३	कन्नी
२०५०	संड़सी
२०७२—७३	ताले-चाभियाँ
२०७८	जंजीरें
२१६१	हंसिया
२०४२	हलों के फल
२३६७	बक्खर
२८७१	शिव
२८७०	गजलक्ष्मी
२८६९	कृष्णजन्म
२८०५	कुबेर
२८०४	वरुण
२७२३	निर्ऋति
२८०२	तारा
२७६५	तारा
२८७२—७३—७४	द्वारपाल
२६३८	चंदा तारा
२७८१	जम्भल
३७३	विष्णु
३८७	आदितिमाता
३८०	गणेश
३९२,३८१	महिषमार्दिनी दुर्गा
२८५०	शुंगकालीन स्तम्भ-शीर्ष
२७२८	मैत्रेय बोधिसत्व
२७३८	बुद्ध
२८७८	वराह
२८५६	बुद्ध
२८६३	द्वारशाखा
२७१६	बुद्ध
२७२६	हाथी
२७६२	नलागिरि-दमन
२७७३	जम्भल या कुबेर
४५५	आरेखन
७०२	वेदिका-स्तम्भ

८४०	बोधिसत्व
८४२	देवमूर्ति
७८७	यक्षी
८०१	पद्मपाणि बोधिसत्व
८३४	देवी-मूर्ति
९३६	द्वारशाखा
९५०	बोधिसत्व
११८६	मैत्रेय-बोधिसत्व
९६१	यक्ष
९५६	शिव
१११४	हारीती
२५६८	पुरुषमूर्ति
११० तथा ६५, २७३२	अस्थिमंजूषाओं के ढक्कन
२३७०	अस्थिमंजूषा (गुप्तकालीन)
२३६९	सांची
२६५८, ९२२, २६२५	दीपङ्कर जातक

तकनीकी पारिभाषिक शब्दावली :–

Atlantes, Dwarfs, Goblins	कुम्भाण्ड, कीचक, यक्ष, गण
Apsidal	अर्द्धवृत्ताकार, चाप
Architrare, Lintel, Panel	सिरदल, शहतीर, धन्नी,
Ante-Chamber	उपकक्ष, अंतराल
Addorsed	पीठ-से-पीठ सटाकर उकड़ूं बैठना ।
Attenuation	भंग
Art	शिल्प, कला
Architecture	वास्तु, विन्यास
Abacus	फलक
Aisle	बगल का रास्ता
Amphitheatre	रंगशाला
Ashlar masonry	चौकोर पत्थरों वाला भवन, तराशे पत्थर
Agate	गोमेद
Bust	वक्ष
Building	भवन
Bastion	बुर्ज
Battlements	प्राचीरें, कंगूरे
Basement	अधिष्ठान, पीठ, जगती
Baluster	स्तम्भ
Barrel-vault	गजपृष्ठाकार
Bas-relief	उकेरा हुआ पट्ट
Batter	झुकना, लचना, टेढ़ा होना
Berm	नींव का पत्थर
Bracket	कोष्ठक; टोड़ा
Balance	सतुलन
Concave	अवतल
Convex	उत्तल
Concentric	सकेन्द्र
Centaurs	मानवी घोड़े
Cross-belts	छन्नवीर
Capital	शीर्षक, शीर्ष
Coping Stone	उष्णीष
Cross-bar	सूची
Conventional	रूढ़िगत

Commemorative Stupa	उद्देशिक स्तूप
Characteristic Marks of Buddha	बुद्ध के महालक्षण
Cloak	चीनचोलक, चोगा, आच्छादनक
Creepers	पत्रलताएँ
Cable-moulding	गलता
Canopy	छत्र
Caryatid	शालभंजिका
Cella	कमरा, परिवेण
Chaury, Flywhisk	चामर
Classical	प्रथम श्रेणी का
Clerestory	ऊपर की खिड़कियाँ
Cloister	छतदार बरामदे, विहार
Coffer	भीतरी छत का अलंकरण
Colonnade	स्तम्भों की पंक्ति
Corbel	दो दीवारों से निकलकर परस्पर जुड़ने वाली ईटों का अलंकरण
Cornice	सीका, कंगनी
Coiffure	चूड़ा
Goncepts	मान्यताए, सिद्धांत
Conversion	धर्म-दीक्षा, धर्म-परिवर्तन
Carved	उकेरा हुआ
Dot between Buddha's eyebrows	ऊर्णा
Dome	अण्ड
Die	ठप्पा
Doorjamle	द्वारशाखा
Door-Lintel	ललाट-बिम्ब
Dado	पीठ के बीच का भाग
Dry-masonry	बिना गारा, चूना के जुड़े हुए पत्थर या ईंटे।
Duplicates	प्रतिकृतिया
Degenerate	निम्नस्तरीय
Donors	दानपति
Enlightenment	संबोधि
Elephant-and-leogryph.	गजव्याल
Entemblature	प्रस्तर
Eaves	छज्जा, कपोत
Existence	अस्तित्व

Folds, Facets	सलवटें
Fabric	बनावट
Festoons	झालों और मालाएं
Feat	चपटी, सपाट
Figure-Carving	रूपकर्म्म
Finial, Hti	स्तूपी, स्तूपिका
Frieze	छत के नीचे वाला खण्ड
Facade	सम्मुख भाग
GateWays	तोरणद्वार, प्रतोली
Ground-Railing	भूवेदिका
Great Decease	महापरिनिर्वाण
Gabled Rroof	गजपृष्ठाकार छत
Groups	समूह
Half-Medalhion	अर्द्धफुल्ला
Honey-Suckle	मुचकुन्द या मधुमालती लता
HighWay	महामार्ग
Inscription, Epigraph	अभिलेख
Incarnation	अवतार
Image	प्रतिमा, मूर्ति, आकृति
Ivory-Carvers	दंतकार
Incised	उत्कीर्ण
Language	भाषा
Link	संधि, कड़ी
Light-and-Shade Method	अंधेरे-उजाले का क्रम
Legend, Record	मुद्रालेख
Lenticular cross-bar	मसूराकार सूची
Monument	स्मारक
Monolithic	एकाश्म
Monastery	विहार, संघाराम, चतुशाला
Medallion	फुल्ला
Mould	सांचा
Mortice	छेद
Mythical Animals	ईहामृग
Niche	नासिका, ताखा, आला, गवाक्ष
Nave	मंदिर का केन्द्र-स्थल
Nimbus, Halo, aureole	प्रभामण्डल

Overflowing verrel	पूर्णघट
Obverse	पुरोभाग
Offsets, buttresses	भद्र
One Stupa encasing another	आच्छादन
Pillar, shaft	स्तम्भ
Pilaster	अर्द्धस्तम्भ
Pillaved Hall	मण्डप, वितान
Polish	*ओप
Processionpath	प्रदक्षिणापथ
Performance of Miracle	चमत्कार-प्रदर्शन
Pedestal	वेदी, चौकी, आसन, उपपीठ
Parapet-Wall	प्राकार
Plate	फलक, चित्र
Plan	आकार, आरेखन, मानचित्र
Plinth	पीठ, चबूतरा
Pillared Porch	मुखमण्डप,
Portal	मुखद्वार
Portico	दालान, स्तम्भों से घिरा स्थल
Promenade	चंक्रम, चलने-फिरने का रास्ता
Perspective	
Pillared Verandah	आलिंद
Railing-on-Top	हर्मिका
Relic-Casket, Reliquary	अस्थि-मंजूषा
Reverse	पृष्ठभाग
Relic-stipa	शारीरिक स्तूप
Recreational-Scenes	आमोद-प्रमोद के दृश्य, सांसारिक दृश्य
Recessed	धंसा या दबा हुआ भाग
Renunciation	गृहत्याग
Rampart-Wall	प्राकार
Ribbed	कमरखी
Rosary	अक्षमाला
Robe	चीवर, संघाटी, लबादा
Scarf	उत्तरीय, दुपट्टा, रूमाल
Stairs	सोपान, सीढ़ी, जीना
Slpas enshrining bowl etc.	पारिभोगिक स्तूप

Socket	खांचा
Symbolicat	प्रतीकात्मक
Spot of Enlightenment	बोधिमण्ड
Steffed	सीढ़नुमा
Sanctum Sanctorum	गर्भगृह, देव-स्थान
Sun-shades	सायबान
Scene	फलक, दृश्य
Sketch	रेखा-चित्र
Scrolls	गुच्छे
Stele (Stelae)	ऊर्ध्वपट्ट, मूर्तियों वाला शिलापट्ट
Sluco	बजरी-चूने का पलस्तर
Sfire, Cufola	शिखर
Scueftor	रूपकार, शिल्पी
Slab	पट्ट
Sceftre	दण्ड
Sketching on stone	पत्थर पर आरेखन
Simplification	संक्षेपीकरण
Source	स्रोत
Sfiritual	आध्यात्मिक
Scaliofs	हस्तिनख
Script	लिपि
Stupa, Dagoba	स्तूप
Transparent	पारदर्शक, झीनी
Tafering	सूच्याकार, शुण्डाकार
Terrace, Basal cylinder	मेधी
To carve in relief	उकेरना
Temple	देवालय, देवगृह, मंदिर, देवकुल, देवायतन, प्रासाद, गंधकुटी, हर्म्य
Temple of fine shrines	पंचायतन
Trinity, Triratna	बुद्ध, धर्म, संघ
Thatched hut	पर्णकुटी
Technique, Style	शैली, पद्धति
Tree-nymph	शालभंजिका, यक्षियाँ
Terra cotta Plaques, Seals	मृगमुद्राएं
Trousers	स्वस्थान
Tenon	खूंटा
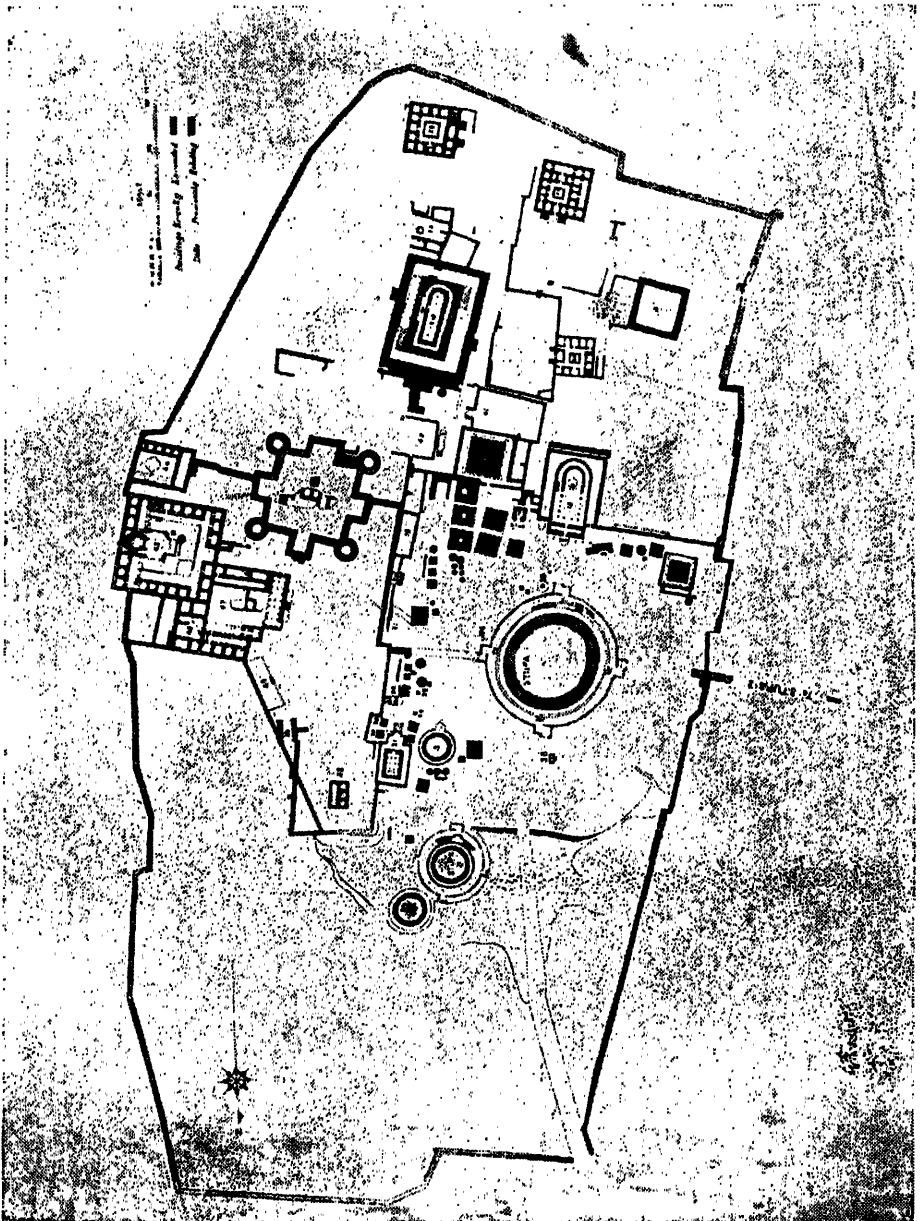
चित्र १

सांची के स्मारक

चित्र २
चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय का अभिलेख

चित्र ३

अशोक-स्तम्भ
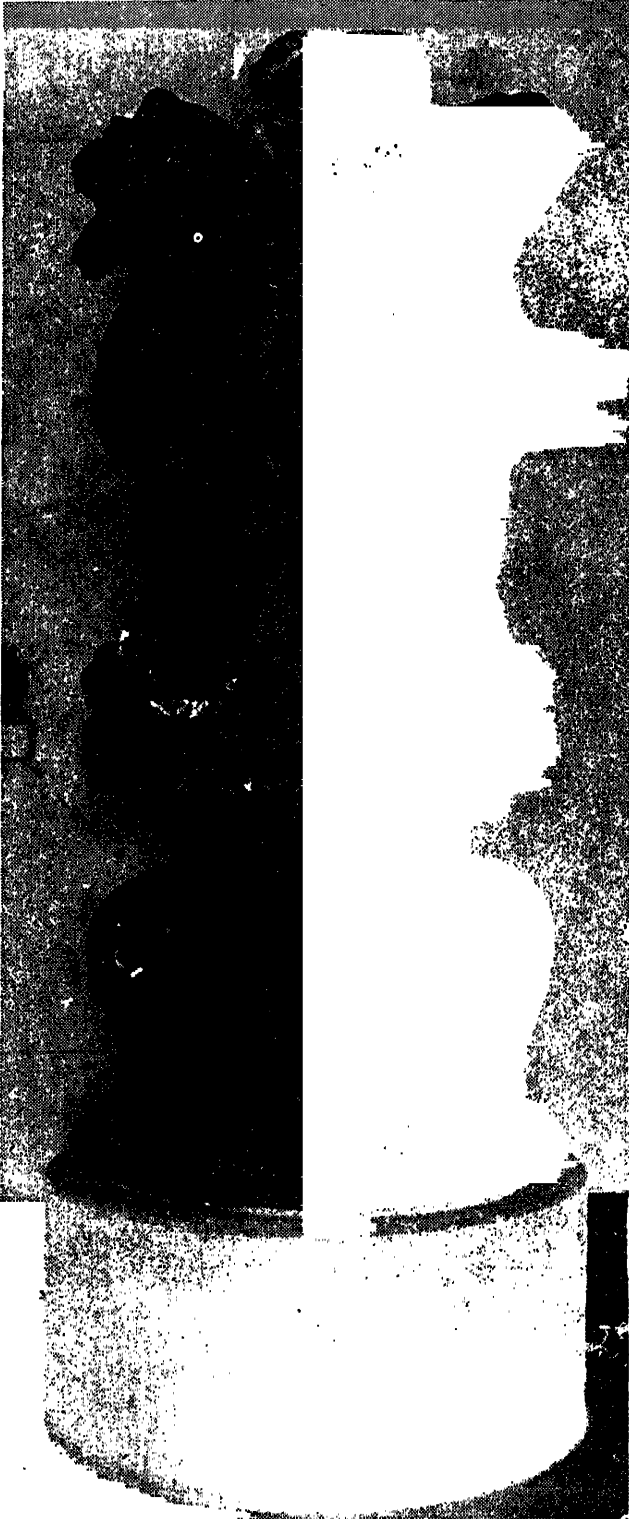
चित्र ४
सिंह-शीर्ष
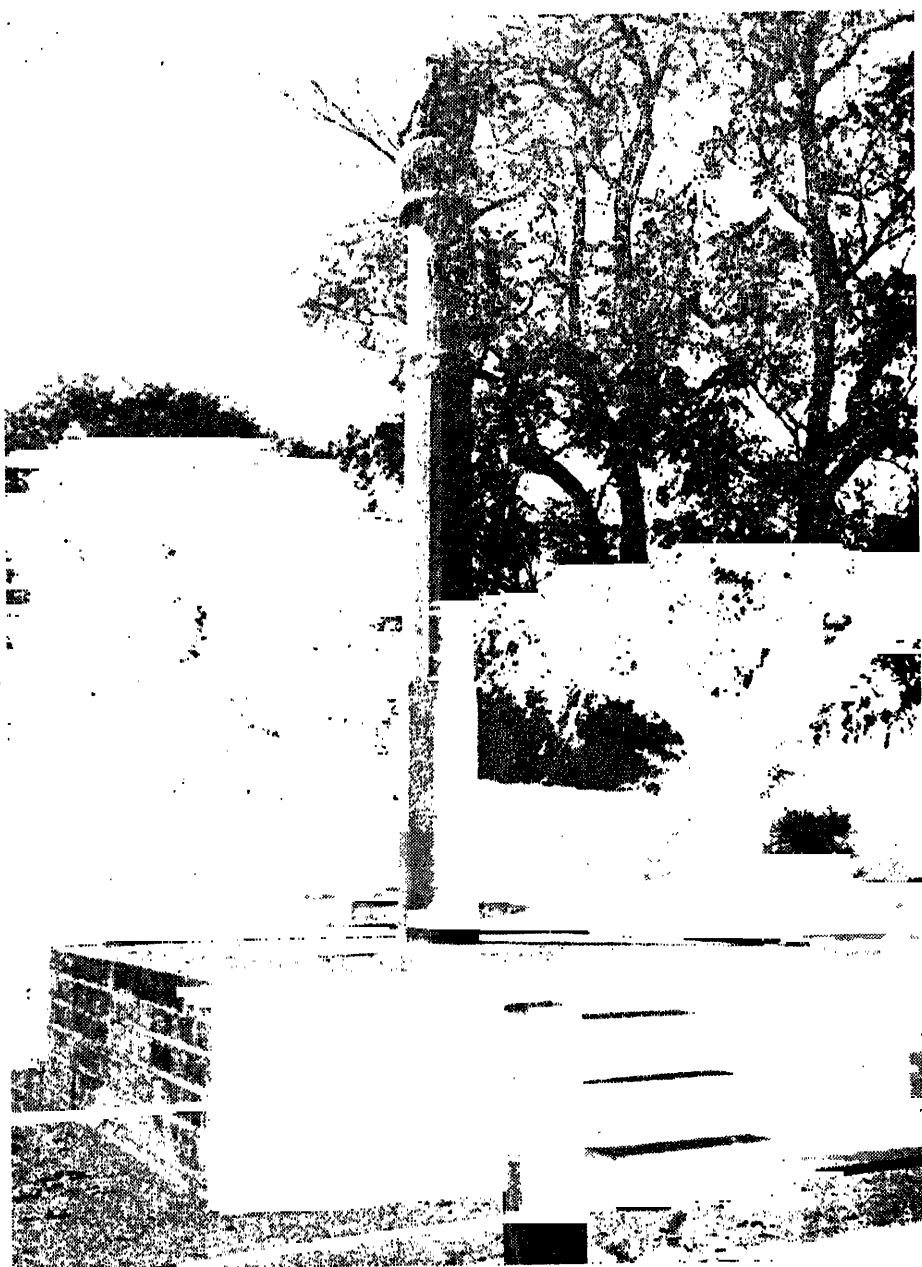
चित्र ५
हेलियोदोर का गरुडध्वज-स्तम्भ

चित्र ६
बोधिसत्व-वज्रपाणि
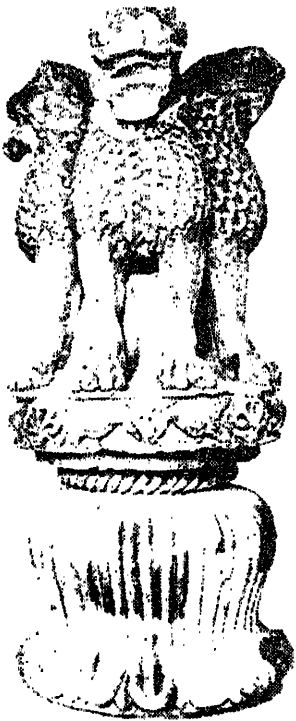
चित्र ७
स्तूप १, अशोक-स्तम्भ
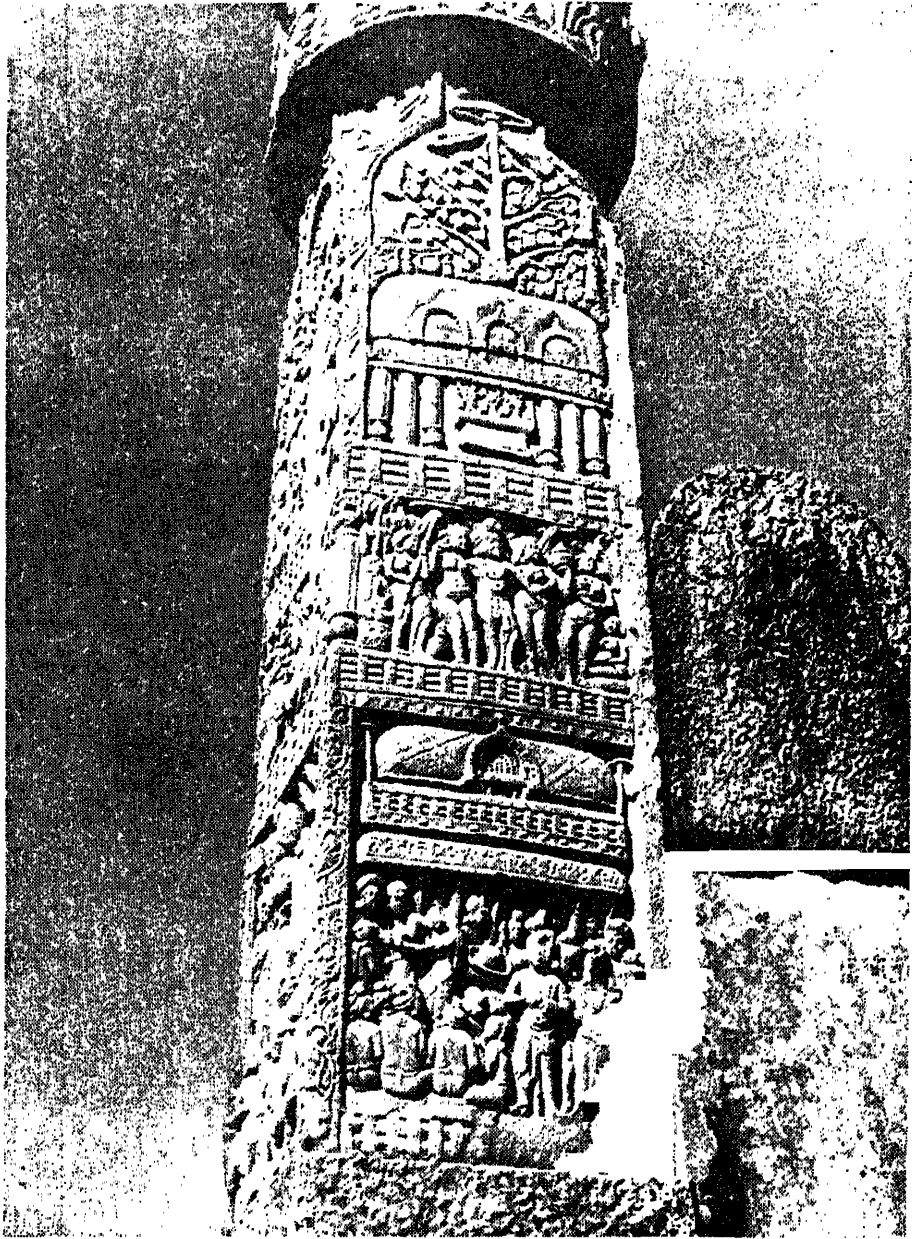
चित्र ८

दक्षिणी तोरण-द्वार, पश्चिमी स्तम्भ, सूखे बोधिवृक्ष के पास मूर्छित अशोक ; विदिशा के
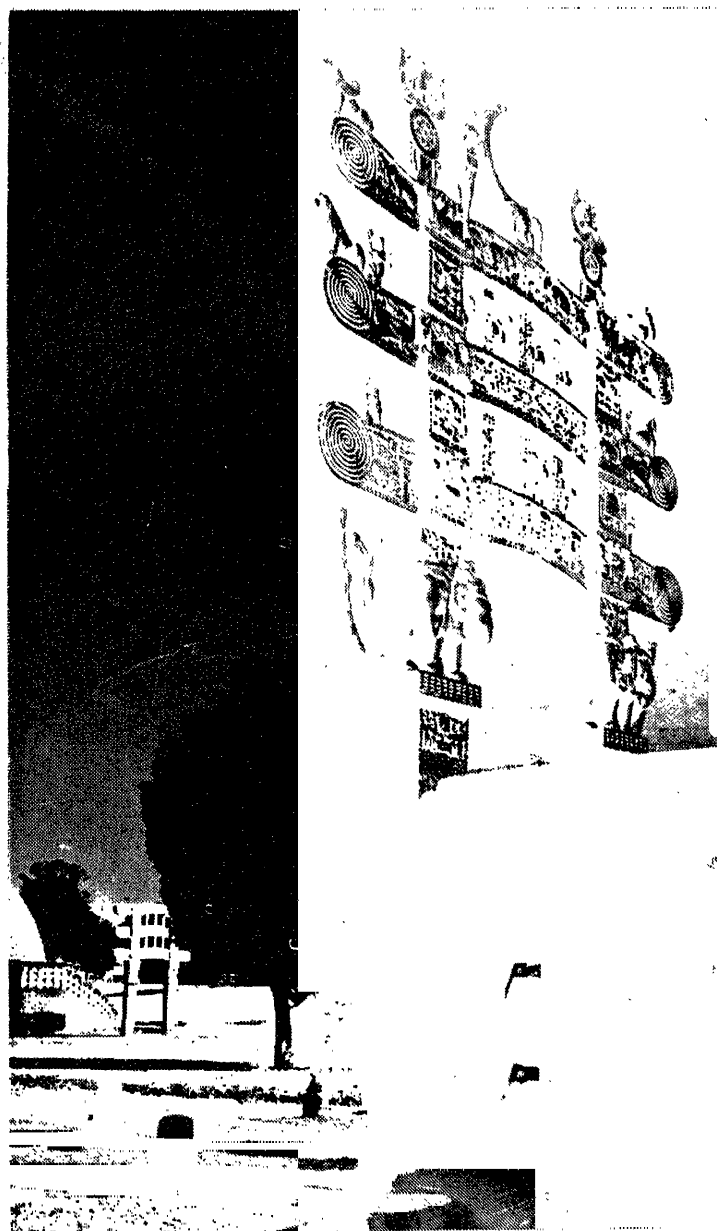
चित्र ९
उत्तरी तोरण-द्वार

चित्र १०

स्तूप २

चित्र ११
स्तूप ३

चित्र १२

मन्दिर १७
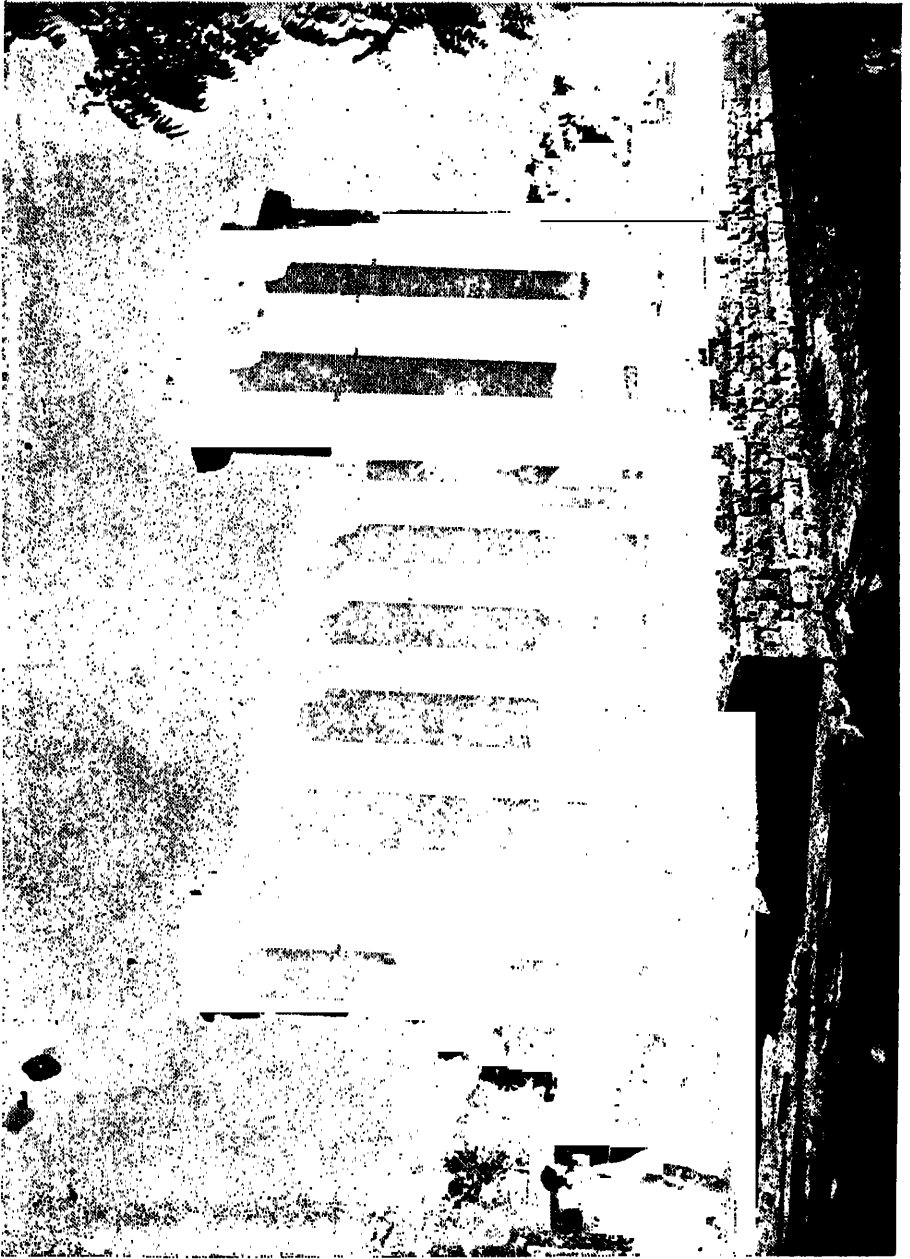
चित्र १३
मन्दिर १८

चित्र १४
मन्दिर ३१ की नागी

चित्र १५
बिहार-मन्दिर ४५
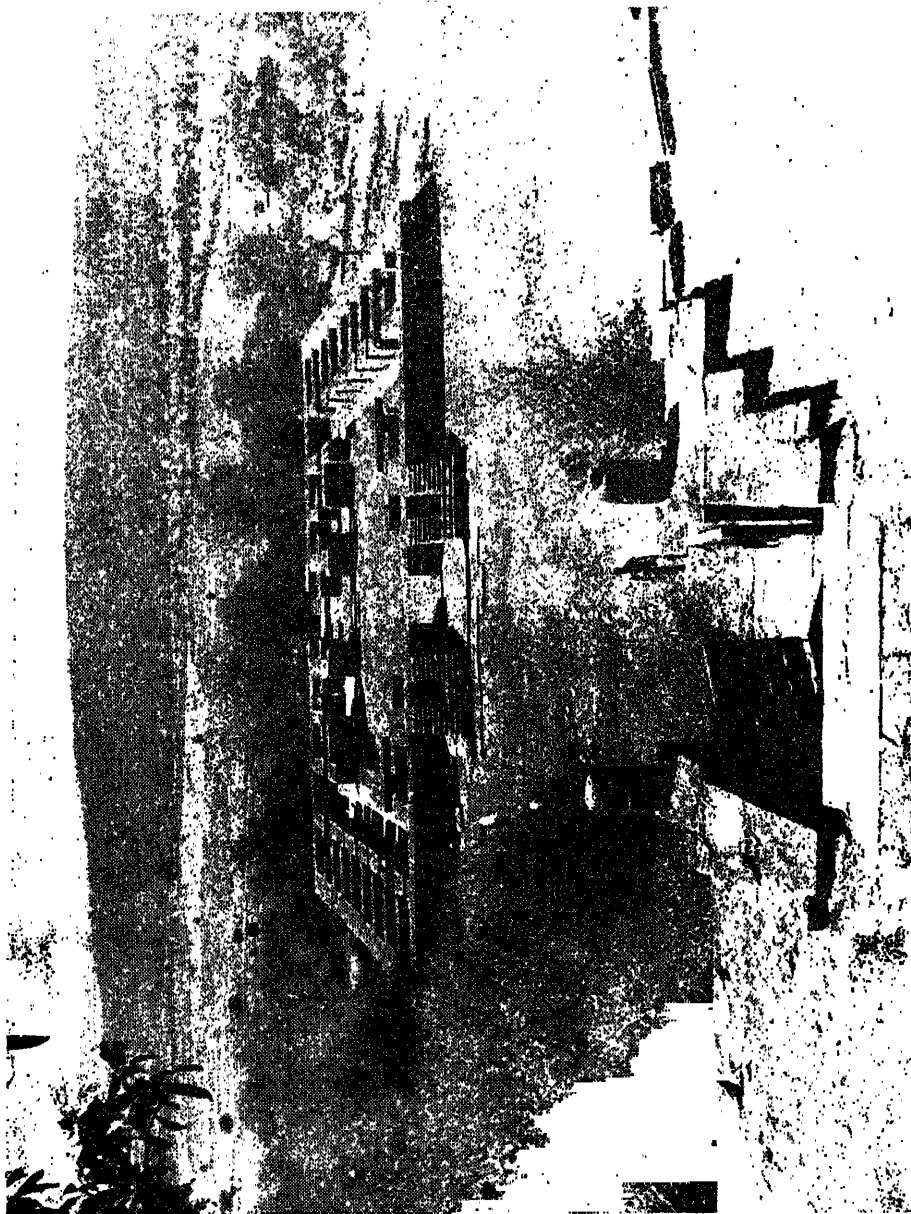
चित्र १६
बिहार ५१

चित्र १७
पाषाण का विशाल भोजनपात्र
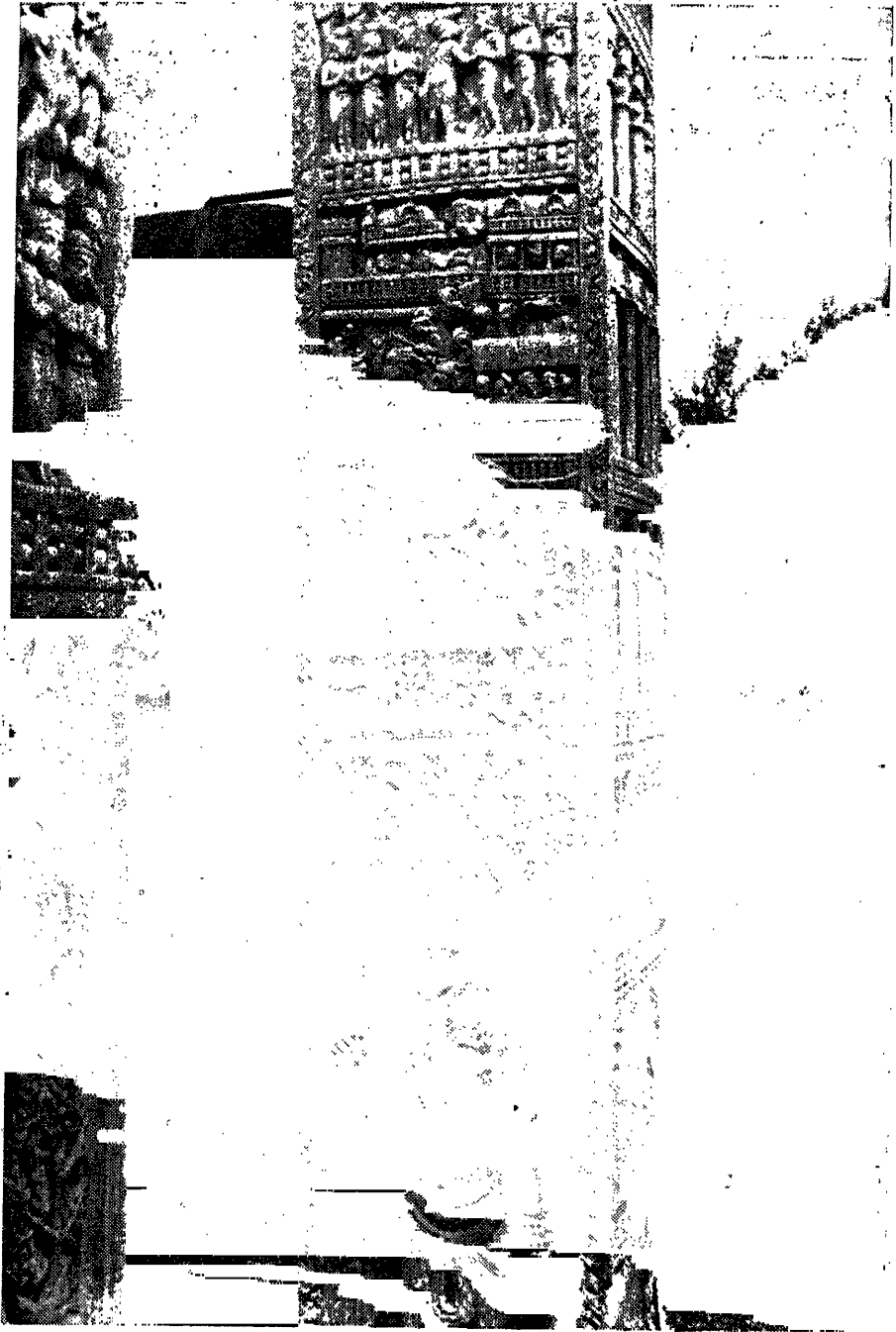
चित्र १८

पूर्वीतोरण-द्वार; उत्तरी स्तम्भ; मायादेवी का स्वप्न; बुद्ध का कपिलवस्तु में आगमन तथा न्यग्रोधाराम में उपदेश

चित्र १६
दक्षिणी तोरण-द्वार; बुद्ध-जन्म
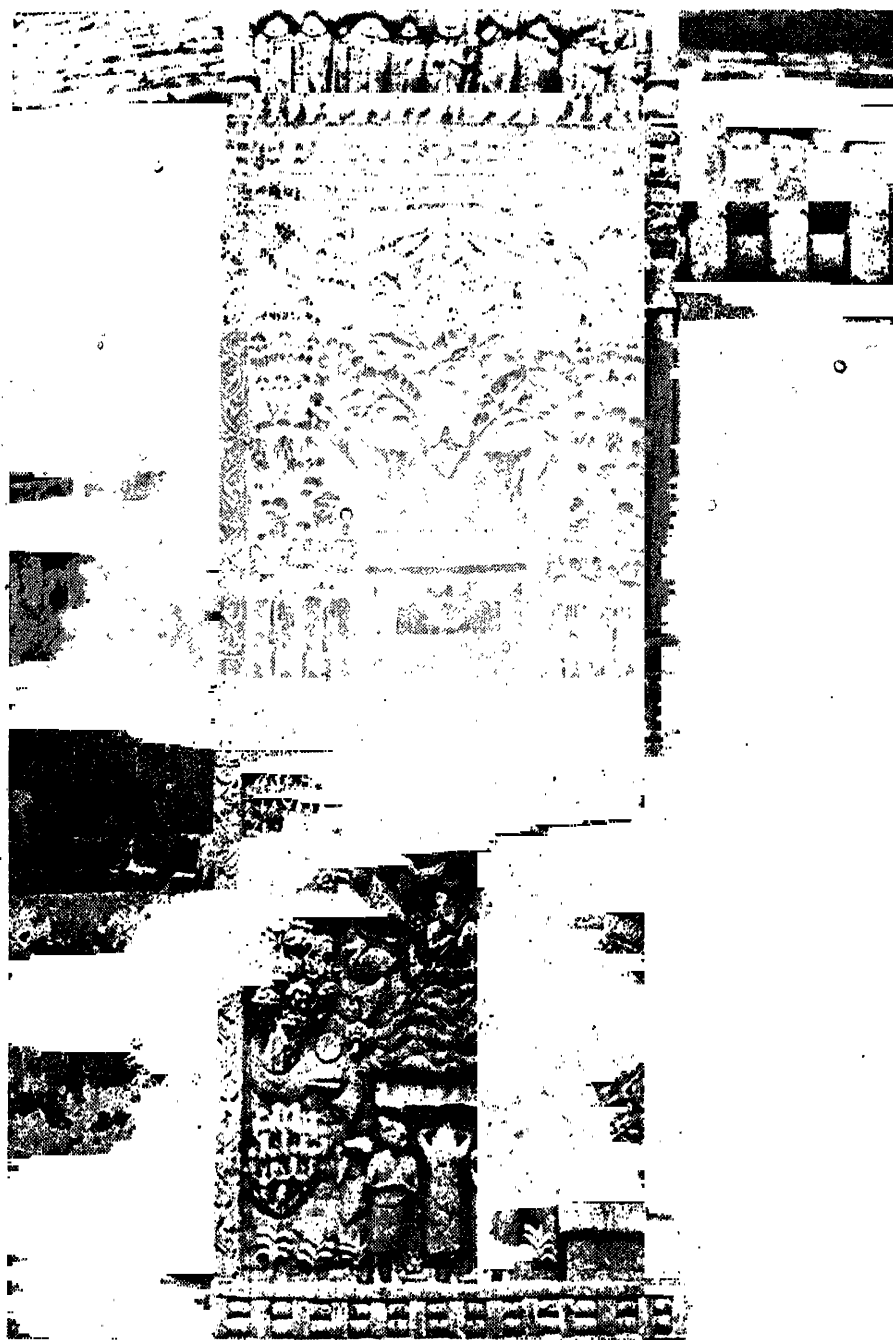
चित्र २२

पूर्वी तोरण-द्वार, दक्षिणी स्तम्भ; सम्बोधि, जटिलब्राह्मणों की दीक्षा (नीरांजना नदीमें बाढ)।
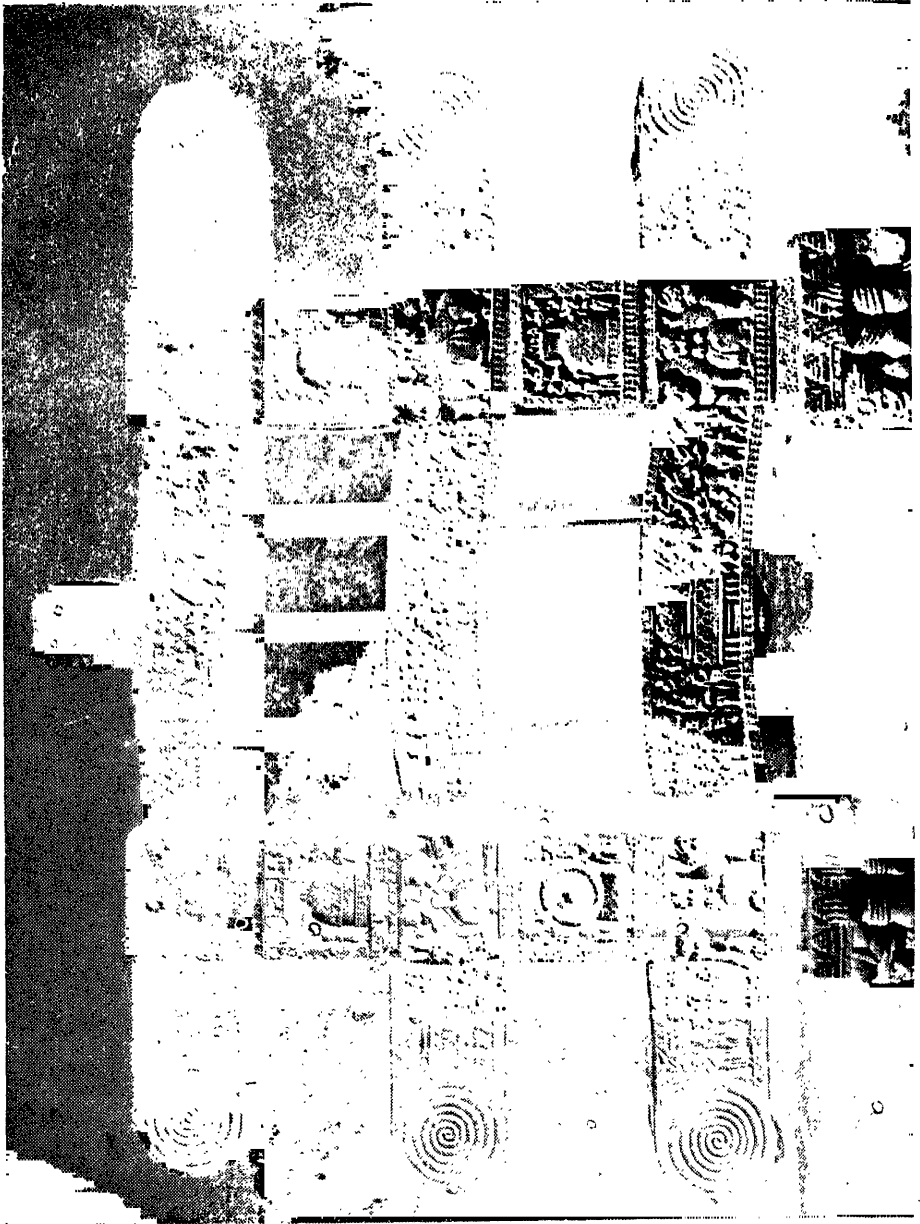
चित्र २३
पश्चिमी तोरण-द्वार ; पृष्ठभाग; अस्थियों की यात्रा; कुशीनारा में बुद्ध की अस्थियों का विभाजन, राजा का आसव-पान; धर्मचक्र प्रवर्तन तथा मार-विजय
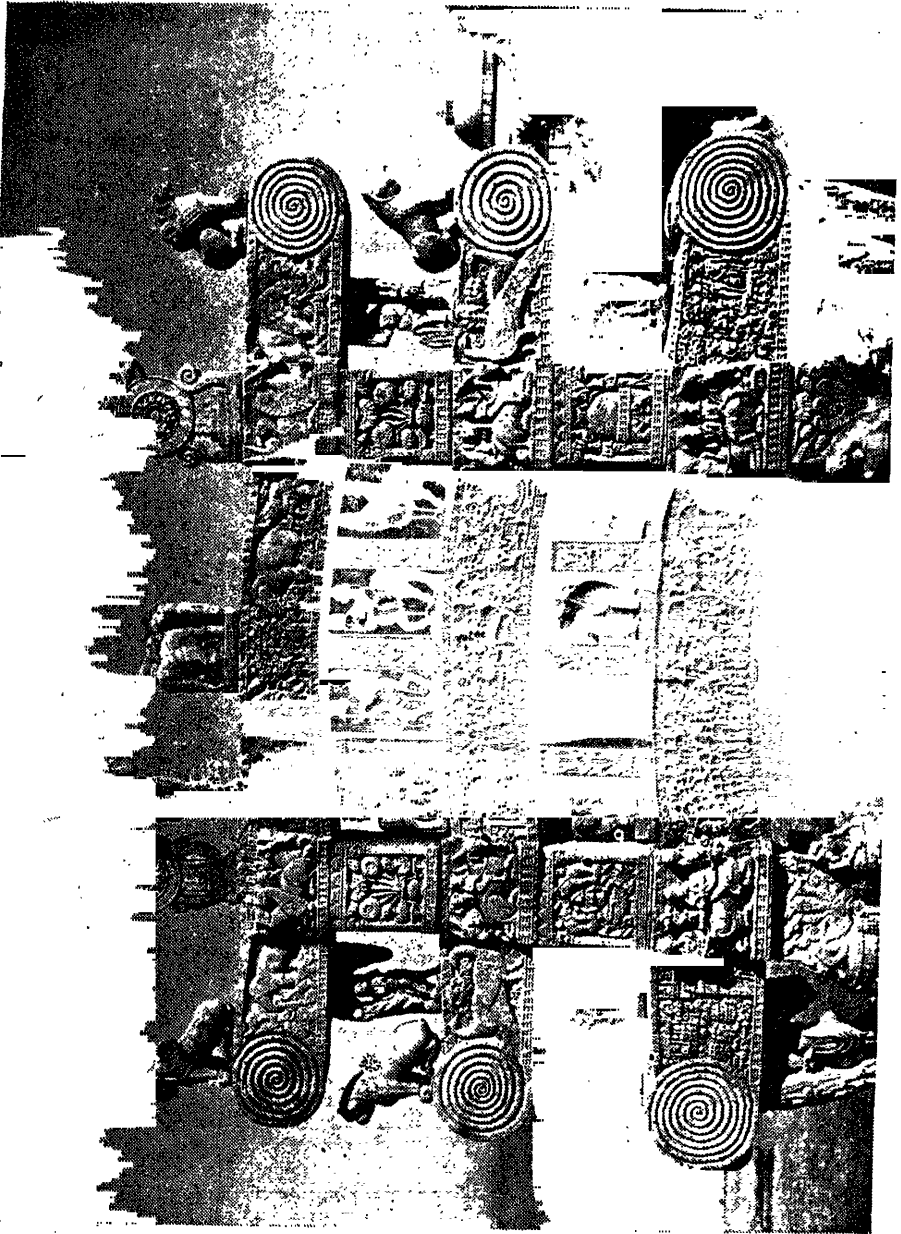
चित्र २४

उत्तरी तोरण-द्वार, पृष्ठभाग, शड्दन्त जातक; सम्बोधि एवं मार-विजय, विश्वन्तर जातक
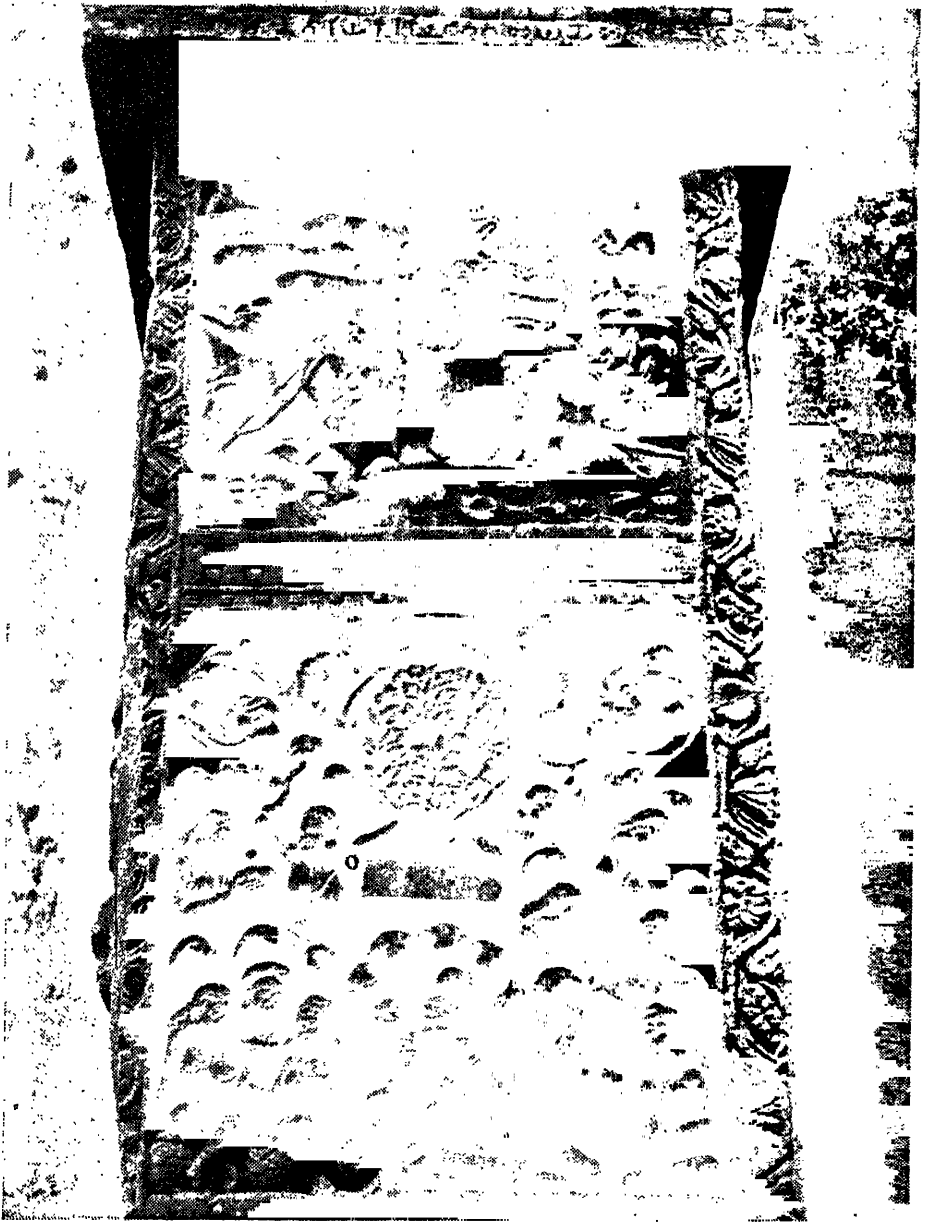
चित्र २५

पश्चिमी तोरण-द्वार, उत्तरी स्तम्भ, श्याम जातक तथा बुद्ध और मुचलिंद

चित्र २६

पूर्वी तोरण-द्वार, दक्षिणी स्तम्भ, उरुवेलाग्राम

चित्र २७

पश्चिमी तोरण-द्वार [illegible] कपिलवस्तु एवं न्यग्रोणाराम में बुद्ध का आगमन
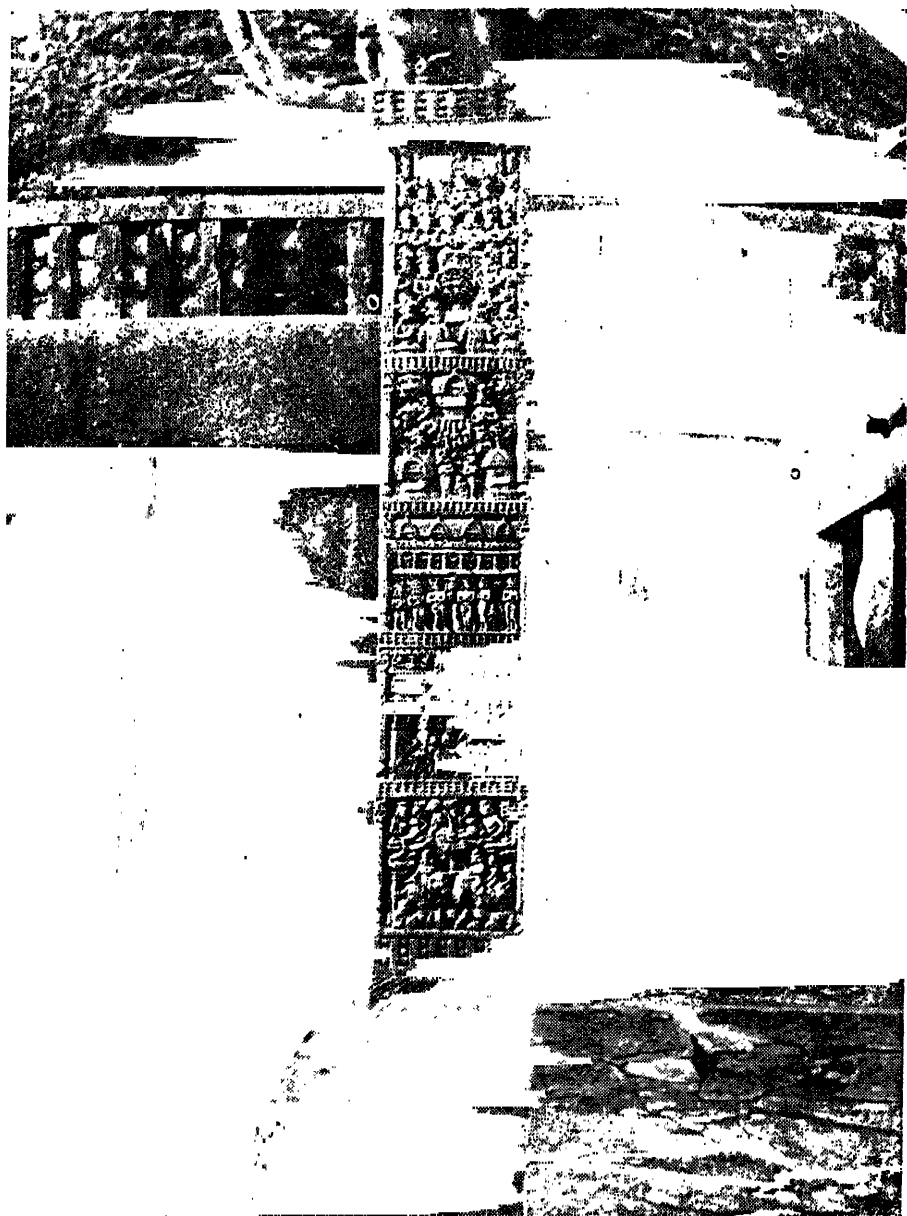
चित्र २८
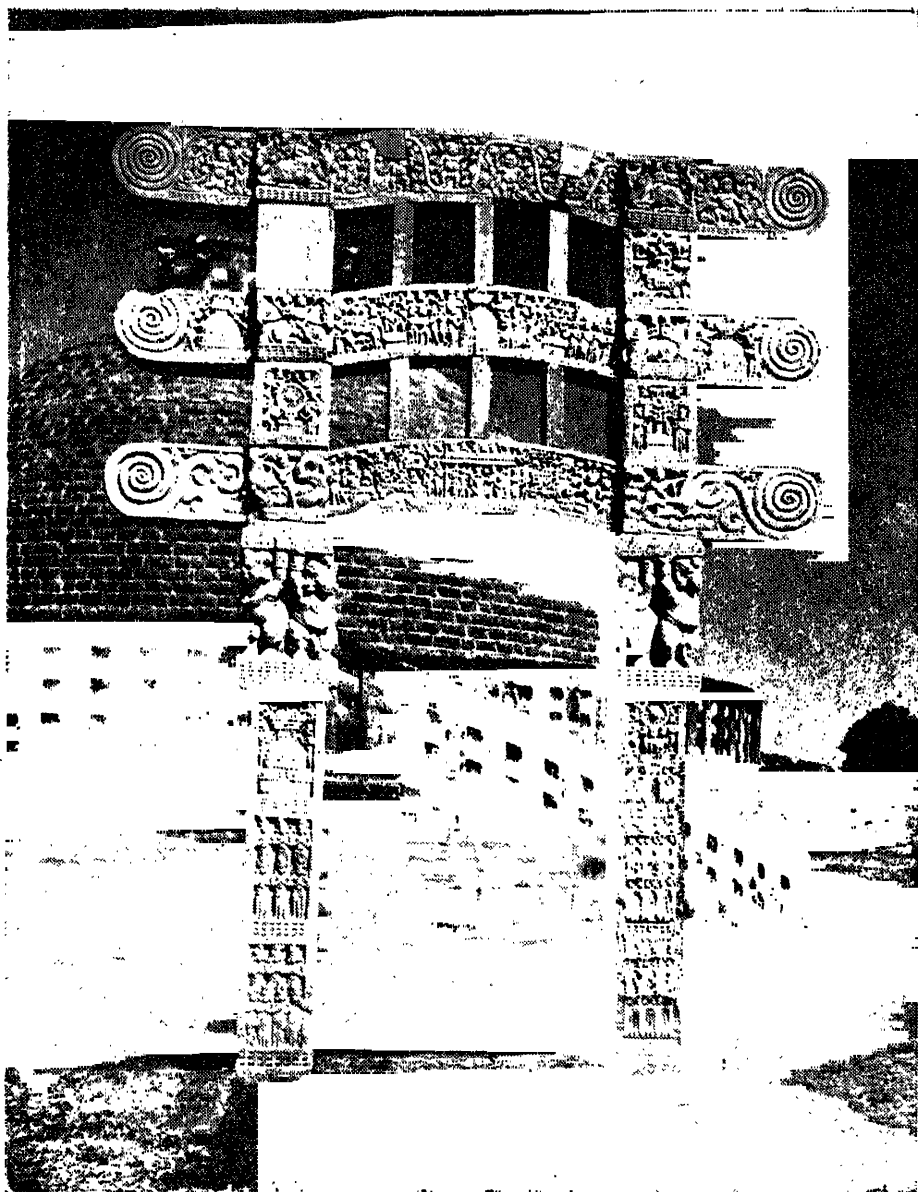
चित्र २९

स्तूप ३ का तोरण-द्वार, सम्मुख भाग, कुम्भाण्ड और कमल की बेल, पंच बुद्ध, पांचिक और हारीती, इन्द्र का वैजयंत प्रासाद और नंदनवन, स्वर्ग के दृश्य

चित्र ३०

उत्तरी तोरण-द्वार पश्चिमी स्तम्भ, सांकाश्य-चमत्कार

चित्र ३१
उत्तरी तोरण-द्वार, पश्चिमी स्तम्भ, वैशाली-चमत्कार
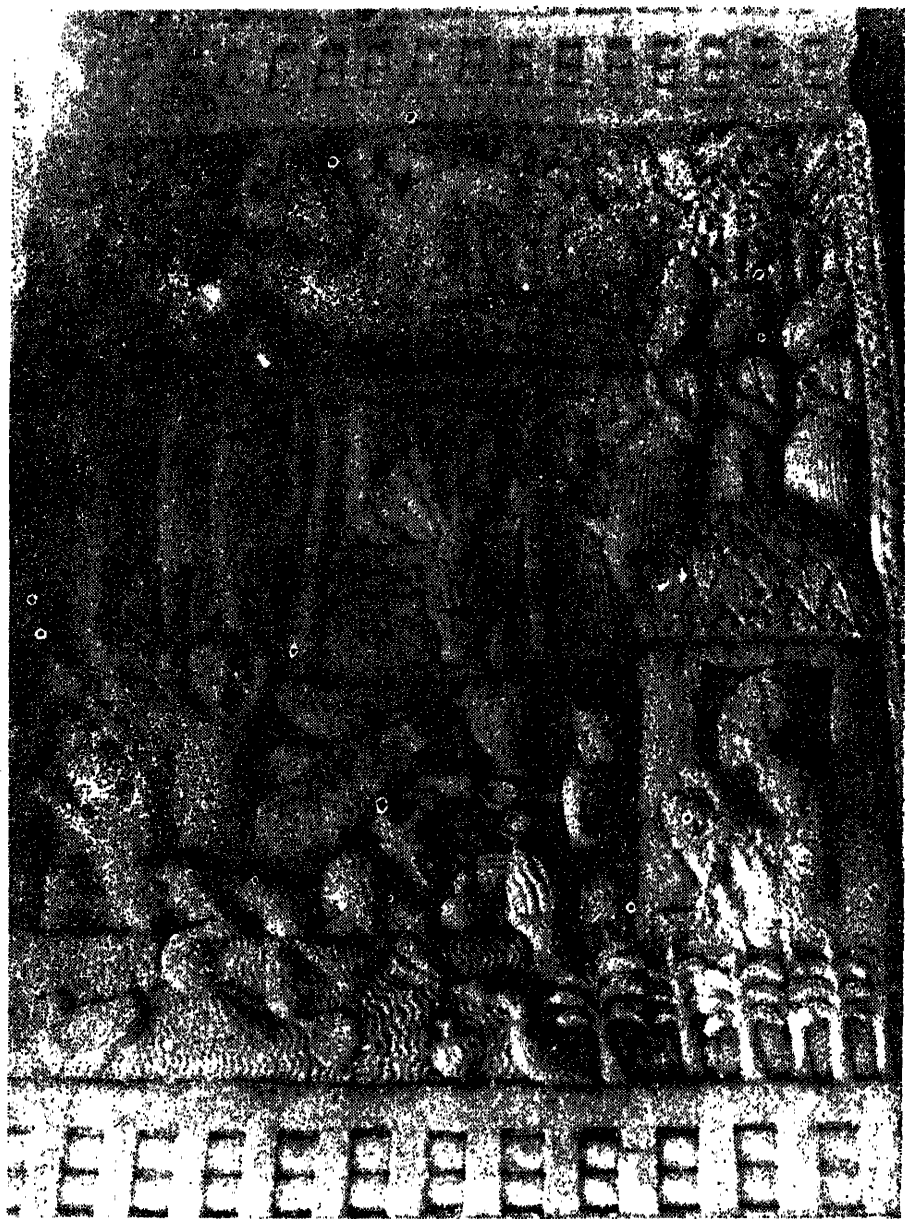
चित्र ३२
पूर्वी तोरण-द्वार, दक्षिणी स्तम्भ, जटिला ब्रह्मणों की दीक्षा
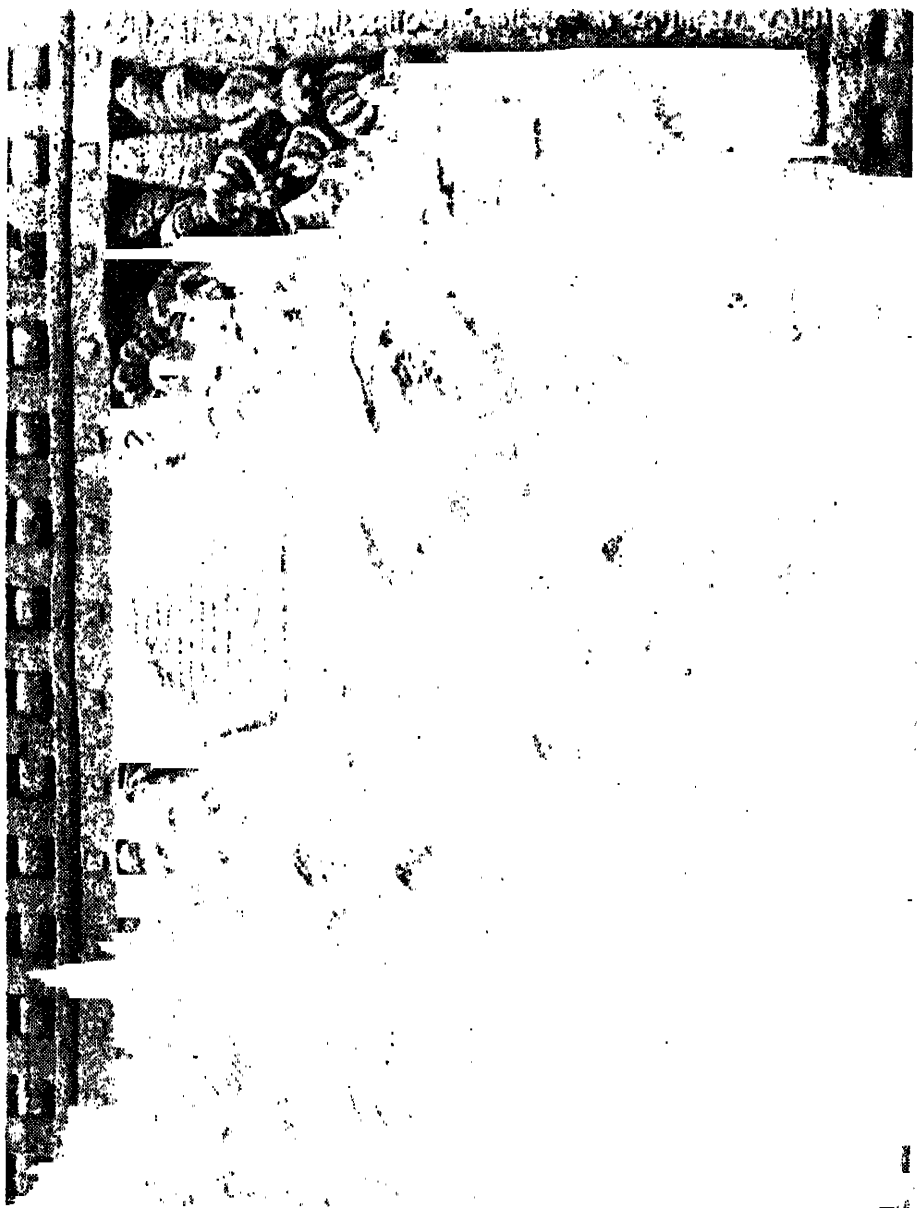
चित्र ३३

पूर्वी तोरण द्वार, दक्षिणी स्तम्भ, इन्द्रशैलगुहा में बुद्ध ; इन्द्र और पंचशिख

चित्र ३४
पूर्वी तोरण- द्वार, दक्षिणी स्तम्भ, जटिल ब्राह्मणों की दीक्षा
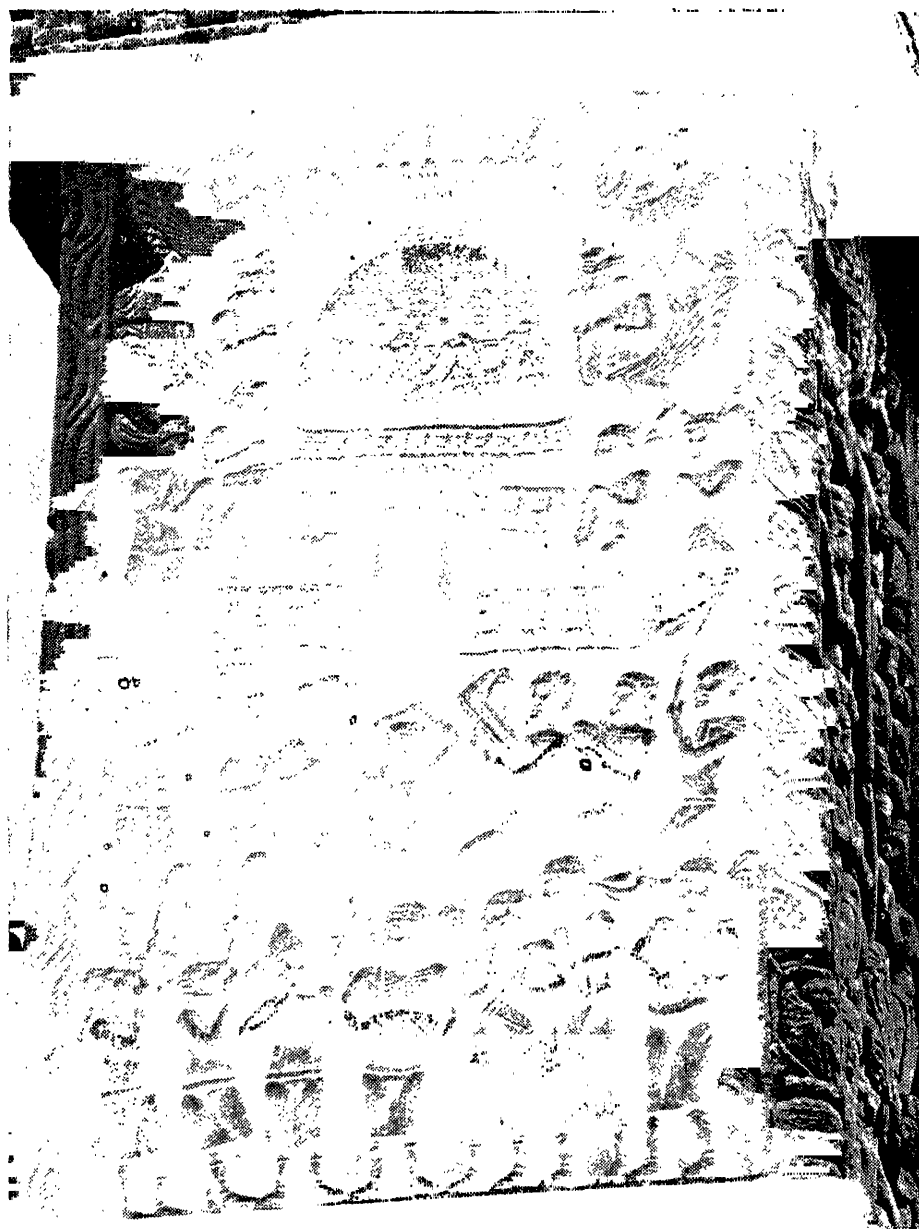
चित्र ३५
उत्तरी तोरण-द्वार, पश्चिमी स्तम्भ, मल्लों की चैत्यवंदना
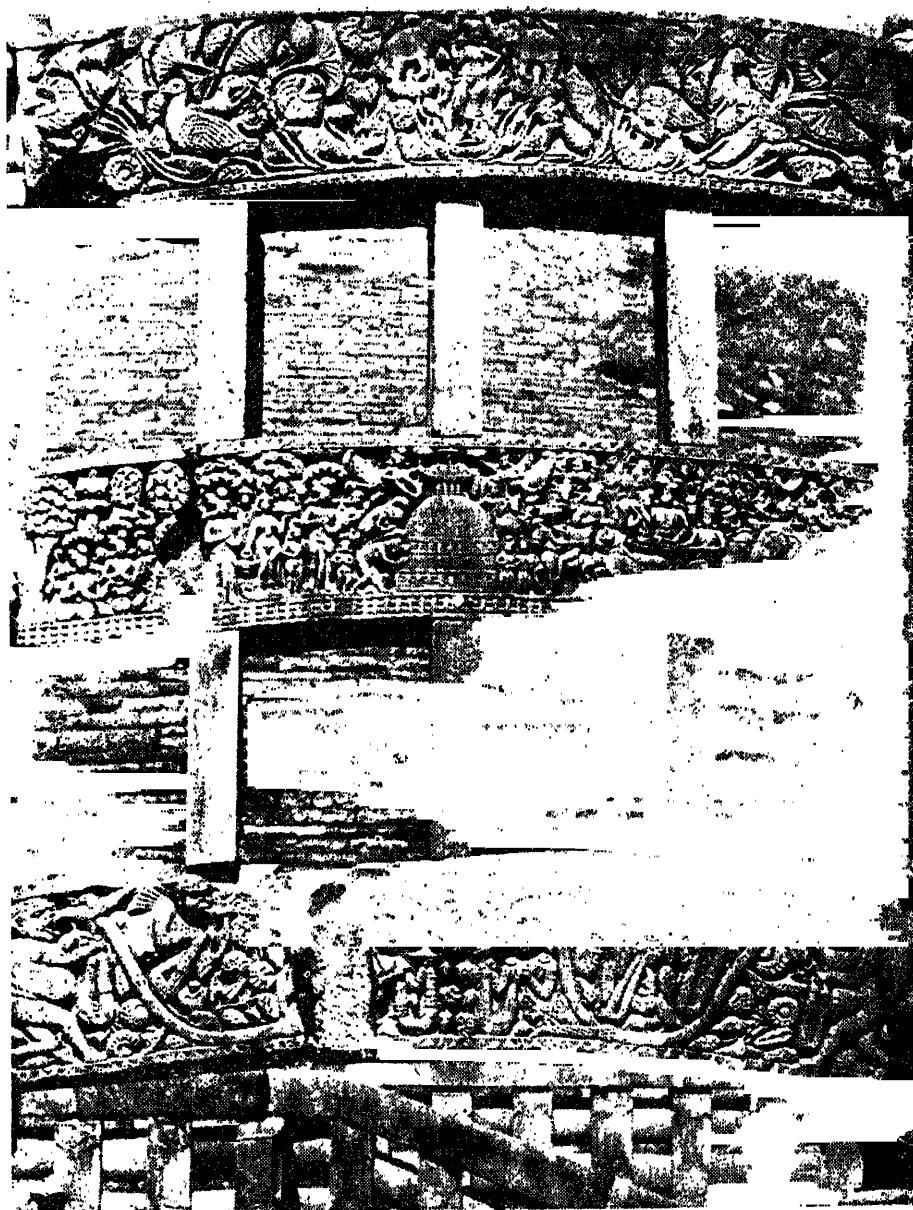
चित्र ३६

दक्षिणी तोरण-द्वार, सम्मुख भाग, जन्म, रामग्राम का स्तूप तथा कुम्भाण्ड और कमल की बेल
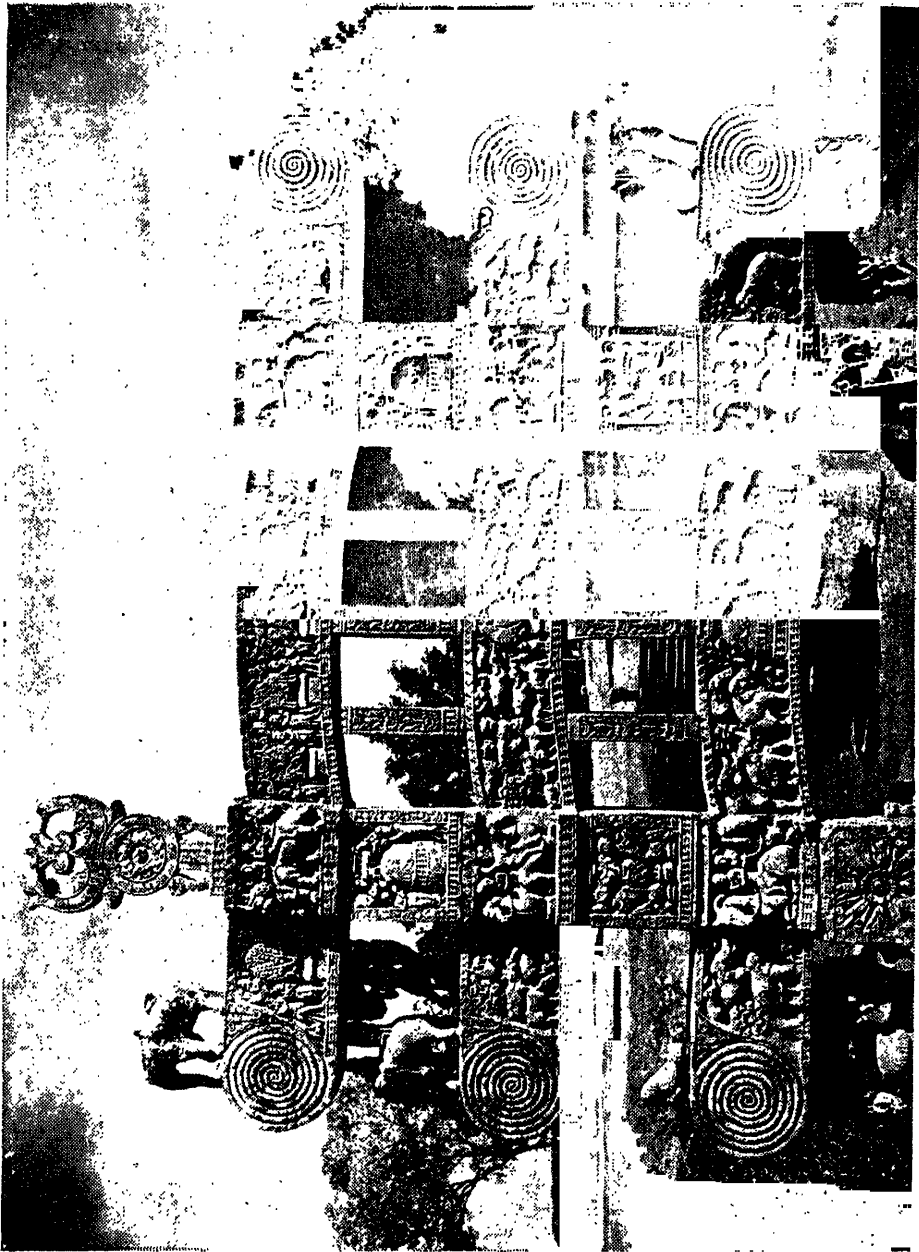
चित्र ३७

पूर्वी तोरण-द्वार, पृष्ठभाग : सात बुद्ध, वन्य एवं पालतू पशुओं के बीच बुद्ध ; रामग्राम का स्तूप
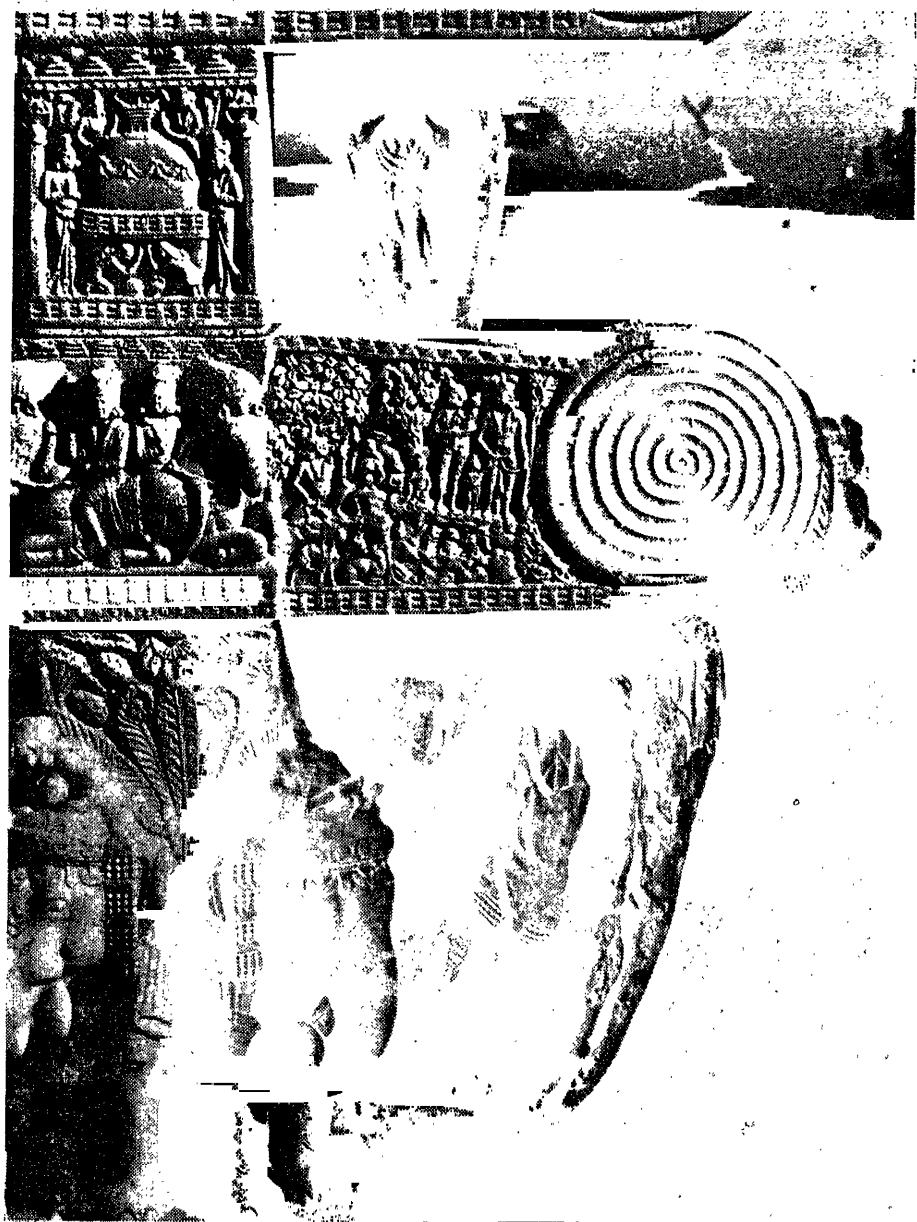
चित्र ३८
उत्तरी तोरण-द्वार, ऋष्यश्रृंग या अलंबुस जातक
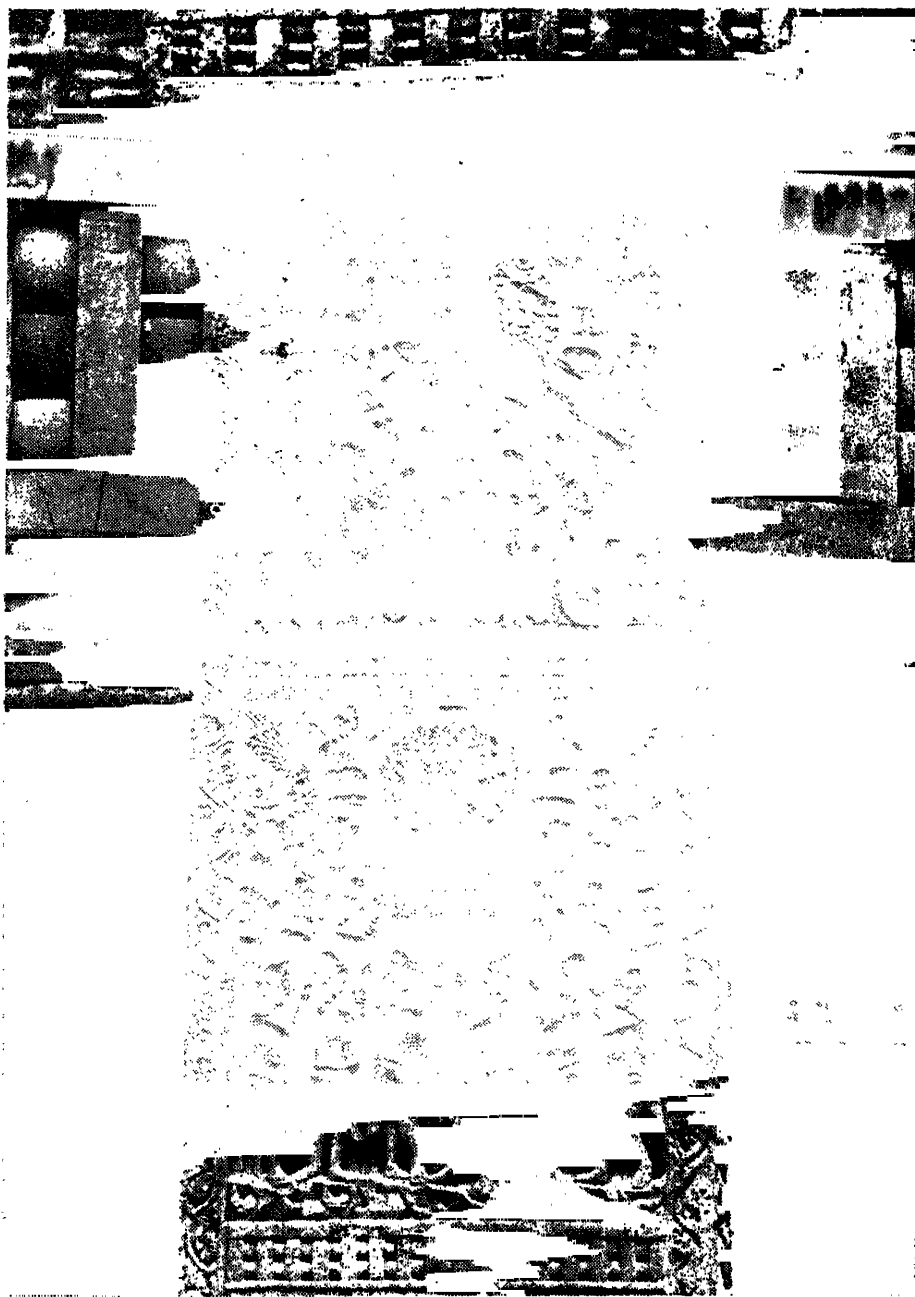
चित्र ३६

पश्चिमी तोरण-द्वार, महाकपि जातक, अध्येषणा

चित्र ४०

पूर्वी तोरण-द्वार गृद्धकूट में बुद्ध के पास सम्राट बिंबिसार या अजातशत्रु का आगमन

चित्र ५१
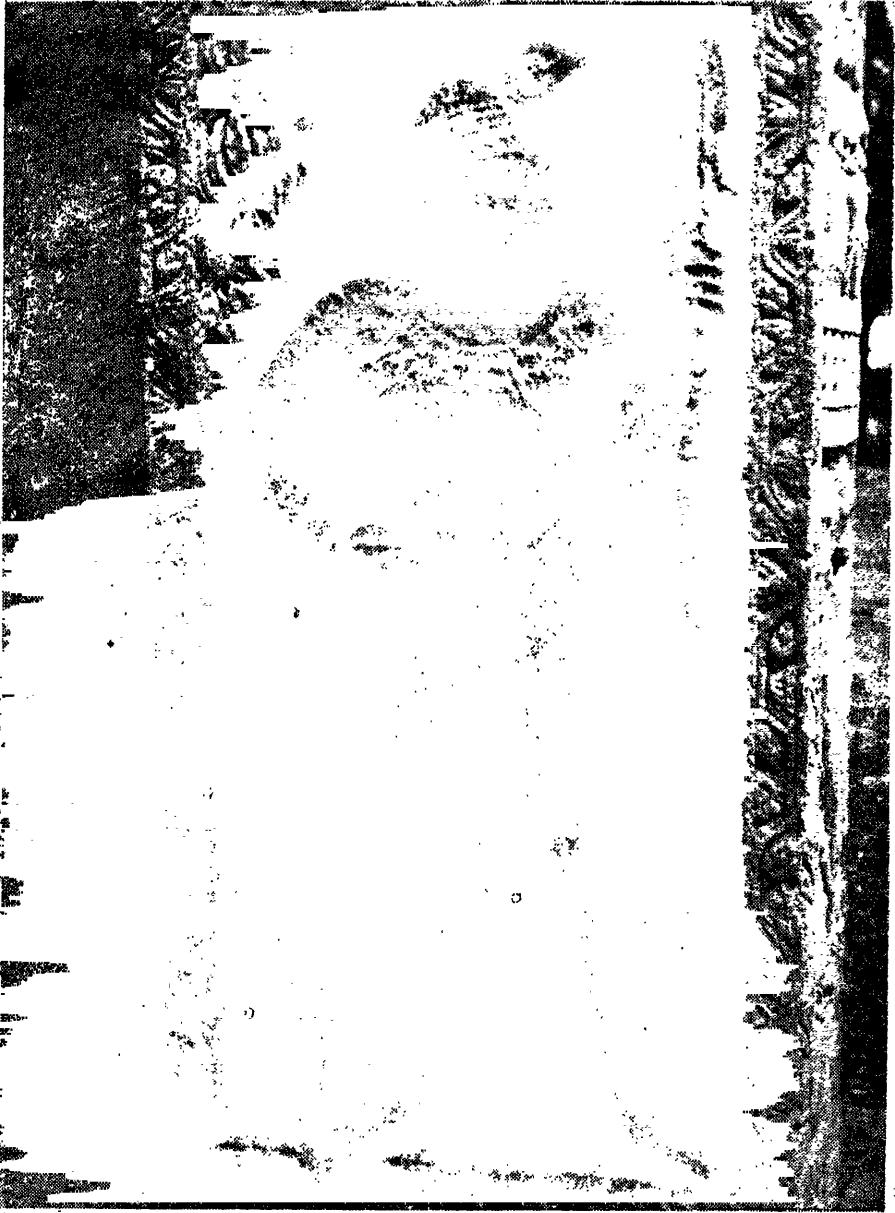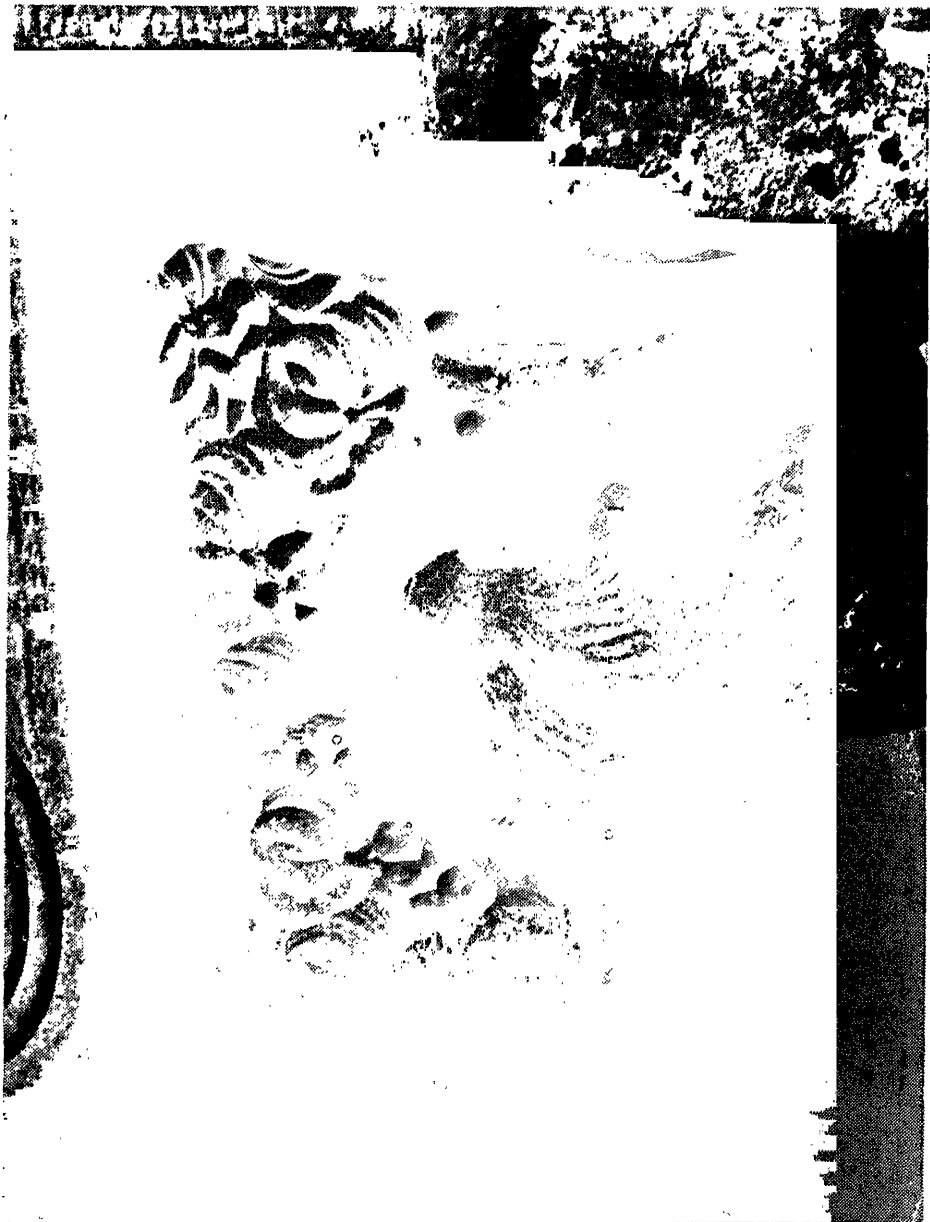
चित्र ४३

पूर्वी तोरण-द्वार, शालभंजिका
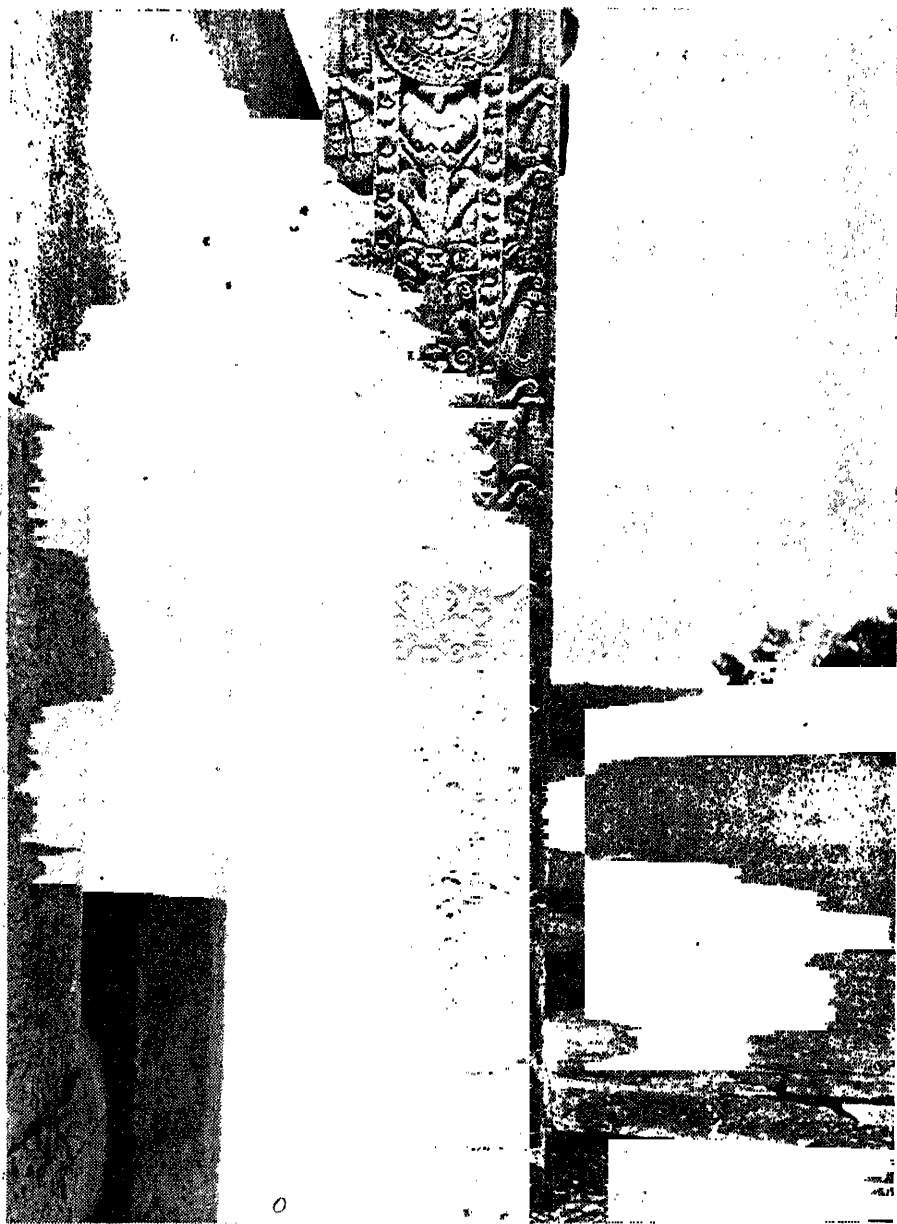
चित्र ४४

उत्तरी तोरण-द्वार, पूर्वी स्तंभ, बुद्ध-पाद, त्रिरत्न एवं प्रमाण-लट्ठि
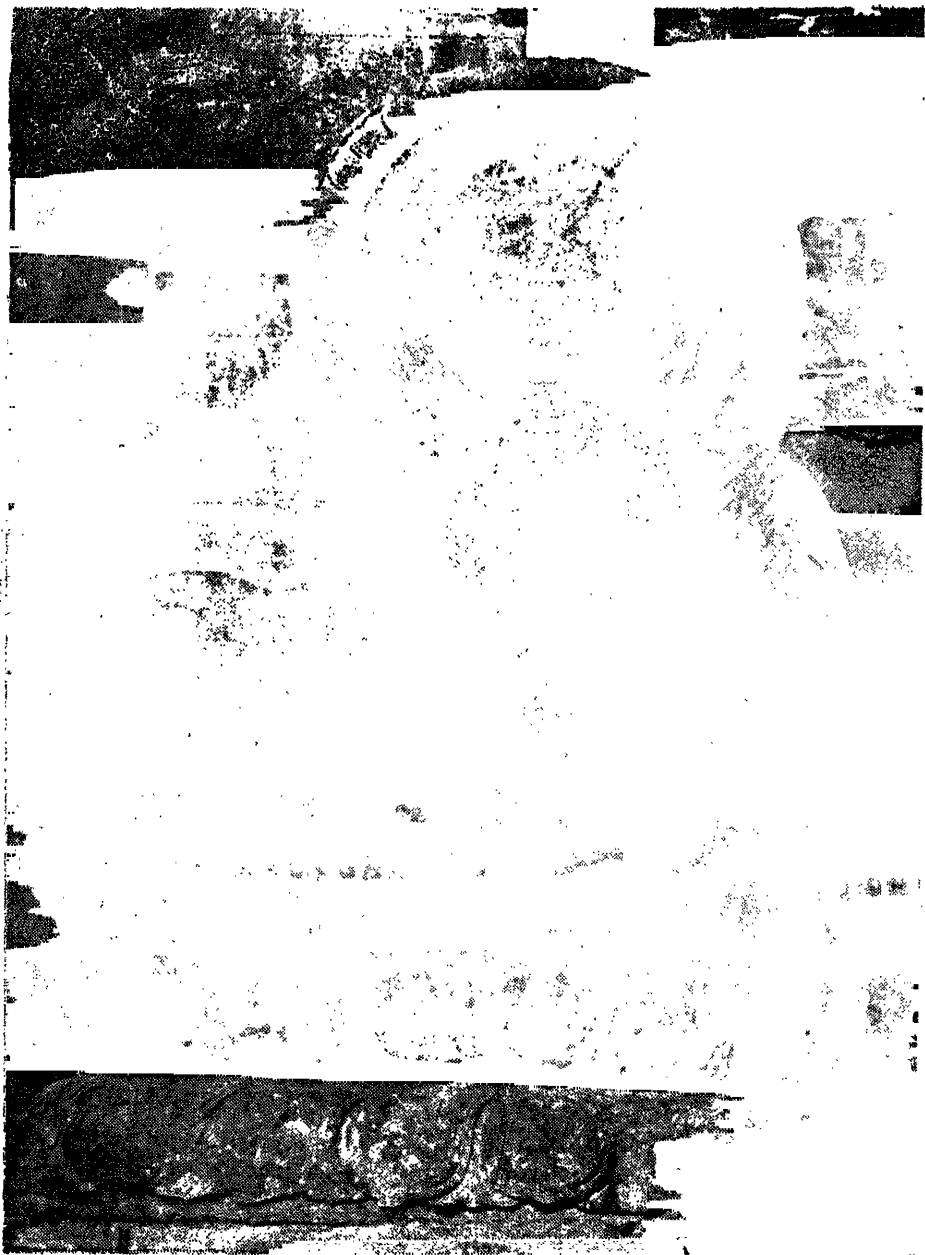
चित्र ४५

बिहार-मंदिर ४५, बुद्ध मूर्ति

चित्र ४६

नागराज

चित्र ४७

बुद्ध
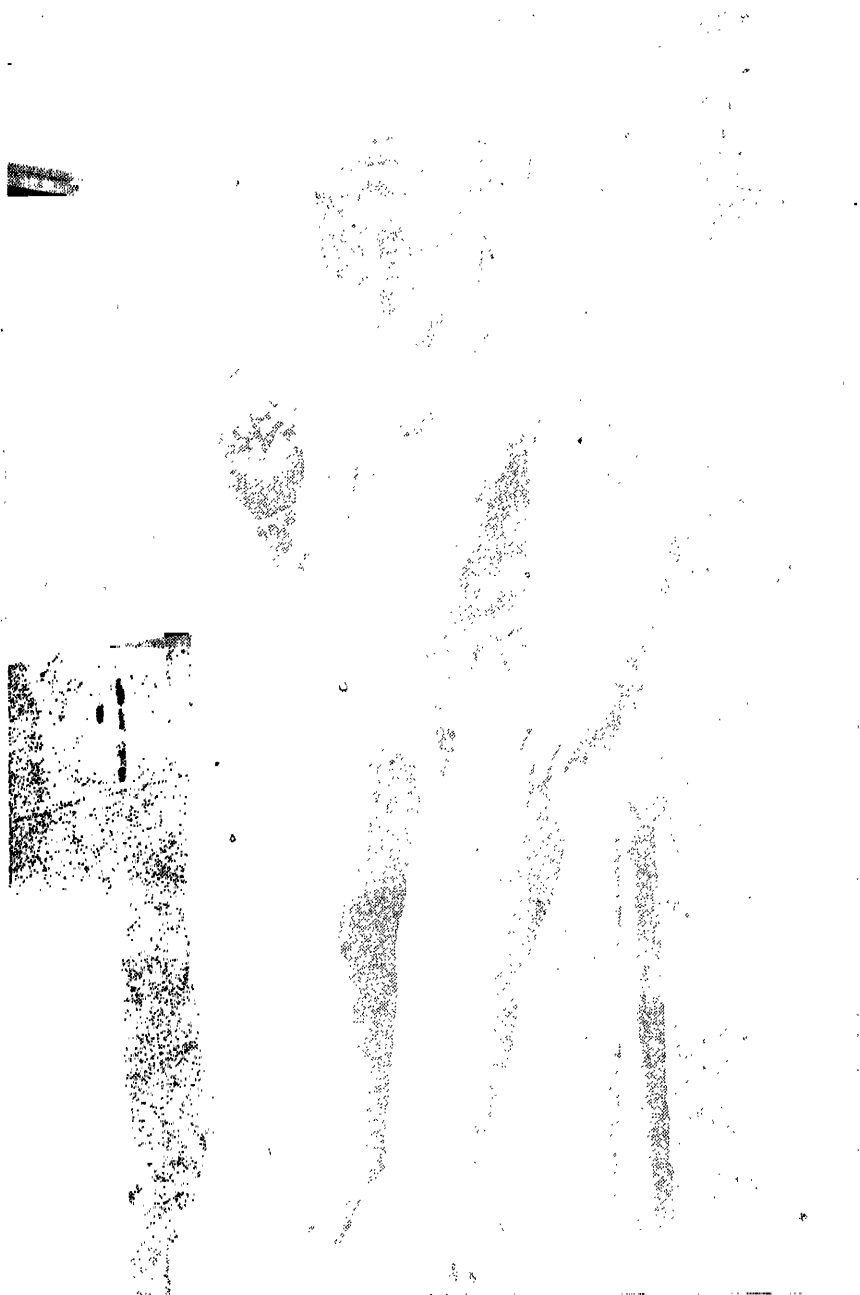
चित्र ४८
पद्मपाणि
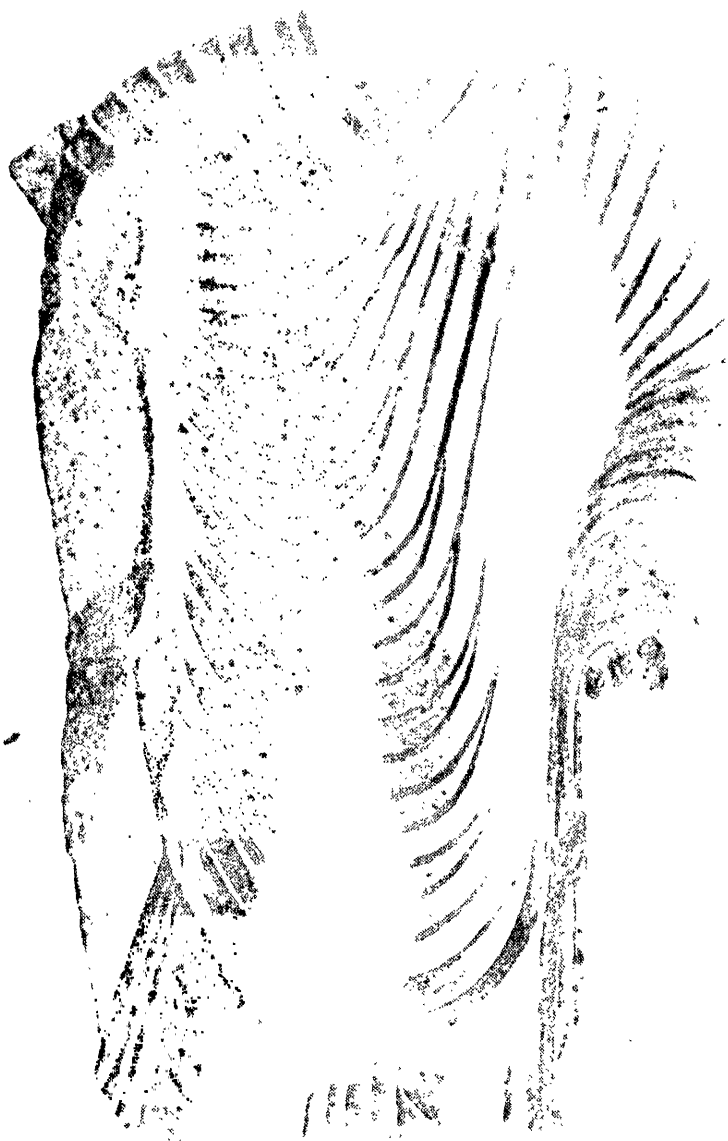
चित्र ४६

बुद्ध
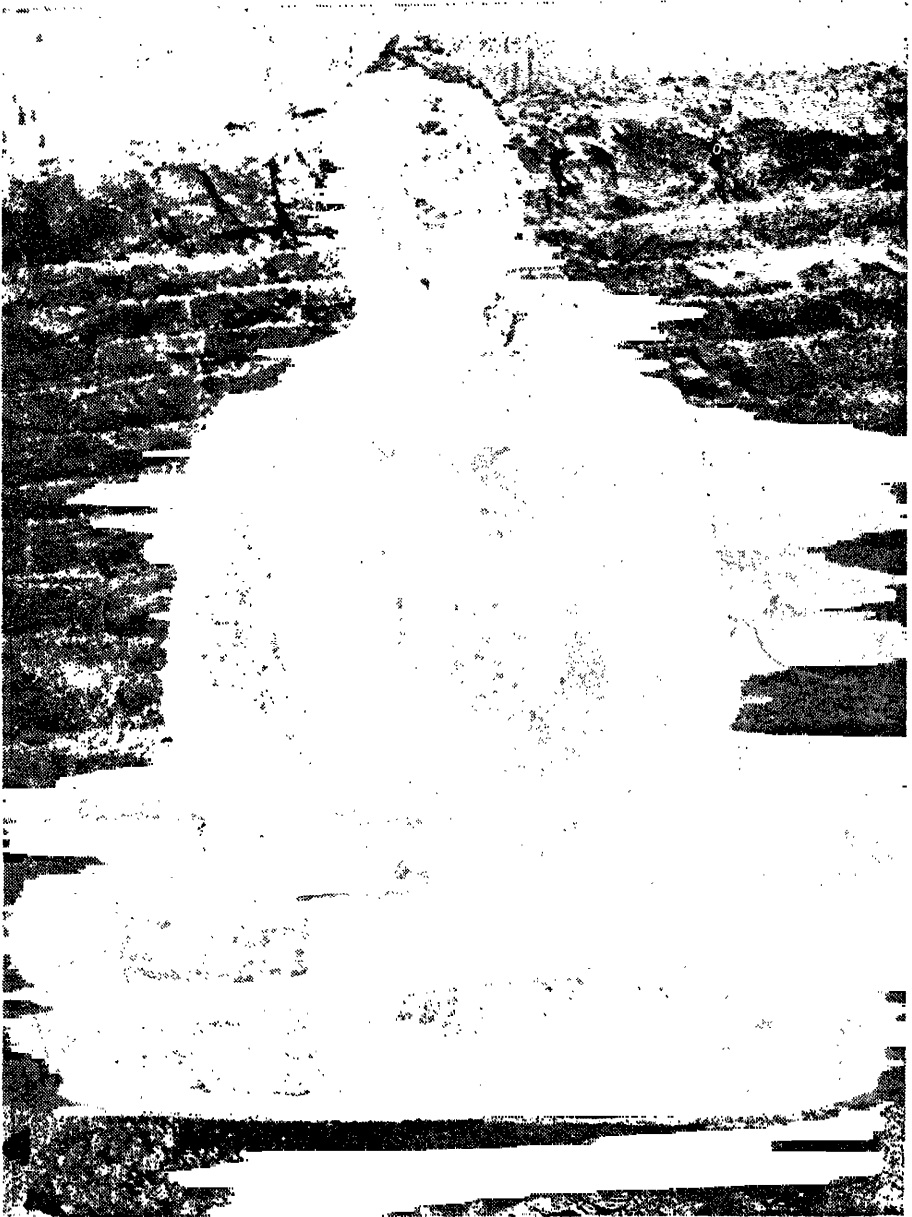
चित्र ५०
बुद्ध

चित्र ५१

अवलोकितेश्वर-मूर्ति का सिर
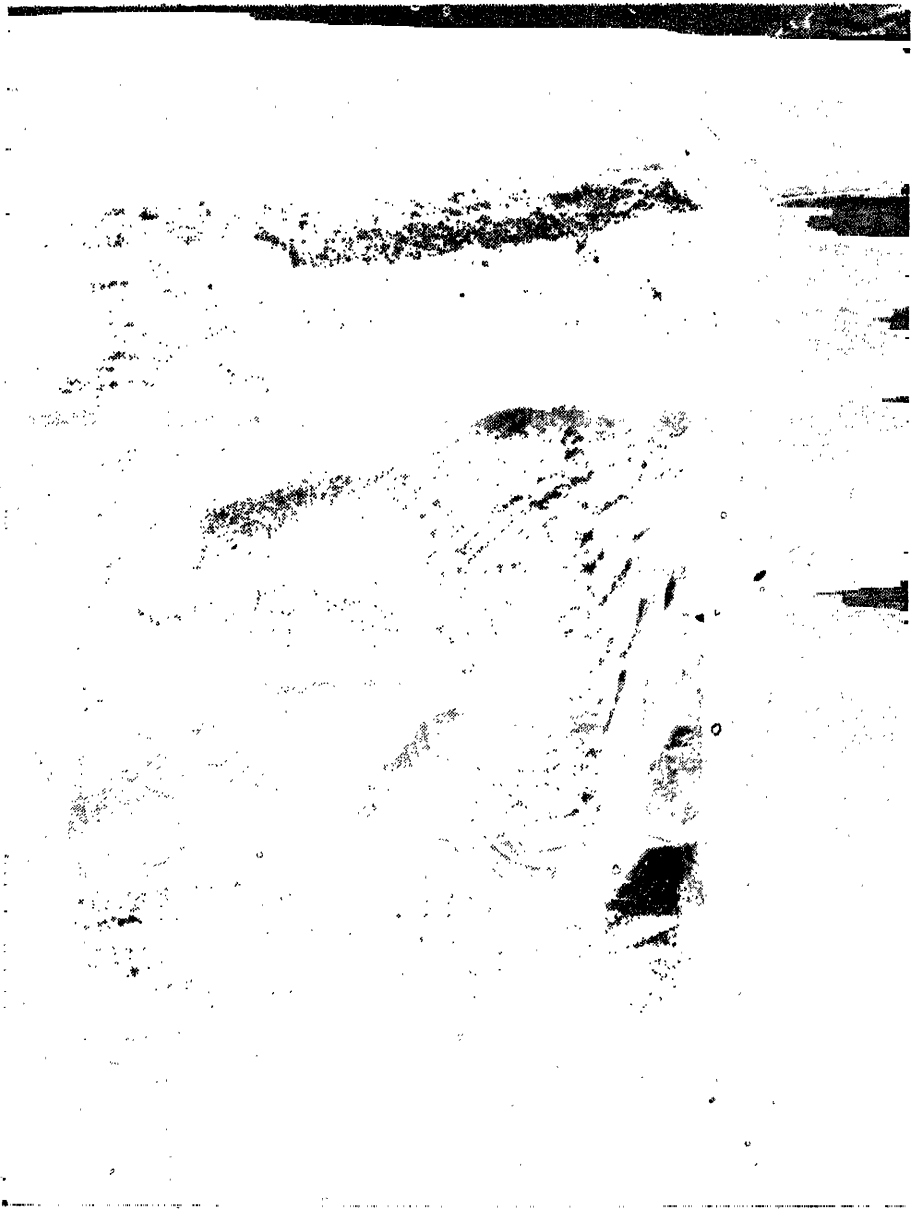
चित्र ५२
बुद्ध

चित्र ५३

नालागिरि-दमन
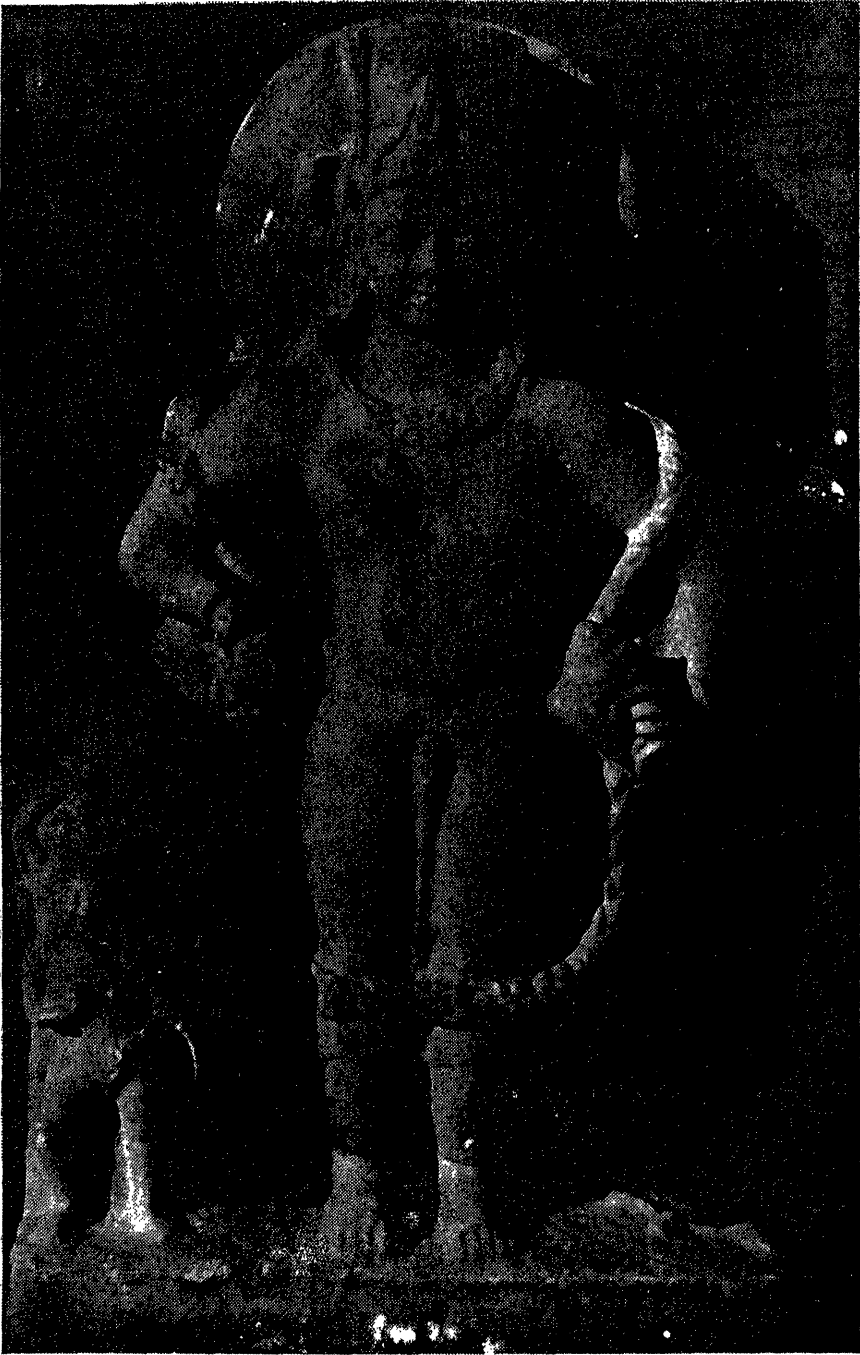
चित्र ५४

विष्णु

चित्र ५५

घंटापाणि या वज्रसत्व

चित्र ५६

मंजुश्री

चित्र ५७

जम्भल

चित्र ५८

सिंह-शीर्ष (सारनाथ)

चित्र ५६
स्तूप २ : हाथी

चित्र ६०

स्तूप २ : हाथी और महावत
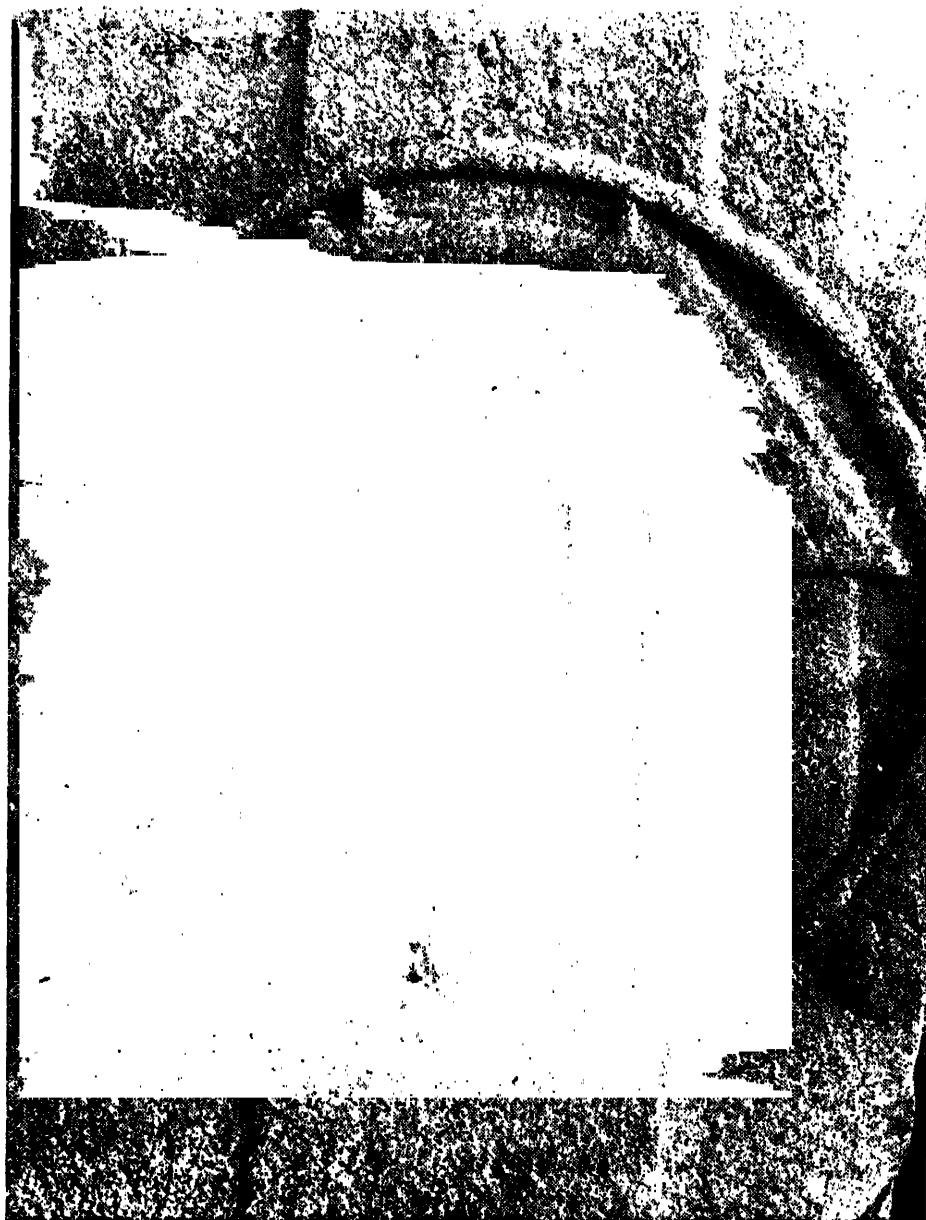
चित्र ६१

स्तूप २ : खपरैल सहित द्वार

चित्र ६२
स्तूप २ : सिंह से लड़ता हुआ योद्धा

चित्र ६३

स्तूप २ : सिंह से लड़ता हुआ योद्धा
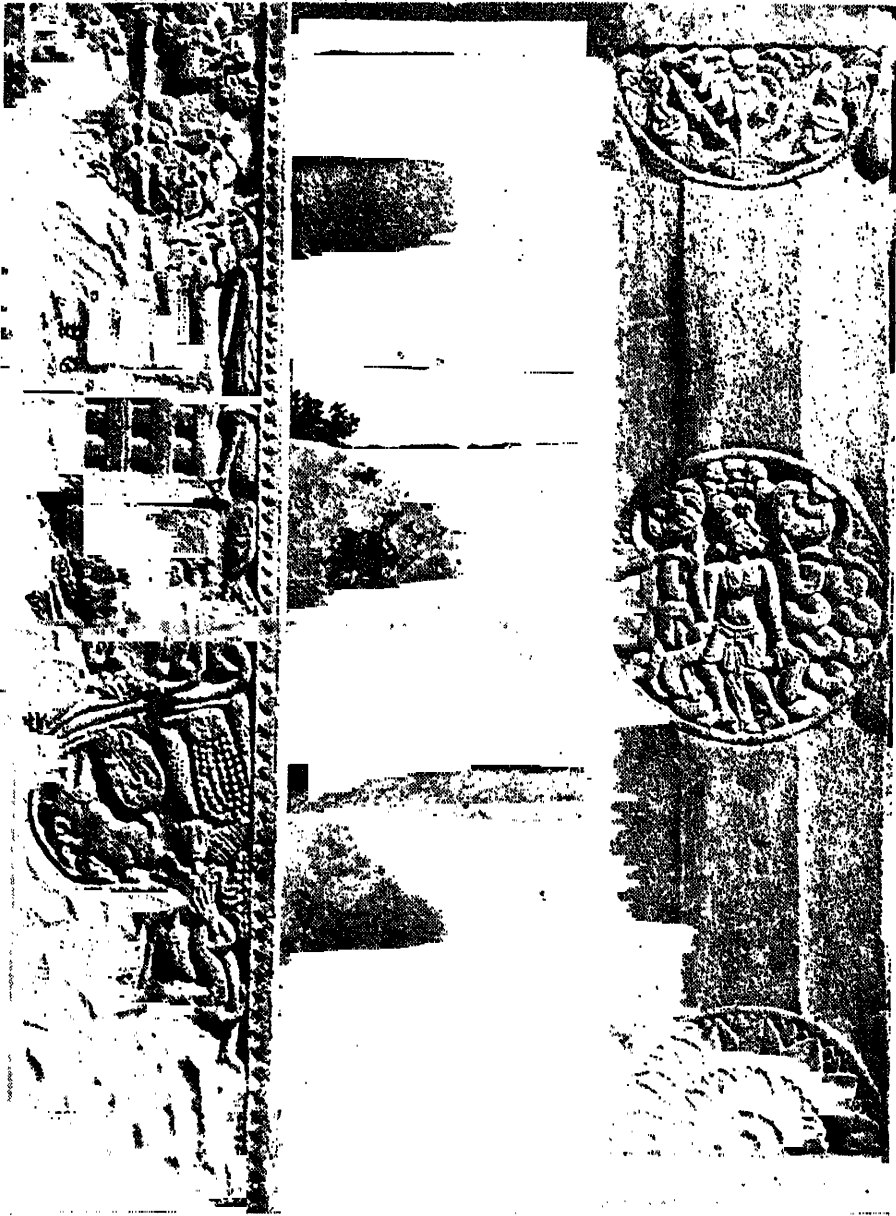
चित्र ६४

स्तूप २ : कुण्डलियों वाला नरनाग

चित्र ६५
स्तूप : २ अश्वमुखी जातक
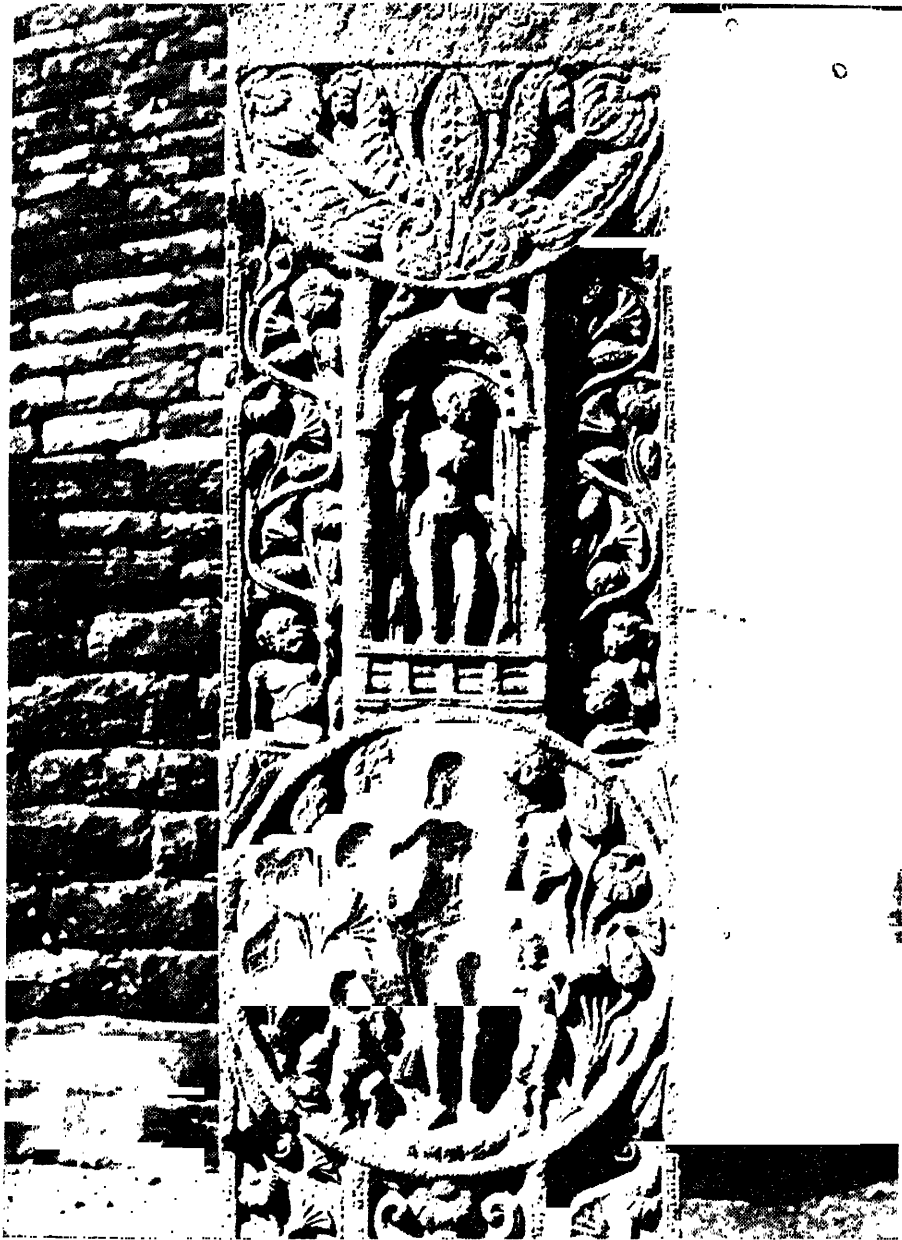
चित्र ६६

स्तूप २ : जन्म

चित्र ६७
स्तूप २ : नृत्यमयूर
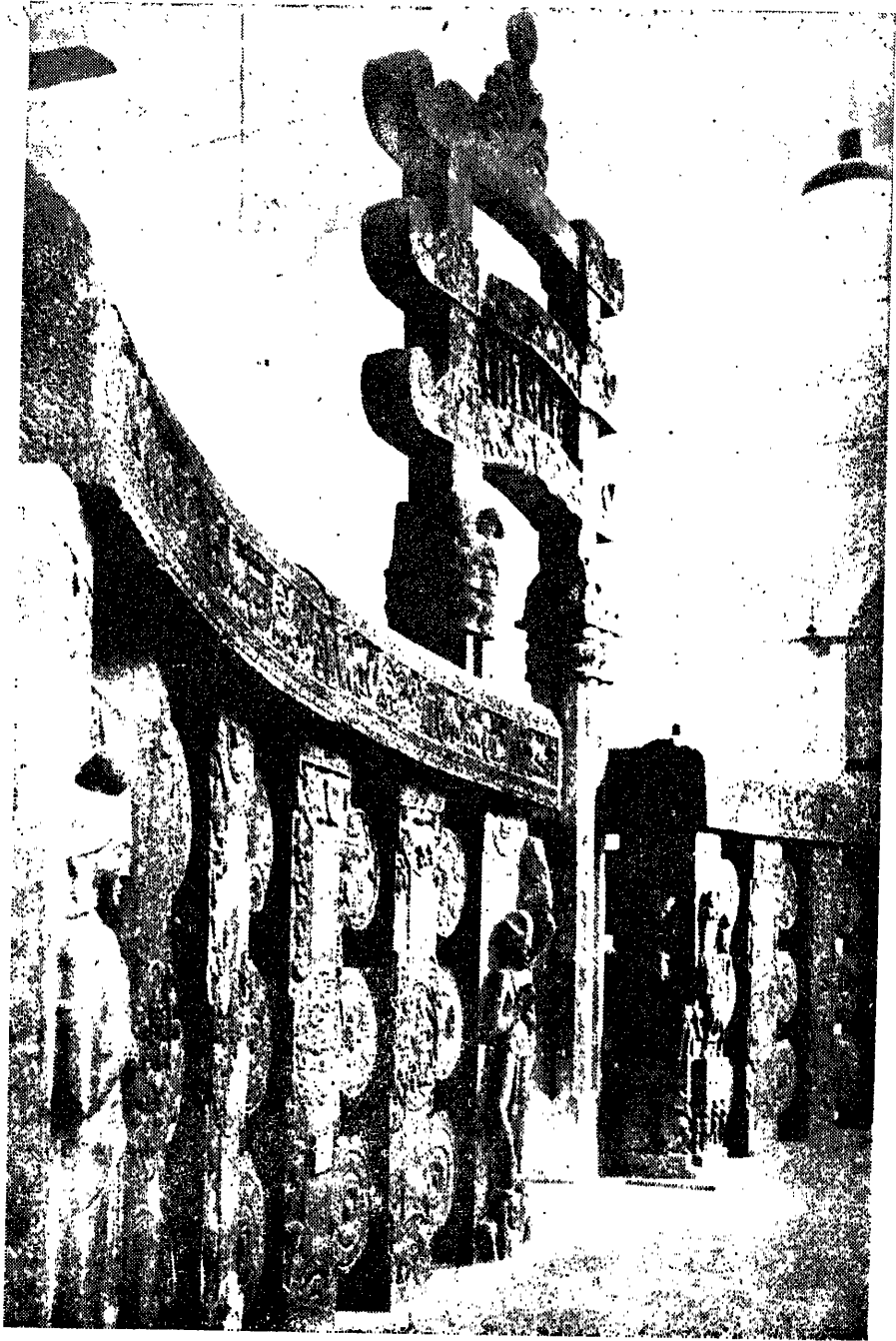
चित्र ६८
भरहुत-स्तप का तोरण भू-वेदिका

चित्र ६९

स्तूप ३ : तोरण-द्वार : पृष्ठभाग ; पश्चिमी स्तम्भ, पांचिक हारीती का परिवार

चित्र ७०

स्तूप १ : पूर्वी तोरण-द्वार के पीछे स्थापित गुप्तकालीन बुद्ध

चित्र ७१
उदयगिरि, सातवीं गुफा, विष्णु और कार्तिकेय
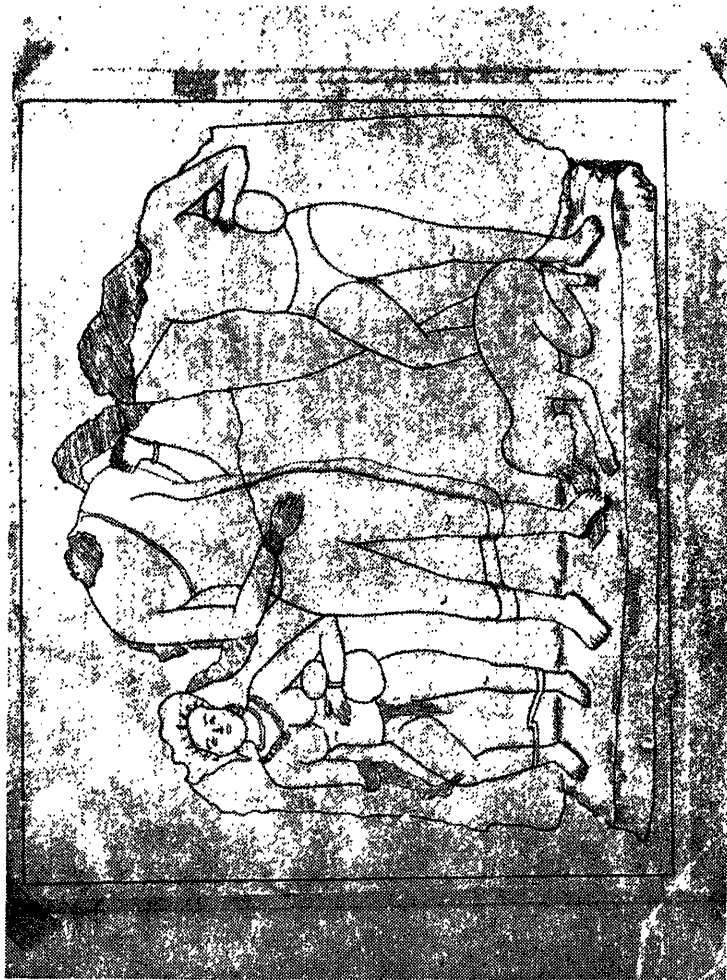
चित्र ७८-अ
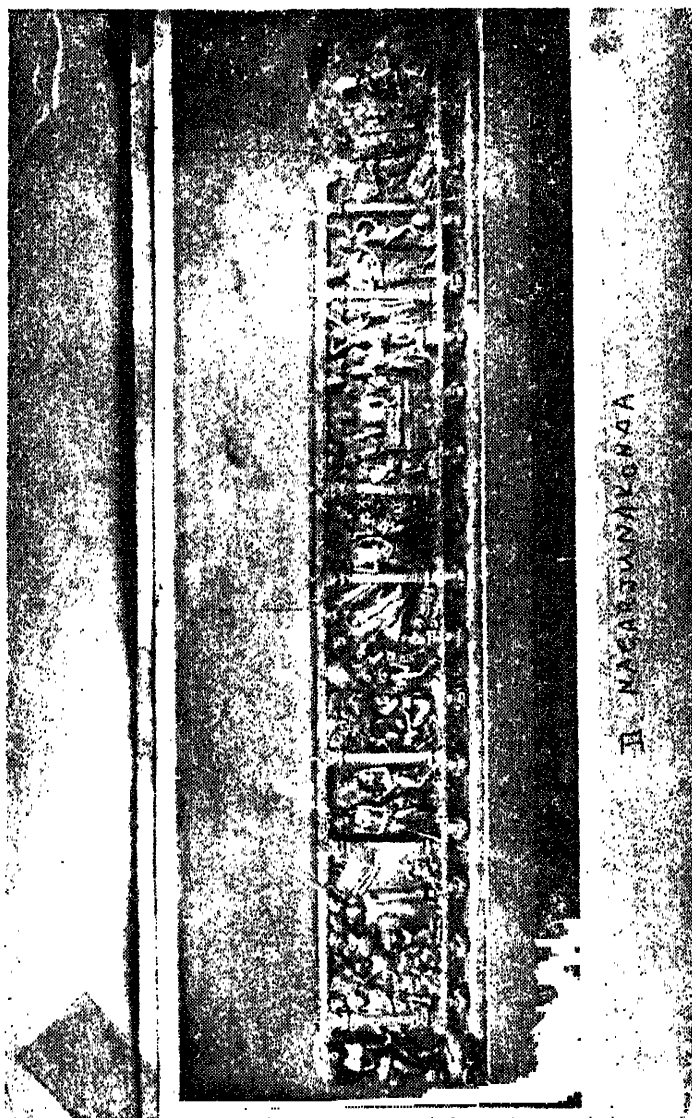
चित्र ७८-ब
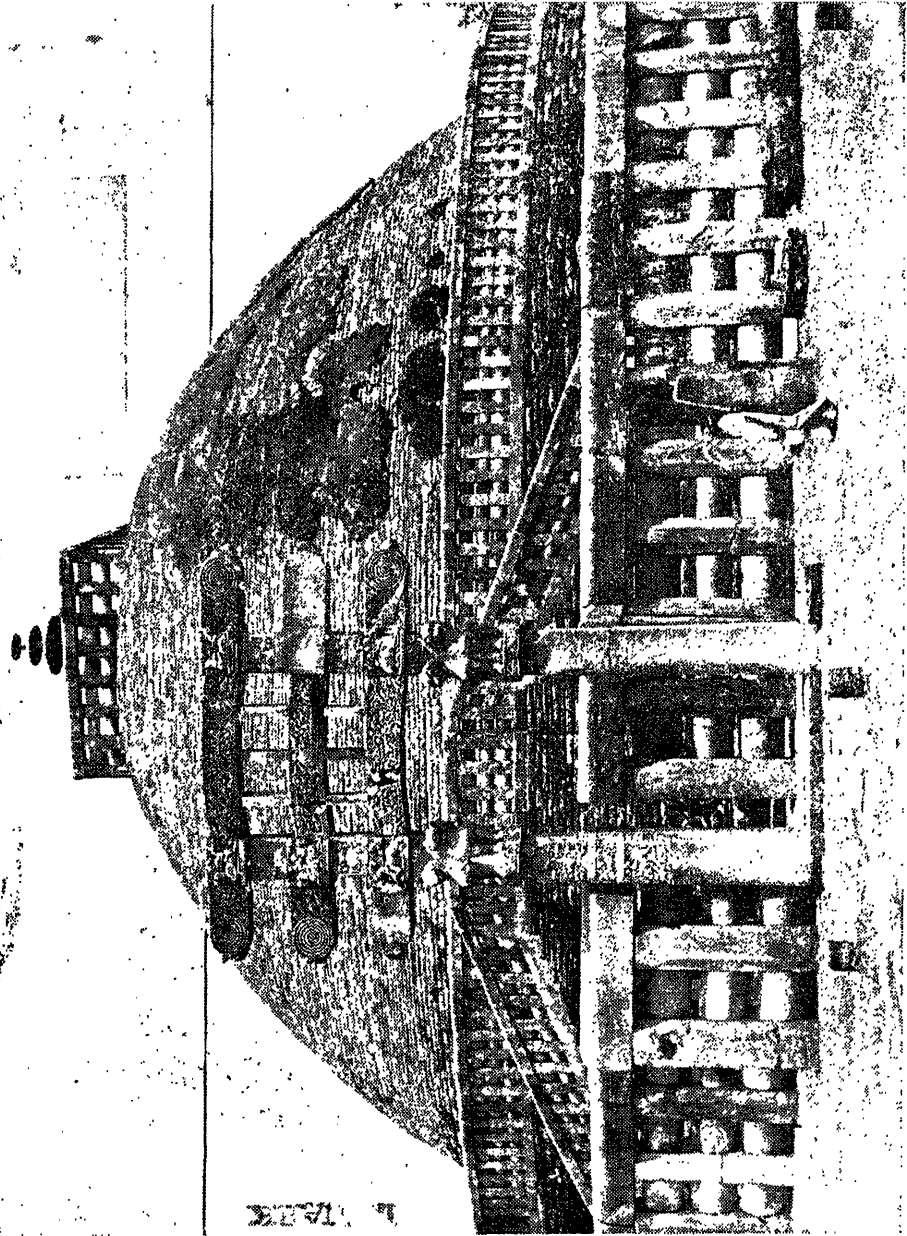
चित्र ७४
अशोक कालीन ईटों का स्तूप १

चित्र ७७
नागौर की नाग मूर्ति

चित्र ७८-द

साँची के अभिलेखों में व्यक्तियों, प्रदेशों, नगरों, और ग्रामों के नाम

इन अभिलेखों से कई महत्वपूर्ण तथ्यों का पता लगता है,

(१) सबसे अधिक दानपति दूसरी शती ई० पू० के पूर्वार्द्ध में साँची आए इनमें उपासक उपासिकाओं की संख्या पहले और भिक्षु-भिक्षुणियों की संख्या २०० से ऊपर बाद में आती है। राजा-रानियों का योगदान नगण्य सा रहा। अरपान, उज्जयिनी, उदुम्बरघर, कटकजूय, कांपसीग्राम कुरर (कुरघर, कोरघर), नन्दिनगर, नवग्राम, पुष्कर, भोगवर्द्धन, मड़लाचिकट, माहिष्मती, मोरजाभिकटग्राम, वाड़िवहन तथा विदिशा से आनेवाले दानपतियों की संख्या बहुत बड़ी है।

(२) दूसरी शती ई० पू० के उत्तरार्द्ध में ऊपर की संख्या के आधे दानपति भी नहीं आए। अधिकांश दानपति उज्जयिनी, कुरर (कोरघर), नन्दिनगर तथा विदिशा से आये। इनमें भी उज्जयिनी, नन्दिनगर और कुरर से आनेवालों की संख्या अधिक थी।

(३) पहली शती ई० पू० में दानपतियों की संख्या बहुत कम हो गई। अचावड़, उज्जयिनी, कोरर, पुष्कर, पेरुकुप, वालिवहन, विदिशा तथा वेप से अधिकतर लोग आए।

(४) आश्चर्य है कि पहली शती ई० पू० में स्तूप १ और स्तूप ३ के जगप्रसिद्ध तोरण द्वार बनवाने के लिए इतनी कम संख्या में दानपति आए। तोरणद्वारों से पहले जो निर्माण-कार्य हुए उनमें सैकड़ों दानपतियों ने भाग लिया था। तो भी तोरणद्वारों की भव्यता अन्य निर्माण कार्यों में सबसे आगे रही और शिल्पकला अपनी चरम-सीमा पर पहुंच गई। स्पष्ट है कि पहली शती के शिल्पी एवं स्थपति अपने क्षेत्रों में विशेषज्ञ बन गये थे।

५ दानपतियों के नामों में अरहत्, आर्य, देव, रक्षित, धर्म, नाग, पुष्य, बुद्ध, भिक्षु, संघ, सिंह, ऋषि, श्री आदि शब्दों की प्रचुरता है। नालन्दा जैसे अन्य प्राचीन बौद्ध-स्थलों के अभिलेखों में भी अंत तक इन शब्दों का प्रयोग होता रहा।

६ दानपतियों में राजा, रानी, श्रेष्ठी, कर्मचारी, राजकर्मचारी, उपासक, उपासिका, भिक्षु, भिक्षुणी, सभी का उल्लेख है। महत्व की बात यह है कि दूसरी शती ई० पू० से पहली शती ई० पू० तक अनेक गाँवों, गोष्ठियों, समितियों, परिवारों ने साँची के स्मारकों के निर्माण में सामूहिक रूप से दान दिये। विदेशी दानपतियों का सहयोग भी साँची को प्राप्त था।

	अभिलेख संख्या	मार्शल-फूशेवती भाग १ पृष्ठ संख्या
१. ग्राम		
वेजज ग्राम	३०८	३३१
अश्ववती ग्राम	३४५	३३५
उज्जयिनी-आहार (जिले) का		
मोरजाभिकरग्राम	३५६	३३५-३६
पाण्डुकुलिकाग्राम	६३५	३६३
चुड़मयूर गिरिग्राम	६४२	३६४
२. गोष्ठी		
धर्मवर्द्धन के नागरिकों की बौद्धगोष्ठी	६६, ६७, ६८	३०६
विदिशा के बरुलमित्रों की गोष्ठी	१७८	३१७
अर्बुद के बरायमिखों की गोष्ठी	७६३	३८०
३. कुल		
भदंत नागिल के सम्बन्धी (जाति)	१०२	३०६
धर्मोत्तर का कुल	६२६	३६१
	६०३	३५६
तुण्ड का सम्पूर्ण परिवार (सबकुलस)	४३४	३४५
चूड़ का सम्पूर्ण परिवार (सबकुलस)	४३५	३४५
अजिति गुप्त का कुल	३८७	३३६
४. समिति		
उज्जयिनी के ककडुकनगर के मगलकटिये	१०३	३१०
उज्जयिनी के वकिलिये	११५	३११
उज्जयिनी के तापसिये	२८५	३२८
	८७,७२	३०८,३०६
	७२५	३७४
विदिशा के दंतकार	४००	३४२
धमक		
साकिनेयिका	६६६	३७०

५. विदेशी

योवनक १ चुड़	४३३	३४५
यवन, श्वेतपथ का	४७५	३४८
	८६	३०८

(अ) अभिलेखों में व्यक्तियों के नाम—दूसरी शती ई० पू०

अग्निदत्ता	४८८	३४६
अग्निदेवा	१६२	३१८
अग्निल, अधपुर का	६८६	३६६
अग्निसोमा	२४५	३२४
अचला	४६५	३४७
अचला, नन्दिनगर की भिक्षुणी	१७०	३१६
अजिति कुल गुप्त के परिवार (कुल) का दान	३८७	३३६
अजितिगुप्त, भोगवर्द्धन का	१५६	३१५
अनुरोध, गोनर्द का भिक्षु	६१५, ६१७	३६०
अपकर	४६१	३४६
अरथक	१५३	३१५
अपाकाना	५२४	३५२
अमृता, नन्दिनगर की	५११	३५१
अयासि	६१०	३६०
अरटक, भाणक भिक्षु	६६१	३६६
अर्हक, परिपन का	३५०	३३५
अरहत्, पाथूपक का	६६७	३७०
अरहत्, कार्यासिग्राम का	१४३,१४६	३१४
अरहत्, कटकजूय का	१५०	३१४
अरहत्पालित	३४६	३३५
अरहत्पालिता, कुरर की	५३७	३५३
अरहत्रक्षित, विदिशा का	१५	३०१
अरिहद्गुप्त, आर्य, ससाद का	३१०	३३१
	६७१	३६७

सारिपुत्र	१४	२६६
सिद्धक	७०७	३७१
सिद्धार्थ	३८१	३३६
सेड़ी	३७८	३६८
सेलक, **भाणक**	५२६	३५३
सेवाश्री, कुरघर की	४७६	३४८
सुती, गिरिक की पत्नी (**प्रजावती**)	३०१	३३०
सुजाता	५६६	३५६
सुपठामा, पेमुत की भिक्षुणी	२४६	३२४
सुबाहित	१७१	३१६
सुबाहित, राजकीय-लेखक (**राज-लिपिका**) तथा गोप्ती का पुत्र	१७५	३१७
सुभग, कुरघर का	३१६	३३२
सुभंगा, बहिनों समेत (**स-भगिनिका**)	१८६	३१८
सुभंगा, कुरघर की	६११	३६०
सुमन	६३८	३६३
सुलास, उज्जयिनी का	६७	३०६
सूर्या	५०६	३५१
सूर्या, पेमत की	५६६	३५६
सोने, उज्जयिनी का	६६	३०६
संघक, उज्जयिनी का	११४	३११
संघदत्त, उज्जयिनी का	६८	३०६
संघदत्ता, वाघुमत की भिक्षुणी	१३८	३१३
संघदेव, वेरोहकट का वणिक् (**वाणिज**)	३०६	३३०
संघपालिता, कुरर की	५३३	३५३
संघमित्र, सोनद का	६८४	३६८
सघमित्र	६४७	३६४
संघरक्षित, कुरर का भिक्षु संघरक्षित	६११,३६०,६४०	३६४

पहली शती ई० पू०

दूसरी-चौथी शती ई०

रुद्रसेन, क्षत्रप (प्रथम)—१२२-४४ ई०		देखिये;
रुद्रसेन, महाक्षत्रप (द्वितीय), राजाक्षत्रप वीरदामन का पुत्र विश्वसिंह क्षत्रप १७७-९८ ई०	१	कैटेलॉग आफ दि म्यूज़ियम आफ़ आर्केओलॉजी ऐट साँची, पृ० ६०-६४
भर्तृदामन, महाक्षत्रप, महाक्षत्रप-राजा रुद्रसेन का पुत्र, २०४-१७ ई०	२	दि एज आफ़ इम्पीरियल युनिटी, पृ० १७८-१८९
विश्वसेन, महाक्षत्रप, महाशक्षप भर्तृदामन का पुत्र, २१५-२६ ई०	३	दि टेकनीक आफ़ कास्टिंग क्वायंस इन ऐंश्यन्ट इंडिया पृ० ४८
रुद्रसिंह, -राजा क्षत्रप (द्वितीय), स्वामी जीवदामन का पुत्र		
रुद्रसेन (तृतीय)		

पहली शती सेतीसरी शती ई०

मधुरिका, वेर की पुत्री	८२८	३८५-८६
वर्षा, विठाकुल की पुत्री एवं गृहस्थ की पत्नी	८३०	३८७
वस्कुषाण, राजा	८२९	३८६
वासष्क, महाराज राजतिराज देवपुत्र षाही	८२८	३८५-८६
विद्यामती	८२९	३८६
विषकुल	८३०	३८७
वेर, मधुरिका का पिता	८२८	३८५-८६

चौथी शती ई०

चाज्जपादिल		
ज्येष्ठगुप्त,	८३१	३८७
पिशुल, उपासक		
मालतगुप्त, ज्येष्ठगुप्त का पुत्र		

श्रीधरवर्मन, शक-क्षत्रप नन्द के पुत्र एवं महादण्डनायक-सेनापति	८३६	३६२-६३

पांचवीं शती ई०

आत्मज, शूरकुल का	८३२	३८७
आम्रकाद्दव, उन्दान का पुत्र		
आम्ररात		
उन्दान, आम्रकाद्दव का पिता	८३३	३८७
चन्द्रगुप्त, महाराजाधिराज-देवराज		
मज		
रुद्रसिह, आर्य-विहारस्वामी गोशूर-सिहबल	८३५	३९१
शरभंग	८३३	३८७
सनसिद्ध, उपासक, हरिस्वामिनी का पति	८३४	३८९-९०
सिहबल, रुद्रसिह का पिता	८३५	३९१
हरिस्वमिनी, उपासिका, सनसिद्ध की भार्या	८३४	३८९-९०

छटी शती ई०

कुलदित्य	८४०	३९४
रेखागुप्त, भदंत	८३७	३९२

नवीं शती ई०

तुंग		
रुद्र, अशेष महाशब्द	८४२	३९४-९५
वप्पकदेव, महामालव के अधिपति		
सत्व महाराज तथा उसका पुत्र		

(ब) **अभिलेखों में प्रदेशों, नगरों और ग्रामों के नाम :**

इन नामों से भी कई उल्लेखनीय निष्कर्ष निकलते हैं,

(१) कुछ नाम दूसरी शती ई० पू० से पहली शती ई० पू० तक चलते हैं, जैसे अचावड़, कोरर, उज्जयिनी, काकणान, पुष्कर, वाड़िवहन, विदिशा। उज्जयिनी का उल्लेख अशोक के अभिलेखों में है — "उजेनेति पि चु कुमाले एताये व अठाये निखामयिस...।"[१] विदिशा से प्राप्त एक ताम्बे के सिक्के पर "वेदिस या वेद्दस" तीसरी शती ई० पू० में लिखा हुआ है।[२] सम्भव है, विदिशा उन दिनों सिक्का ढालने की टकसाल हो। कुरर से प्राप्त सिक्कों पर भी "कुरर" नाम पाया गया है।[३]

(२) कुछ नाम अलग-अलग होते हुए भी एक जैसे लगते हैं।

दानपतियों ने इन नामों को अपनी-अपनी बोलचाल की शैली में लिखवाया था। दूसरे, कुछ नामों में काल का अंतर भी है। इसीलिए उनमें परस्पर कुछ भेद आ गया है :—

अचवट, अचावड़ — कुढ़पद, कुढुकपद
अरपान, अरापान — कुरर, कुरघर, कोरघर, कोरर
इजवती, एजावती, एजावत — ताकारापद, ताकारिपद, तिरिड़पद
कपासी, कार्पासी, कार्पासीग्राम — पुरुविड़, पोड़विड़
मोरजाभिकट, मोरजहिकड़, मोरयहिकट — वाड़िवहन, वालिवहन
विरहकट, वेरोहकट — वेज, वेजज, वेजजग्राम
सिदकड़, सेदकड़

काकणाय, काकणाव, काकनव, काकनाद बोटश्री महाविहार, बोटश्रीपर्वत

(३) कुछेक वर्तमान नगर और ग्राम अपने प्राचीन नामों की छाया लिए आज तक बसे हुए है। मध्यप्रदेश के अन्तर्गत एसे नामों के लिए चित्र ७६ देखिए।

प्राचीन	अर्वाचीन
अष्टकनगर	अष्टा, ज़ि० सीहोर, मध्यप्रदेश

---

१. पाण्डेय वही, पृ० १८

२. त्रिवेदी, दि जर्नल आफ न्यूमिस्मैटिक सोसायटी, खण्ड २३, पृ० ३०७

३. वही, पृ० ३०७

अर्बुद	**आबू**	पर्वत (मार्शल-फूशे, वही, भाग १, पृ० ३००, लॉ, उज्जयिनी, पृ० ७।
आजनाव	**अण्जड़**	जि० पूर्वी नीमार (इंडि० एपि, १६६४-६५, पृ० १३२, क्रम संख्या २१७०), वस्तुत: यह जिला पश्चिमी नीमार होना चाहिये।
ताकारापद ताकारिपद	**टंकारी**	मध्य प्रदेश (एपि० इण्डि०, खण्ड ३२, पृ० १४८) या टकनेरीं, जि० गुना, मध्य प्रदेश।
इजवती, एजावती एजावत		**इछतर** जि० सीहोर, मध्य प्रदेश।
उदुम्बरघर		पठानकोट का क्षेत्र (मोतीचन्द्र, सार्थवाह, पृष्ठ १५, १४२)
एरकिन	**एरण**	जिला सागर, मध्य प्रदेश (लॉ, हिस्टारिकल ज्याग्रफ़ी, पृ० ३०३) या एरन, गुलगाँव के पास जि० रायसेन।
रोहणीपद. रोह्णीपद	**राणीपद्र, राणोद**	या वर्तमान रनौद, झाँसी और गुना के बीच (लॉ, हिस्टारिकल ज्याग्रफ़ी, पृ० ३२८)।
ओमेन, उजेनी, उज्जयिनी	**उज्जैन**	जिला उज्जैन, मध्य प्रदेश
कुरर, कोरर, कोरघर, कुररघर	**कोरवई**	जिला विदिशा, मध्य प्रदेश या खरवई, जि० रायसेन, मध्य प्रदेश, या कुरघरा, अवंति या पूर्वी मालवा में (मार्सल-फूशे, वहीं, भाग १, पृ० २६६, मोतीचन्द्र, सार्थवाह, पृ० ६ या कुरवर, जि० राजगढ़, मध्य प्रदेश, या कुंआरा, कुरा, कुरिर, जि० रायपुर (कोजेन्स, लिस्टस् आफ एन्टीक्वेरियन रिमेंन्स इन दि सेन्ट्रल प्रॉविन्सेस ऐन्ड बरार, पृ० ५१)
सानुकग्राम	**सुनक**	उत्तर गुजरात (लॉ, हिस्टारिकल ज्याग्रफ़ी, पृ० २६७)

नन्दिनगर	नान्देर	तहसील गौहरगंज, जि० रायसेन, मध्य प्रदेश या नन्दनेर, टोंक के पास (मार्शल-फ़ूशे, वही, भाग १, पृ० २९९)
गोनर्द	गोनर्द	(सारंगपुर, जि० राजगढ़, मध्य प्रदेश से प्राप्त तेरहवीं-चोदहवीं शती के शिलापट्ट-अभिलेख में गोनर्द के ब्रह्मदेव, सहदेव, गोविन्द आदि के दान का उल्लेख है। (इण्डियन एपिग्राफी, १९६६-६७, पृ० ३५, क्रमसंख्या १८४)
तुम्बवन	तुमेन	जिला गुना, मध्य प्रदेश
प्रतिस्ठान	पैठान	जि० औरंगाबाद, हैदराबाद
पोखर	पुष्कर	जि० अजमेर, राजस्थान
पेमुत	पेमत	जि० रायसेल, मध्यप्रदेश
मड़लाचिकट	मण्डला	जि० मण्डला, मध्यप्रदेश
माहिष्मती	मांधाता महेश्वर	जि० पश्चिमी नीमार मध्य प्रदेश
वाड़िवहन	बाड़ी	जि० रायसेन, मध्यप्रदेश या **बड़वानी** जि पश्चिमी नीमार। इण्डि० एपि० १९६३-६४, पृ० ११६ क्रम संख्या २०३१, में पठारी जि० विदिशा से प्राप्त परमारकालीन शिलालेख में **वड़ोवापत्तन** का उल्लेख है।
विदिशा	विदिशा	जि० विदिशा, मध्यप्रदेश
सगरी	सागर	जि० सागर, मध्यप्रदेश
सोनद	सोनारी	जि० रायसेन, यध्यप्रदेश
ईश्वरवासक	ईसावाढ़ा	जि० सागर, मध्यप्रदेश
अचवट	अछुवत	शब्द गौतमी पुत्र की माता के नासिक वाले अभिलेखों में आया है। (मोतीचन्द्र, सार्थवाह पृ० ९९)। (लॉ, हिस्टारिकल ज्याग्रफ़ी, पृ० ३०३ में इसे विन्ध्यश्रृंखला का एक भाग **ऋक्षवत** पर्वत माना गया है।
अधपुर	अंधपुर, प्रतिष्ठान	(मोतीचन्द्र, सार्थवाह, पृ० ५५)

उगिरा	**उग्रनगर**	(मोतीचन्द्र, सार्थवाह, पृ० १८)
कपासी, कार्पासी, कार्पासीग्राम	**विदिशा**	के मासपास कपास और सूती वस्त्रों का केन्द्र (लॉ, हिस्टारिकल ज्याग्रफ़ी, पृ० ३३७) । इंडि० एपि०, १९६२-६३, पृ० ४५, क्रम संख्या ५ में लिखा है कि दुर्ग जिले के कोटेरा गांव से प्राप्त शिलालेख में **कापसीग्राम** का उल्लेख है ।
कुठुपद, कुढुकपद	**कठोद**	जि० धार, धरमपुरी के पास नर्मदा के उत्तरी तट पर है । (त्रिवेदी, ए बिब्लियोग्राफी आफ़ मध्य भारत आर्क्रेओलॉजी, भाग १, पृ० १९ ।
धर्मवर्द्धन	**धर्मवत्**	जि इंदौर त्रिवेदी, ए बिब्लियोग्राफी आफ़ मध्य भारत आर्क्रेओलॉजी, भाग १, पृ० १२ ।
नवग्राम	**नौगवन**	जि० रतलाम, मध्यप्रदेश (त्रिवेदी, वही, पृ० २९) । मांधाता के अमरेश्वर-मन्दिर के एक अभिलेख में दक्षिण राढ़ के **नवग्राम** का उल्लेख है (इण्डि० एपि०, पृ० ११०, क्रमसंख्या १९८३) ।
पाड़ान	**पतन**	जि० राजगढ़, मध्य प्रदेश (त्रिवेदी, वही, पृ० ३१) या **पट्टन**, तहसील मुलताई, जि बैतूल, मध्य प्रदेश (लॉ हिस्टारिकल ज्याग्रफ़ी, पृ० ३२६) या **पर्ना** (पन्ना) नगर (इंडि० एपि०, १९६३-६४, पृ० ११२, क्रम संख्या १९९८)
भोगवर्द्धन	**गोदावरी**	क्षेत्र का नगर (लॉ, हिस्टारिकल ज्याग्रफी, पृ० १४४) ।
भदनकट	**भोजकट**	या वर्तमान **भटकुलि**, जि० अमरौती मध्य प्रदेश (राय चौधरी, पोलिटिकल हिस्ट्री आफ़ ऐंश्यन्ट इण्डिया, पृ० ७७, फुटनोट ६) ।
महामयूरगिरि		यह कहीं मध्य प्रदेश में है (लॉ, हिस्टारिकल ज्याग्रफ़ी, पृ० ३२१ में यह **मयूरगिरि है**) ।

इस सूची में अष्टक नगर, आजनाव, ताकारापद, इजवती, रोहिणीपद, कुरर, सानुकग्राम, नन्दिनगर, पेमुत, मड़लाचिकट, वाड़िवहन, सगरी, सोनद, अचवट, अधपुर, उगिरा, कपासी, कुठुपद, धर्मवर्द्धन, नवग्राम, पाड़ान, भदनकट के अभिज्ञान प्रथम बार दिये गये हैं । भविष्य में इस विषय पर और अधिक प्रकाश डाला जायेगा ।

दूसरी शती ई० पू०		दूसरी-पहली शती ई०पू०		पहली शती ई०पू०	
अचवट	२७९—३३६				
	५९३—३५८				
अचावड़	६६०—३६६	अचावड़	४१७-३४४	अचावड़	३९७-३४१
अधपुर	६८६—३६९				
अनम्मित	६५५—३६५				
	६६९—३६६				
अबा	२११, २१२—३२०				
अरपान	२५०—३२५				
	२६३—३३६				
	३५७—३३६				
	६३१—३६३				
	६२—३०६				
अरापान	३३६—३३४				
	२२४—३२२				
अश्ववती	३२२—३३२				
अश्ववतीग्राम	३४५—३३५				
अष्टकनगर	६२८—३९१				
		अर्बूद	७९३-३८०		
		अमत ?	४६२-३४६		
		अवाढ़ी	४६२-३४६		
आजनाक	६५९—३६५				
	७१८—३७२				
इजवती	६३—३०९				
उगिरा	१११—३७१				
उज्जयिनी-आहार का नवग्राम	३५९—३३६				
उज्जयिनी	५८, ६०, ६१—३०५	उज्जयिनी	७८०-३७९	उज्जयिनी	७२५-३७४
	४०, ३८, २२—३०३		७८२-३७९		
	४९, ५३—३०४		४८७-३८०		
	६१—३०५				

कुरघर	९४,९३—३०९				
	९१,९०—३०८				
	१०४—३१०				
	३१६—३३१				
	३१९,३२४—३३२				
	३७०,३७१—३३७				
	४६९—३४७				
	४७६—३४८				
कोरघर	३३७,३३९—३३४	कोरघर	७३७-३७६		
	३७२,३७३—३३८		७६७-३७८		
			८१३-३८२		
			४२१-३४४		
कोरर	५१७—३५१			कोरर	३९७-३४१
					४०३-३४२
कोड़िजिल	१४७—३१४				
		कुशगृह	८२५-३८३		
गोनर्द	६१५,६१७—३९०				
चहट	३०२—३३०				
चुड़मयूरगिरि	४७८—३४८				
	५७३—३५६				
चुड़यूरमगिरिग्राम	६४२—३६४				
तम्बलमड़	२२३—३२२				
ताकारापद	५८५—३५७				
ताकारिपद	६१३—३६०	ताकारिपद	७८९-३८०		
	६०६—३५९				
तिरिड़पद	१७६,१७७—३१७				
तुम्बवन	३४६—३३५	तुम्ठावन	७६४-३७८		
	१६,१७,१८,२०,२१—३०१				
दरिवणाजि	४६७—३४७				
धर्मवर्द्धन	९६,९७,९८—३०९				
नन्दिनगर	७०३—३७०	नन्दिनगर	७३८- ७५६-३७६		
	४१४—३७१				
	१७०,१६९—३१६				
	२४७—३२४				
	२५५—३२५				

पहली-चौथी शती ई०

पांचवीं शती ई०

नवीं शती ई०

सहायक ग्रंथ

अग्रवाल, वासुदेवशरण-हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन
बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, १९५३

अग्रवाल, वासुदेवशरण स्टडीज इन इन्डियन आर्ट वाराणसी १९६५

अग्रवाल, वासुदेवशरण-दि जर्नल आफ दि न्यूमिरमैटिक
सोसायटी आफ इण्डिया, खण्ड १६, भाग १-२ बम्बई, १९५४

अग्रवाल, वासुदेवशरण—दि जर्नल आफ दि न्यूमिस्मैटिक
सोसायटी आफ इण्डिया, खण्ड १८, भाग १-२ बम्बई, १९५६

अल्तेकर, ए० एस—दि जर्नल आफ दि न्यूमिस्मैटिक सोसायटी
आफ इण्डिया, खण्ड १२, भाग १-२, बम्बई, १९५०

अल्तेकर, ए० एस०—दि जर्नल आफ दि न्यूमिस्मैटिक सोसायटी आफ इण्डिय, खण्ड १३, भाग १,
बम्बई, १९५१ भाग २, बम्बई, १९५२

अल्तेकर, ए० एस—दि जर्नल आफ दि न्यूमिस्मैटिक सोसायटी
आफ इण्डिया, खण्ड १४, भाग १-२, बम्बई, १९५२

एपिग्राफिया इण्डिका, खण्ड २, कलकत्ता, १८९४

एपिग्राफिया इण्डिका, खण्ड ३२, भाग ३

ऐनुवल रिपोर्ट आन इंण्डियन एपिग्राफी फार १९६२-६३,
१९६३-६४, १९६४-६५, १९६६-६७ (ए० एस० आई०)

ऐनुवल रिपोर्ट आन इण्डियन एपिग्राफी, १९५८-५९ (ए० एस० आई०)

ऐनुवल रिपोर्ट (ए० एस० आई०), १९१३, पृ० १-४०

ऐनुवल रिपोर्ट (ए० एस० आई०), १९३६-३७

काश्यप, जगदीश-महावग्ग, बिहार, १९५६

काश्यप, जगदीश-दीघनिकाय तथा महावग्ग (सीघक्खन्धवग्गे) बिहार, १९५८

काश्यप, जगदीश-चुल्लवग्ग, बिहार, १९५६

कावेल, ई० बी,-दि जातक, भाग ६, लंदन, १९५७

कोजेंन्स हेनरी—लिस्ट्स अ फ़ एन्टीक्वेरियन रिमेन्स इन दि सेन्ट्रल प्रोविन्सेज ऐन्ड बरार, कलकत्ता, १८९७

कनिंघम, जनरल, ए०,—स्तूप आफ भरहुत (पुनर्मुद्रण), वाराणसी १९६२

कनिंघम, जनरल, ए०—भिलसा टोप्स (पुनर्मुद्रण), वाराणसी १९६६

कनिंघम, जनरल, ए०—क्वायंस आफ एंश्यन्ट इण्डिया, वाराणसी, १९६३

घोष, ए०—ऐंश्यन्ट इण्डिया (ए० एस० आई०) सं० १६, कानपुर, १९६०

घोष, ए०—इण्डियन अर्कीओलाजी, ए रिव्यू, १९६०-६१, १९६१-६२ १९६२-६३, १९६३-६४ १९६४-६५

टाना, सा० एच०—मालविकाग्निमित्रम्, तृतीय संस्करण, वाराणसी १९६४

दास शरत्चन्द्र—पैग सैम जोन जंग, दो भाग, कलकत्ता, १९०८

दास शरत्चन्द्र—इण्डियन पंडित्स इन दि लैण्ड आफ स्नो, कलकत्ता, १९९३

धवलीकर, एम० के०—साँची, ए कल्चरल स्टडी, डेकन कालेज पूना, १९६५

पाटिल, डी० आर०—दि मान्यूमेंट्स आफ दि उदयगिरि हिल, ग्वालियर, १९४८

पाटिल, डी० आर०—दि एन्टिक्वेरियन रिमेन्स इन बिहार, पटना, १९६३

पिगट्ट, स्टुउटि—सम ऐंश्यन्ट सिरीज आफ इण्डिया, आक्सफोर्ड, १९४५

पाण्डेय, राजबली—हिस्टारिकल ऐण्ड लिटररी इन्स्क्रप्शंस वाराणसी, १९६२

फाहियान—ए रिकार्ड आफ दि बुद्धिस्ट कन्ट्रीज, पेकिंग, १९६१

फर्गुसन, जेम्स—ट्री ऐण्ड सर्पेन्ट वर्शिप, दिल्ली, १९७१

फ्रांसिस, एच० टी०—दि जातक, भाग ५, लंदन, १९५७

बनर्जी, आर०, डी०—ईस्टर्न इण्डियन स्कूल आफ मेडिकल स्कल्प्चर्स १९३३

ब्राउन, पर्सी—इण्डियन आर्किटेक्चर (बुद्धिस्ट ऐण्डहिन्दू) चतुर्थ संस्करण, बम्बई, १९५

भागवत, एन० के०—महावंश, द्वितीय संस्करण, बम्बई, १९६९

भागवत एन० के०—निदानकथा (जातकठ्ठकथा), बम्बई, १९५३

भट्टाचार्य, बी०—दि इण्डियन बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी, द्वितीय संस्करण, कलकत्ता, १९५८

भाटिया, प्रतिपाल—दि परमारज, मुंशीराम, मनोहर लाल, नई दिल्ली, १९७०

मोतीचन्द्र-सार्थवाह—पटना १९५३

मार्शल, जान और फ़ूशे, ए०—दि मान्यूमेंट्स आफ सांची ३ भाग

मार्शल, जान—ए गाइड टु साँची, तृतीय संस्करण, दिल्ली, १९५५

मजूमदार आर० सी० और पुसलकर ए० डी०—दि स्ट्रगल फार एम्पायर, बम्बई, १९५७

मजूमदार आर० सी० और पुसलकर ए० डी०—दि क्लैसिकल एज, बम्बई, १९५४

मजूमदार आर० सी० और पुसलकर ए० डी०—दि एज आफ इम्पीरियल यूनिटी, द्वितीय संस्करण, बम्बई, १९५३

मजूमदार आर सी० और पुसलकर ए० डी०—दि एज आफ इम्पीरियल, कन्नौल,बम्बई, १९५५

मजुमदार आर सी० पुसलकर ए० डी० और मजूमदार, ए० के०—दि देल्ली सुल्तानेत, बम्बई, १९६०

मजूमदार एन० सी०—ए गाइड टु दि स्कल्प्चर्स इज दि इण्डियन म्यूजियम, भाग १, दिल्ली, १९३७

मित्रा—देलाणा, साँची,

मिराशी, वी० वी०—कार्पस इन्स्क्रप्शन्स इन्डिकेरम, खण्ड ४ भाग १

मैसी, एफ० सी०—साँची ऐण्ड इट्स रिमेन्स, लंदल, १८९२

राइज, डब्ल्यू एच० डी०—दि जातक, भाग २, लंदन, १९५७

लांगहर्स्ट, ए० एच०—दि बुद्धिस्ट एन्टीक्विटीज आफ नागार्जुनकोडा, दिल्ली, १९३८ (M.A.S.I.54)

लाल बी० बी०—इण्डियन आर्केओलाजी, ए रिव्यू, १९६७-६८, नई दिल्ली, १९६८

लाल, बी० बी०—इण्डियन आर्केओलाजी, ए रिव्यू, १९६८-६९, नई दिल्ली, १९७१

वाटर्स, टी—आन युवानच्वांग्स टैवेल्स इन इण्डिया, दो भाग, दिल्ली, १९६१

विवेकानन्द कम्मेमोरेशन वाल्यूम—(इंडियाज कट्रीव्यूशन) टुवर्ल्ड थाट ऐण्ड कल्चर, मद्रास, १९७०

बैदय, पी ०ए्ल०—ललितविस्तर- दरभंगा, १९५८

वैद्य, पी० एल०—दिव्यावदान, दरभंगा, १९५९

दद्य, पी० एल०—अवदानशनक, दरभंगा, १९५८

शास्त्री, के० ए० नीलकान्त—एज आफ दि नन्दज एण्ड मौर्यज, बनारस, १९५२

शिवराममूर्ति, सी०—सस्कृत लिटरेचर ऐण्ड आर्ट-मिरर्स आफ इण्डियन कल्चर (एम० ए० एस० आई० ७३)

शिवराममूर्ति—ए गाइड टु दि आर्केओलाजिकल गैलरीस आफ दि इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता, १९५४

शुक्ल, डी० एन०—वास्तुशास्त्र, जिल्द २, दिल्ली, १९५८

साहनी डी० आर०—कैटेलाग आफ दि म्यूजियम आफ आर्केओलाजी ऐट सारनाथ, कलकत्ता, १९६४

साहनी, डी० आर०—दि टेकनीक आफ कास्टिंग क्वायन्स इन ऐश्यन्ट इण्डिया, बम्बई, १९४५

सांकृत्यायन, राहुल—मज्झिमनिकाय (भाग २, ३), बिहार, १९५८

सांकृत्यायन, राहुल—आनन्द कौसल्यायन तथा जगदीश काश्यप-चरियापिटक

काश्यप—चरियापिटक, १९३७

त्रिवेदी, एच० वी०—दि जर्नल आफ दि न्यूमिस्मैटिक सोसाइटी आफ थण्डिया (गोल्डन जुबिली वाल्यूम), खण्ड २३, वाराणसी, १९६१

त्रिवेदी, एच० वी०—दि जर्नल आफ दि न्यूमिस्मैटिक सौसायटी आफ इण्डिया, भाग १-२, वाराणसी, १९६२

त्रिवेदी, एच० वी०—ए बिब्लियोग्राफी आफ मध्यभारत आर्केओलाजी, भाग १, इंदौर, १९५३

74125

Sanchi ⟷ Guide

CATALOGUED.